'मास्टर' मणिमाछायाः १५७ संख्यको मणिः ( धर्मशास्त्रविमागे २ )

अक्ष भीः अस

## शान्तिमयूखः

रचियता—

श्रीनीलकगढमहः

सम्पात्क ---

स्व॰ पं॰ श्रीवायुनन्दनमिश्रः

पकाशक;---

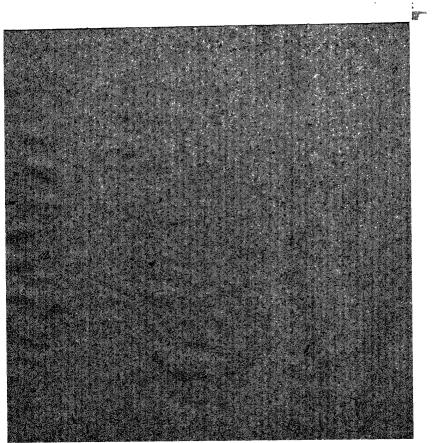
मास्टर खेलाडीलाल ऐग्रह सन्स संस्कृत वृक्षिणो, कनोडीगको, बनारसस्थि।

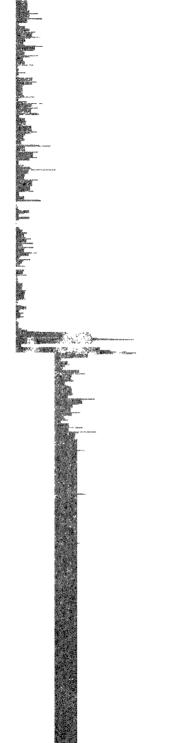
ं मूल्ये सार्वरूप्यकद्वयम्

# GOVERNMENT OF INDIA DEPARTMENT OF ARCHAEOLOGY CENTRAL ARCHAEOLOGICAL LIBRARY

CALL No. S Sa3S I Nill M.M.

D.G.A. 79.





'मास्टर' मियामालायाः १५७ संख्यको मियाः ( धर्मशास्त्रविभागे २ ) \* xi: \* Santima jūkha TIPATATAL: I रचियता // श्रीनीलकग्रभट्टः। सम्पादकः-ख० पण्डितश्रीवायुनन्दनमिश्रः। A day to be and 5356 संशोधकः---श्रीमन्नालाल अभिमन्यु एम० ए० Sass NILIM.M. ्रप्रकाशकः-मास्य खेलाड़ीलाल ऐग्रह सन्स, संस्कृत बुकडिपो, कचौडीगली, बनारस सिटी। मूच्यं रूप्यकद्वयम् [सन् १९४३ ई० प्रथमं संस्करणम्

> MUNSHI RAM MANOHAR LAL BANSKRIT & HINDI BOOK-SELLERS NAI SARAK, DELHI-S.

अधिकारः सर्वथा सुरिचतः।

प्रकाशकः —

जे॰ एन॰ यादव प्रोप्राइटर मास्टर खेलाड़ीलाल ऐण्ड सन्स, संस्कृत बुकडिपो, कचौड़ीगली, बनारस सिटी।

LIBRARY NEW DELHI.

5356

29/(2/56.

Date: Sa38/ Nil/ M.M.



भुदकः— श्रीमन्नालाल अभिमन्यु एम० ए० मास्टर प्रिण्टिङ्ग व**दर्स,** बुलानाला, बनारस सिटी। मयूख प्रम्थों के रचियता का नाम संस्कृत-साहित्य-मकरन्द लोलुपों की जिह्वा पर विराजमान है। मीमांसक मह श्रोनीलकण्ड ने अपने द्वादश मयूखों से धर्मशास्त्रान्तरिक्ष को प्रदीप्त कर अपनी विलक्षण प्रतिभा का प्रदर्शन किया है। इन्होंने न केवल अपने नाम को ही, बल्कि अपने आश्रयदाता सेंगर- क्षत्रियवंशावतंस श्रीभगवन्तभास्कर की कीर्ति-वैजयन्ती को भी दिक् विदिक् में स्थापित किया है। इन्होंने अपने राजा की वशावली 'शान्तिमयूख' के आरम्भ में यों बतलायी है— स्वात्राहर स्व

ब्रह्मा-कश्यप-विभागडक श्रक्किन्नर-कर्णदेव-विशोकदेव रपदेव वैराटराज-वीढ-राज नरब्रह्मदेव मन्युदेव-चन्द्रपाछदेव-शिवगणदेव-रोछिचन्द्रदेव - कर्मसेत्रदेव-नर-हरिदेव-यशोदेव-ताराचन्द्रदेव-चक्रसेनदेव-राजसिंह-भूपतिसाहिदेव-भगवन्तदेव ।

अपरोक्त कथन से स्पष्ट है कि चर्मणवती ( चम्बल ) और तरिण्जा ( यमुना ) के सङ्गम पर स्थित भरेह नगर (जिला इटावा ) में महाराज भगवन्त देव शासन करते थे और राजाश्रय प्राप्त कर इन्होंने उसी नगर में प्रन्यप्रण्यन किया। 'आज्ञासस्तेन राजा' से भी यही ध्विन निकलती है। जिस समय इन्होंने प्रन्थारम्भ किया उस समय भारतवर्ष में मुगल सम्राष्ट्र जहाँगीर का शासन काल था और जिस समय ये प्रन्थ लिले जा चुके थे उस समय जगरप्रसिद्ध ताज्महल निर्माता शाहजहाँ का राज्यकाल था। इस तरह इनका प्रादुर्भीव काल सन् १६१०-१६५० ई० माना जाता है।

भद्द श्रीनीलकण्ड ने इन मयूख प्रन्थों को बनाया-

१ संस्कार मयूख-इसमें गर्भाधान आदि संस्कारों का उल्लेख है।

२ आचार मयूख-इसमें आचार सम्बन्धी वर्णन है।

३ समय मयूख—इसमें प्रत्येक मास की तिथियों एवं वर्तों का निर्णय है ४ श्राद्ध मयूख—इसमें अष्टका अन्वष्टका एकोदिष्ट श्राद्धों की विधि है।

४ नीति मयुष-इसमें राजनीति के प्रत्येक अङ्गों पर सूक्ष्म विद्रुपण है।

६ व्यवहार मञ्जूख — इसमें हिन्दू कानून सम्यक् रूप से वर्णित है। अतः गुजरात, वस्वई, उत्तरी कोंकण आदि में इसके अनुसार व्यवस्था है। बम्बई हाईकोर्ट ने 'हिन्दू छा' का इसे प्रामाणिक प्रनथ माना है। श्रीपाण्डरङ्ग

वामन काणे, एम॰ ए॰, एल-एल॰ एम॰ ते History of Dharma-

sastra Literature में भी यही बात स्वीकार की है।

nauchan lat Municip Ram, New Lillinger

७ दानमयूख—इसमें विविध दानों का साङ्गोपाङ्ग वर्णन है।

= उत्सर्ग मयूख-इसमें जलाशय-तडाग वापी-कूप-आराम आदि उत्सर्ग हैं।

६ प्रतिष्ठा मयूख—इसमें अनेकविध प्रतिष्ठा का क्रम बतलाया गया है।

१० प्रायश्चित्त मयूख—इसमें प्रायश्चित्त प्रकरण है।

११ शुद्धि मयूख—इसमें शुद्धि का परिपूर्ण रीति से वर्णन है।

१२ शान्ति मयूख—यह पुस्तक आपके कर-कमलों में ही है।

भव दो शब्द इस प्रन्थ के रम्पादक श्रीवायुनन्दनामश्र कर्मकाएडी के सम्बन्ध में कहना अप्रासिङ्गक न होगा। आपने कर्मकाण्ड के प्रन्थों में एक अभिनव, किन्तु श्राकर्षक, शैली रूपी उष्णरहिम को जन्म देकर भारतीय विद्वद्वर्य के चित्त-चकोर को हठात अपनी ओर खींच लिया। आपकी बनायी हुई कुछ पुस्तकों की तालिका इसके अन्तिम आवरण पृष्ट पर है। इनके अतिरिक्त आपने श्रान्टयेष्टि सहित कर्मकाग्रड समुच्चय, त्रयोदश संस्कार रत, विब्सुप्रांतष्ठा (बौधायनोक), लिङ्ग प्रतिष्ठा, काली प्रतिष्ठा, आदि का प्रण्यन तथा गोपग्र वत कथा, वामन द्वादशी कथा, ऋषि पञ्चमी कथा, श्रनन्त चतुर्दशी वत कथा, महालक्ष्मी पूजा भादि की टीका लिखी है। ये सब कागज की महर्घता एवं दुष्प्राप्य होने से इसके बाद उन्होंने वर्तमान प्रनथ 'शान्ति मयुख' अप्रकाशित हैं। के सम्पादन में हाथ लगाया और ७२ पृष्ठ तक हो छपे थे कि सम्बत् १९९६ मार्गशीर्ष शुक्ल २ मङ्गलवार को, रात्रि में दो बजे, ६४ वर्ष की भाय में. अपनी ऐहिक छीला का संवरण कर, सम्भवतः शताइवमेध कर्ता इन्द्र के महामख में प्रधान ऋत्विज का आसन प्रहण करने के लिए, अमर-लोक चले गये। आपके निधन से कर्मकाण्ड-संतार की अपूरणीय क्षति हुई। कई अनिवार्य कारणों से लगभग दो वर्षो तक यह यों ही पड़ा रहा। सन् १९४२ ई० में मैंने पूज्यपाद पण्डितजी की हस्तिछिखित प्रति का समाश्रय केकर इसका संशोधन करना आरम्भ कर दिया और एक वर्ष में अवशिष्ट अंशों का यथामति संशोधन किया। पण्डितजी की हस्तिछिखित प्रति के अतिरिक्त मेरे पथ प्रदर्शन के लिए कोई दूसरी प्रति नहीं थी अतः इस पुस्तक में जो भी बुटि रह गयी हो उसका उत्तरदायित्व मेरे जवर है। इसके लिए मैं विद्वद्वन्द से क्षमा प्रार्थी हूँ तथा प्रार्थना करता हूँ कि वे उन बुढियों की ओर मेरा ध्यान दिला देंगे जिसमें दूसरे संस्करण में उनका सुधार किया जा सके।

काशी

### 🗯 त्रथ शान्तिमयूखस्य विषयसूची 🏀

प्रकरणम्	५०	पं०	प्रकरणम्	. पृ०	पं०
<b>मङ्ग</b> लाचरण <b>म्</b>	3	9	होमः	85	94
कविवंशकथनम्	3	રૂ	बलिदानम्	८६	२३
शान्तिळक्षणम्	ર	પ	पूर्गाहुतिः	८६	३१
परिभाषा	Ę	१३	अभिषेक:	ं८७	સ્પ
अथ विनायकस्नपनम्	૭	३ ६	आचार्यादिपूजनम्	66	93
प्रयोगः	92	98	अथ महयोगशान्तिः	69	ý
भथ प्रहयज्ञः	90	९	<b>प्रहस्नानानि</b>	९१	୍ଧ ବ
अयुतादिहोमं प्रकृत्यवशिः	हः १८	२२	आदित्यशान्तिः	९२	94
प्रहादीनां लक्षणानि	३९	છ	चन्द्रशान्तिः	९३	30
अधिदेवता-प्रत्यधि- ।	४०	9	मङ्गलशान्तिः '	९४	9
देवतास्रक्षणानि (		•	बुधशान्तिः '	९४	98
विनायकादिरुक्षणानि	83	२०	गुरोः शान्तिः	९५	<b>.</b> 3
<b>छोकपा</b> ळरूपाणि	४२	વુષ	गुरुपूजा	<b>લ્પ્</b>	<b>~</b> ₹
अथ लक्षहोमः	8 इ	9	शुक्रशान्तिः	96	. 4
अथ कोटिहोमः	84	વૃંખ	प्रतिशुक्रादिशान्तिः	·	94
शतसुखकोटिहोमः	A 3	9	शन्यादिशान्तिः	९९	198
<b>अ</b> थ प्रहमखप्रयोगः	પ્રફ	6	शनिव्रतम्	900	ug.
मण्डवकरणम्	પદ	19	शनिस्तोत्रम्	909	14
गगोशपूजादि-	ખુછ	و و	अर्कविवाह:	903	9
वास्तुकर्म	46	. 9	प्रयोगः	908	· 🛊
द्वारपूजा	६३	3	ऋतुशान्तिः	906	6
सोरणपूजा	६४	3	प्रयोगः	. 998	90
अग्निस्थापनम्	७२	२५	<b>उपरागे रजोदर्शनविशेषः</b>	996	18
मण्डलदेवतास्थापनम्	७३	9	गोमुखप्रसवविधिः	990	ч
ब्रहादिस्थापनं पूजनं च	७६	94	प्रयोगः	313	4
कलशस्थापनम्	43	. 98	सदन्तोत्पत्तिशान्तिः	119	**
वितानबन्धमन्	48	98	कृष्णचतुर्दशीजननशान्तिः	989	3

<b>प्रकरणम्</b>	<b>ह</b> ०	पं०	प्रक <b>र</b> णम्	Ã٥	पं०
सिनीवालीकुहूशान्तिः	१२३	3	नक्षत्रशान्तयः	103	313
प्रयोग <u>ः</u>	१२४	२३	तिथिवारक्षेंषु साधारणः	969	२१
दर्शजननशान्तिः	<b>१२६</b>	9	प्रयोगः 🤇		
<b>प्रयोगः</b>	१२८	ч	प्रहणशान्तिः	१८३	4
ज्येष्ठाशान्तिः	926	२६	जलाशयवैकृतशानितः	354	3 8
प्रयोगः	१३१	3.8	वृष्टिचैकृतशान्तिः	१८६	<b>ફ</b>
<u>मू</u> ळशान्तिः	१३२	18	अग्निवैक्ठतशान्तिः	960	3
मूळाइलेषाशान्त्योः प्रयोग	: 181	ર	प्रतिमादियैक्कतशान्तिः	"	77
वैधतिब्यतीपात- )		પ્ય	आकस्मिकप्रासाद- } पतन्थानितः }	969	9
संक्रांतिशान्तयः ∫	388	3	वृक्षविकारशान्तिः	990	૧૨
प्रयोगः	386	२५	<b>उत्पात्रशान्तिः</b>	999	1.4
एकनक्ष त्रजन्मशान्तिः	188	२८	पञ्जीसरटशान्तिः	191	96
्र प्रयोगः	940	२०	प्राप्तारस्यादिशान्तिः द्रामारस्यादिशान्तिः	368	10 *
प्रहृणोत्पत्तौ शान्तिः	343	६	कपोतशान्तिः	3 G rd	۲ 99
विषघटिकाशान्तिः	१५३	3	काकवैक्ठतशान्तिः	998	98
भगग्डान्तशान्तिः	348	99	काकमैधुनदर्शनशान्तिः	990	<b>२२</b>
दिनक्षयादिशान्तिः	9 44	30	काकस्पर्शशान्तिः	996	<b>२</b> २
त्रिकशान्तिः	944	93	सिंहादौ गवादिप्रसूतिशा		15
प्रसववैकृतशान्तिः	940	૧૫	मुसलाद्याकस्मिक-		• •
्यमलशान्तिः	946	9	स्फुटने शान्तिः	२०४	3
,ब्रहीगृहीतबालकविधिः	949	99	विद्युत्पातादिशानितः	२०५	२०
बालग्रहस्तवः	3 & 0	36	मण्याद्यैकदेशभेदे शान्तिः	२०६	٩
यूतनाविधानम्	६६५	بع	अश्वशा न्तः	२०७	. 9
ज्वराखुत्प्रचौ शान्तयः	900	२५	गजशान्तिः	२१०	3.8
,वारशान्तयः	303	२२	महाशान्तिः	538	9

#### इति सूचीपत्रम् ।

## त्र्यथ शान्तिमयूखः।

**अ पारभ्यते** अ

महोमयमुदाराभं लोकत्रयनमस्कृतम् । तमहं भास्करं वन्दे सतां सर्वार्थसिद्धिदम् ॥१॥ यज्ञे पितामहतनोः खल्ज कश्यपो य-स्तस्मादजायत मुनिस्तु विभाएडकारूयः । तं पुत्रिणां धुरमरोपयदृश्यशृङ्ग-

स्तस्मान्वयेऽप्यजनि शृङ्गिवराभिधानः ॥२॥ तस्मिन्वंशे महति वितते सेंगराख्ये नृपाणां

राजा कर्णः समजनि यथा सागरे शीतरिश्मः । कीर्त्या यस्य प्रथिततरया श्रोत्रजातेऽभि पूर्णे

कर्णस्याऽपि प्रविततकथा नावकाशं लभन्ते ॥३॥ विशोकाख्यदेवस्ततस्ततस्रतोऽभूत्

विशोकी कृता येन सर्वा धरित्री । ततोऽप्यासराजास्तशत्रुस्ततोऽभूत्

रयाख्यो रयेर्पौव सर्वाहितद्यः ॥४॥ बभूवाऽथ वैराटराजस्ततोऽभू-

न्तृपो मेदिनीवल्लभो वीढराजः । नरब्रह्मदेवस्ततो मन्युदेव-

स्ततोऽभून्नुपश्चन्द्रपालाभिधानः ॥४॥ शिवगणारूयनुपः समजन्यथो शिवगणारूयपुरं प्रचकार यः । शिवगणेन समः सकलेर्गुणैः

शिवशिवपथमो गणनासु यः ॥६॥
रोलिचन्द इति तत्तनयोऽभूत् कमसेननृपतिस्तमथानु ।
लोकपो नरहरिर्नृपराजो रामचन्द्र इति तत्तनुजातः ॥७॥
यशादेवस्ततो जातस्ताराचन्द्रनृपस्ततः ।
चक्रसेनस्ततो राजा राजसिंहनृपो यतः॥=॥
ततोऽप्यभुद्भपतिसाहिदेवः स्वकीर्तिभिर्निर्जितदुग्धसिन्धुः।
अभूत्ततः श्रीभगवन्तदेवः सदैव भाग्योदयवान् ज्ञितीशः॥६॥
यद्दानद्रविणाद्रिनिर्जितवपु रत्नाचलो लज्जया

दूरेस्तब्य इलावृते निविशते नो यत्र पुंसां गतिः । किंच त्रस्पद्गतिवामनयनानेत्राम्बुभिविद्धित-

स्तेजोग्निर्वडवा मुख्योत्यहुतभुक्तुल्यः कथं नो भवेत्।।१०॥ श्राज्ञप्तस्तेन राज्ञा विविधकुलमणिर्दिच्चणात्यावतंसो

भद्दश्रीनीलकण्ठः स्मृतिषु दृद्मितर्जैमिनीये द्वितीयः । श्राज्ञामादाय मूर्ध्ना सविनयममुना तस्य सर्वान्निवन्धान् दृष्ट्वा सम्यक् विविच्य प्रविततिकरणस्तन्यते भास्करोऽयम्॥११॥

प्रतारकैरादृतमन्त्रकिञ्च-

न्मया तु निम्नुं लतया तदुष्टिभतम् । ऊनोक्तितातो न हि तेन काचित् खपुष्पहीनाऽपचितिर्ने हीयते ॥१२॥ 'संस्काराऽऽचा ैरकालाः 'सम्रचितरचनाः 'श्राद्ध 'नीती विवा 'दो 'दानो 'त्सर्ग-'प्रतिष्ठा जगात जयकराः सङ्गतार्थाऽनुबद्धाः॥

१ संस्कारमयूख २ आचारमयूख ४ समयमयूख ४ श्राद्धमयूख ५ नीति-मयूख । ६ विवादमयूख ७ दानमयूख ८ उत्सर्ग मयूख ६ प्रतिष्ठामयूख

प्राय'श्रित्तं विशु'द्धिस्तदन्तु निगदिता शा'न्तिरेवं क्रमेरा ख्याता ग्रन्थेऽत्र शुद्धे बुधजनसुखादा द्वादशैते मयूखाः ॥१३॥ भगवन्तभास्कराख्ये ग्रन्थेऽस्मिन् शिष्टसम्मते च ततः। शोन्तिविवेकमयुखः पतन्यते नीलकएठेन ॥१४॥

श्रस्पष्टपापनिदानकैहिकमात्रानिष्टनिवर्सकं पापाप्रयोजकं वैधं कर्मशान्तकम् । च्यादिहरदानादावित प्रसङ्गं वारियतुं निदानका न्तम् ॥ श्रामुष्मकानिष्टनिवर्सके तं वारियतुमैहिकेति । प्रायश्चित्तं वारियतुं मात्रपदम् । प्रायश्चित्तं त्वामुष्मकानिष्टनिवर्सकमिष, श्रमिचारप्रत्यमिचारादौ वारियतुं पापाप्रयोजकिमिति । तयोः फलतो हिंसात्वेन तदनुष्टानं प्रायश्चित्तोकेश्च पापप्रयोजकत्वात् । श्रनिष्टनिवर्सकत्वं च शान्तिकस्य तिन्दानपापनाशक्षप्रधामग्रीविघटत्वेन पुष्टिफलकं वैधं कर्म पौष्टिकम् ।

#### तत्र परिभाषा मार्कएडेयपुराऐ-

शिरस्नात श्व कुर्नीत दैविषच्यमथाऽपि वा ।
पाङ्ग्रु 'खोदङ्ग्रुखो वाऽपि रमश्रुकर्म च कारयेत् ॥१॥
तत्रैव-देवार्चना दिकर्माणि तथा ग्रविभिवादनम् ।
कुर्वीत सम्यगाचम्य प्रयतोऽपि सदा द्विजः ॥२॥
बृह्दम्मनुः-प्राणाना यम्य कुर्वीत सर्वकर्माणि संयतः ।
मार्कण्डेयः-सङ्कुल्प्य विधिवत्कुर्यात् स्नानदानव्रतादिकम् ॥३॥
देवलः-मास प्वतिथीनां च निमित्तानां च सर्वशः।
जल्लेखनमकुर्वाणो न तस्य फल्भाग्भवेत् ॥४॥

१ प्रायश्चित्तमयूख । २ शुद्धिमयूख । ३ शान्तिमयूख एवं द्वादशमयूख । ४ देविपत्रकर्म में शिर से स्नान करें। ५ इमश्रु कर्म पूर्व मुँह या उत्तर मुँह करावें। ६ देवता आदि का पूजन गुरु की बन्दना इत्यादि कर्म आचमन करके करें। ७ प्राणायाम करके। म सङ्कल्प युक्त स्नान करें। ९ मासपक्षतिथिवार निमित्त उच्चारण करें।

मासपत्तिथयः प्रयोगाधिकरणभूताः सर्वेऽिष यत्तु श्रनेकिदन-साध्ये कर्मण्याद्यदिने सङ्गल्पकालीनां तिथिमधिकरण्त्वेनोल्लिख्य ज्योतिष्टोमेनाह यद्ये इत्यादिसंकल्पवाक्यं प्रयुश्चते यायजूकाः ॥ तत्तु पदानामन्वयायोगादनादर्ज्वयम् ॥ यदिष केचित्तेन तेन रूपेण् प्रयोगाङ्गतया विहितानामे मासादीनामुल्लेख इति तदिष न माना-भावात् ॥ श्रविहितमासादिक श्राधानादी मासपत्तिथोनां ज्योति-ष्टोम एकादशीव्रतादी च मासपत्त्ययोहल्लेखाभावप्रसंगाच ॥ श्रतो ज्योतिष्टोमादावेकादश्यादिपृण्णिमान्तानामुल्लेखः ॥ प्रवमन्यत्रापीति दिक् ॥ श्रत्र श्रद्भाणामण्यधिकारः ॥

श्रावयेचतुरो वर्णान्हत्वा ब्राह्मणमप्रतः—

इत्यादिवाक्येषु श्रावणस्य वृत्यर्थतया रागमात्त्वेन तद्विधौ वैयश्यापत्तेनिजविवत्त्या श्रवणविधानातेषां पुराणश्रवणेऽधिकारेण ज्ञानसद्भावात् ॥ वैदिकमन्त्राभावे कथं तद्वत्सु कर्मस्वधिकार इति चेत् ॥
श्रृणु धर्मेप्सवस्तु धर्मज्ञाः सतां धर्ममनुष्ठिताः ॥ मन्त्रवर्जे न दुष्यन्ति
प्रशंसां प्राप्नुवन्ति चेति मनुना मन्त्रवर्जनात् ॥ यत्तु—मेधातिधिर्मेत्रवर्जिजतेषूववासादिष्वधिकारार्थमिदं न तु समन्त्रवेषु मन्त्रवर्णुदासेनाधिकारार्थमिति तन्त ॥ श्रमन्त्रकोपवासादिषु श्रवणविधिनैवाधिकारिषद्धावेतद्वाक्यानर्थक्यापतेः ॥ श्रत एव मोत्त्रधर्मेऽपि ॥
मन्त्रवर्जं न दुष्यान्त कुर्वाणाः पौष्टिकीं कियामिति ॥ श्रवेतद्वाक्यस्य
पौराण्यतेन तत्सामान्योपस्थितपौराणिकयोद्देशेन मन्त्रवर्जनविधौ
पौष्टिकीमित्यस्योद्देशायविशेषण्यत्वेनाविविज्ञतत्वम् ॥ एवं मनुवाक्यस्यतस्य चैकेव श्रुतिमूल्यत्वेन कल्प्यते ॥

गृह्यपरिशिष्टे-ध्यादौ विनायकः पूज्य अन्ते तु कुलदेवताः। शौनकः—पुण्याह्वाचनविधि वक्ष्यामोऽथ यथाविधि ॥१॥ प्रयोक्तुः कर्मणामादावन्ते चोदयसिद्धयेः। कर्मप्रदीपे-कर्मादेषु तु सर्वत्र मातरः सगणाधिपाः॥२॥ पूजनीयाः प्रयत्नेन पूजिताः पूजयन्ति ताः। प्रतिमासु च शुद्धासु लिखित्वा वा पटादिषु ॥३॥ ध्रिप वाऽद्यतपुञ्जेषु नैवेद्यैश्च पृथिविधैः। कुड्यलग्नावसोर्द्धाराः सप्तवारं घृतेन तु ॥४॥ कारयेत्पश्चधारा वा नातिनीचो न चोच्छिताः । श्रायुष्याणि च शान्त्यर्थं जप्त्वा तत्र समाहितः ॥४॥ षड्भ्यः पितृभ्यस्तद्तु श्रद्धदानम्रुपक्रमेदिति । षड्भ्य इति कातीयछन्दोगपरम् ॥

श्रन्येषां तु नव दैवत्यम्---

श्रन्वष्टकासु रुद्धौ च गयायां च त्त्रयेहिन । श्रत्र मातुः पृथक्श्राद्धमन्यत्र पतिना सह ॥६॥ इति वचनात् ॥

सर्वत्राचार्यो यजमानसमशाखीय एव ॥ श्रन्यथाऽऽचार्यस्य यज-मानशाख्यध्यनाभावे तच्छाखीयपदार्थानां निर्वाह एव न स्यात् ॥ स्वशाखयैवानुष्ठाने तु वैगुरायम् ॥ तथा च पराशरः—

यः स्वशाखां परित्यज्य परशाखां समाश्रयेत् । श्रममाणमृषिं कृत्वा सोऽन्धे तमसि मज्जतीति ॥१॥

ऋत्विजस्तु भिन्नशाखीया अपि सर्वेष्याचार्य्यं ब्रह्मार्त्विजो मधु-पर्केण पूज्याः ॥ ऋत्विजो वृत्वा मधुपर्कमाहरेदित्याश्वलायनोक्तेः ॥

सम्पूज्य मधुपर्केण ऋत्विजः कर्मकारयेदिति ॥ विश्वामित्रोक्तेश्वर्रै॥

यो ऋत्विक् यच्छ।खीयं कर्म करोति तच्छाखोक्तेन प्रकारेण काएडानुसमयेन मधुपर्क कुर्वन्ति यायजूकाः केचित् ॥ परे यजमान-शाखोक्तेन ॥ यजमानेन स्वशाखीया ऋत्विग्मिश्च स्वस्वशाखीयाः पदार्था श्रनेकेषु ऋत्विच् पदार्था नु समयेनानुष्टेया इति तु युक्तं तत्त-च्छाखाध्ययनजन्मज्ञानस्याङ्गत्वादेकप्रयोगविधिपरिम्रहाच्च ॥

ऋित्वग्भ्यो देयमुक्तं लिङ्गपुराणे— वस्त्रयुग्मं तथाप्यूरं केयूरं कर्णभूषणम् । श्रङ्गुलीभूषणं चैव मणिबन्धस्य भूषणम् ॥१॥ कण्टाभरणयुक्तानि प्रारम्भे धर्मकर्मणः । पुरोहिताय दत्वाऽथ ऋत्विग्भ्यश्चाऽपि दापयेत् ॥२॥

त्रापः पूर्यन्तेऽस्मिन्नित्यप्यूरं जलपात्रम् ॥

मत्स्यपुराणे-यजमानः सपत्नीकः पुत्रपौत्रसमन्वितः। पश्चिमद्वारमाश्चित्य प्रविशेद्यागमण्डपम् ॥१॥

संग्रहे-समन्ततश्च सिद्धार्थान् किरेद्रचोघ्नमन्त्रतः। प्रतिष्ठासारे-सर्वतः पञ्चगच्येन पोच्चयेद्यागमण्डपम्।। श्चापो हि ष्ठा तुचेनैव ततः स्वस्त्ययनं जपेत्।।२।।

श्रत्र हेमाद्रौ वास्तुपूजाप्युक्ता-

समएडपं प्रविश्याऽथ तोरणादि प्रपूच्य च । वास्तुयागं ततः कुर्यात् प्रासादे मएडपेऽथवा ॥३॥ वास्तुमएडले च-नैऋत्यां दिशि वास्त्वीशं ब्रह्माद्यांश्च समर्चयेत् इति शारदोक्तेः॥

वास्तुहोमस्तु भिन्नस्थिष्डिले कार्यः । मुख्यायतने वा ॥ तत्रा-प्यादौ पृथक्पयोगतया प्रधानसमतन्त्रतया वा ॥ शारदातिलके तु होम एव नोक्तः ॥ सर्वः च शान्तिकं पौष्टिकं महादानादिलौकिकाग्नौ कार्यम् । श्रौतस्मार्त्ताग्निप्राप्तौ मानाभावात् ।

यत्तु मनुः-वैवाहकेऽग्नौ कुर्वीत गार्ह्य कर्म यथाविधि ॥ पश्चयज्ञविधानं च पंक्तिवाऽन्वाहिकी ग्रहीति ।

तत्स्पष्टं गृद्योक्तपरम् । वैवाहिक इति च दारदायाद्य कालिकयो-रप्युपलक्तकम् । तत्सजातीयसंस्कारस्यैव साधनतावच्छेदकत्वात् ॥ यदिष याज्ञवल्वयः-स्मार्ते कमे विवाहाग्नौ क्वर्वीत प्रत्यहं गृही । दायकालाहृते वाषि श्रौतवैतानिकाग्निष्विति ॥१॥

तत्रापि सामान्यं स्मार्तपदं गार्ह्य उपसंहियते ॥ पतेनाहवनीया-द्यो निरस्ताः ॥ यदाहवनीये जुह्नतीत्यादावश्व प्रतिग्रहेऽष्टी वैदिकः त्वसाम्न्येन वैदिकाश्वदानप्रतिग्रहोपस्थितिवत् वैदिकहोमोपस्थितेश्च।
यद्यप्यत्र गार्ह्यस्मातं एव श्रीतं च वीतानिक एवेति नियमेन स्मृत्युकेऽपि कर्मणि श्रीतस्मार्त्ताग्न्योः प्राप्तिः सम्भाव्यते ॥ तथाऽपि न
साहवनीयावसथ्यत्वादिरूपेण ॥ किन्तु लौकिकसाधारण्डवलनकोनैव ॥ श्रवैधाहुतिप्रदेपे श्राहवनीयत्वादिविधातापनेश्च । श्रत एव
सर्वाधानिन श्रीपासनाभावाद्वैतानिप्राप्तेश्च तेन गार्ह्यं लौकिक
एव कार्य्यम् ॥ श्रमुमेव सर्वमर्थं स्मृत्यर्थसारक्रदपि संजग्राह ॥

गाह्य मौपासने कुर्यात्सर्वाधानी तु लौिकके । स्मार्ते च लौिकके कुर्याच्छौतं वैतानिकाऽग्निष्वित ॥१॥

यत्तु नारायण्वृतौ सर्वाधानिना सोमन्तोन्नयनादि गार्ह्यकर्मार्थं स्मार्त्ताग्निरुत्पादनीय इति ॥ तत्र मूलमन्वेष्यम् ॥ यद्पि विज्ञानेश्वरो इ.हयज्ञ श्रौपासन इत्यूचे ॥ तत्रापि मूलमन्वेष्यम् । कातीयपरं वा तत्स्त्रे तथास्नानात् ॥ श्रत एव विनायकशान्तौ लौकिकाग्निमेवाऽ-बोचत् । श्रतः स्मृत्युक्तं लौकिक एवेति ॥

कृत्यरत्नाकरे-शुभपात्रं तु कांस्यं स्यात्तेनाग्नि प्रण्येद्बुधः ।
तस्याभावे शरावेण नवेनाभिमुखं च तम् ॥१॥
गोभिलीये-श्राहूय चैव होतव्यो यो यत्र विहितोऽनलः ।
तथा-लक्तहोमे च विहः स्यात्कोटिहोमे हुतासनः ।
पूर्णाहुत्या मृडो नाम शान्तिके वरदः सदा ॥१॥
श्रन्येषु संस्कारादिकर्मस्वग्नेनाम विशेषाः प्रयोगरत्ने क्षेयाः ॥
होमविशेषो गोभिलीये-न मुक्तकेशो जुहुयान्नातिपातितजानुकः ।
उत्तानेनैव हस्तेन श्रङ्गष्टाग्रेण पीडितम् ॥१॥

संहताङ्गुलिपाणिस्तु वाग्यतो जुहुयाद्धविरिति । बहुकर्तृके होमे प्रत्याहुतित्यागाशकेहोंमारम्भ एव सर्वादेवता-श्चतुर्थ्यं तेनोद्दिश्य सर्वाणि द्रव्याणि त्यजेदिति हेमाद्यादयः॥

अथ विनायकस्नपनम्---

याज्ञवल्क्यः-विनायकः कर्मविष्नसिद्धचर्थे विनियोजितः।

गणानामाधिपत्ये च रुद्रेण ब्रह्मणा तथा ॥१॥
तेनोपसृष्टो यस्तस्य लच्चणानि निवोधत ।
स्वप्नेऽवगाह्यतेत्यर्थं जलं शुण्डांश्च पश्यति ॥२॥
काषायवाससञ्चेव क्रव्यादाँश्चाधिरोहति ।
श्चन्त्यजैर्गर्दभैरुष्ट्रेः सहैंकत्राऽवतिष्ठति ॥३॥
व्रजन्नपि तथाऽऽत्मानं मन्यतेऽनुगतं परैः ।

उपसृष्टः उपदुतः ॥ स्वप्ने स्रोतसाऽपिहयते तत्र मर्जित वान-त्वगाहनमात्रं विविद्यतं तस्य ग्रुभसूचकत्वात् ॥ श्रन्त्यजैश्चाएडालैः ॥ प्रत्यदनलक्तृणान्याह—

विमना विफलारम्भः संसीदत्यनिभित्तकः।
तेनोपसृष्टो लभते न राज्यं राजनन्दनः॥१॥
कुमारी नैव भर्तारमपत्यं गर्भमङ्गना।
प्राचार्यत्वं श्रोत्रियश्च न शिष्योऽध्ययनं तथा॥२॥
विश्विक्लाभं च नाष्नोति कृषि चापि कृषीवलः।

संसीदित कारणं विना दीनमनस्को भवति॥ एतदुपलज्ञणं यस्य यदिष्टं स चेदिष्टसामग्री सत्वे तन्न प्राप्नोतितदा तदुपद्भुतो बोध्यः॥ एतदुपद्भवपरिहारार्थं च कर्माह—

स्नपनं तस्य कर्तव्यं पुर्येह्न विधिपूर्वकम् ।

श्रित्र पुर्येऽह्नीत्यविशेषेऽपि विशेषोऽपरार्के भविष्ये—

शुक्कपत्ते चतुर्थ्यां च वारेण धिषणस्य च ।

तिष्ये च वीरनत्त्रते तस्यैव पुरतो नृपेति ॥१॥

श्रित्रादौ देवतापूजोक्ता तत्रैव—

व्योमकेशं तु सम्पूज्य पार्वतीं भामजं तथा ।

कृष्णस्य पितरं केतुं श्रिकमारं सितं तथा ॥१॥

धिष्णं क्लेदपुत्रं च कोणलक्ष्मं च भारत्।

#### विधुन्तुदं बाहुलेयं नन्दकस्य चधारणमिति॥२॥

व्योमकेशः शिवः ॥ भामजो गणेशः ॥ त्रारो भौगः ॥ स्तितः शुक्रः ॥ धिषणो गुरुः ॥ क्लेदपुत्रो बुधः ॥ कोणः शनैश्चरः ॥ लदम तद्वांश्चन्द्रः ॥ बाहुलेयः स्कन्दः ॥ नन्दकधारी कृष्णः ॥

गौरसर्षपकल्केन साज्येनोत्सादितस्य च । सर्वौषधेः सर्वगन्धेर्वित्तिप्तशिरसस्तथा ॥१॥ भद्रासनोपविष्टस्य स्वस्तिवाच्या द्विजैः शुभाः । गौरसर्षपपिष्टेन गोघृतयुक्तेनोत्सादितस्योद्वर्त्तितस्य॥

#### सर्वीषधानि छन्दोगपरिशिष्टे-

कुष्ठं मांसी हरिद्रे हे. ग्रुरा-शैलेय-चन्दनम् । वचा-कर्चूर-ग्रुस्ते च सर्वीपध्यः पकीर्तिताः ॥१॥

सर्व-गन्धेश्चन्दन-कुङ्कुमाऽगरु कस्तूरिका-जातीफलादिभिः । वेद्यां स्तितवस्त्रप्रच्छादितश्रीपर्णीपीठभद्रासनं स्वस्तिवाच्याः स्वस्तिवा-चनीयाः ॥ ब्राह्मणुद्धारा स्वस्तिवाचनं कारयेदित्यर्थः ॥

द्यश्वस्थानाइगजस्थानाइल्मोकात्सङ्गमाइहदात् ।
मृत्तिकां रोचनां गन्धं गुग्गुलुं चाप्सु नित्तिपेत् ॥१॥
या त्राहृता एकवर्णैश्रतुभिः कलशैह्दात् ।
चर्मएयानुहुहे रक्ते स्थाप्य भद्रासनं ततः ॥२॥

श्रानडुहं चर्म च वेद्यां प्राग्नीवमूर्ध्वलोम च स्थाप्यमिति विज्ञा-नेश्वरः॥ या श्रापः ते चत्वारोऽपि कलशा भद्रासनात्पूर्वादिचतुर्दिश्च स्थाप्या इति साम्प्रदायिकाः॥ पूर्वादिदिक्त्रयार्वास्थतकलशोदकेना-भिषेकक्रमेण मन्त्रानाह—

सहस्राचं शतधारमृषिभिः पावनं कृतम्। तेन त्वामभिषिश्चामि पावमानीः पुनन्तु ते।।१॥ भगं ते वरुणो राजा भगं सूर्यो बृहस्पतिः। भगमिन्द्रश्च वायुश्च भगं सप्तर्षयो ददुः ॥२॥ यत्ते केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच मूर्द्धनि । ललाटे केशयोरक्ष्णोरापस्तद्वन्तु ते सदा ॥३॥

सहस्राच्चं वहुशक्तिकं ॥ पावमानी इत्यनन्तरमाप इति शेषः॥ भगं कल्याणं॥ दीर्भाग्यमकल्याणम्। उद्दश्दिगवस्थितेनाभिषेके पूर्वी-कास्त्रय एव मन्त्राः॥ सर्वेश्चतुर्थमिति विज्ञानेश्वरोक्तलिङ्गात्॥

#### किञ्च--

स्नातस्य सार्षपं तैलं स्रुवेणौदुम्बरेण तु । जुहुयान्मूर्द्धनि कुशान् सन्येन परिगृह्य च ॥१॥

सन्यपाणिगृहीतकुशां तर्हि ते साषेपं तैलमुदुम्बरिनिर्मितेन स्रुवेण यजमानमूर्द्धनि जुहुयादाचार्यः॥

ितश्च सम्भितश्चैव तथा शालकटङ्कटौ । कृष्मागडो राजपुत्रश्चेत्यं ते स्वाहा समन्वितैः ॥१॥ नामभिवेलिमन्त्रेश्च नमस्कारसमन्वितैः ।

"नमः स्वस्ति स्वाहे"ित चतुर्थी। एतानि षट् विनायकनामानि इति विज्ञानेश्वरः॥ श्रपरार्कस्तु शालकटंकट इत्येकवचनान्तं पपाठ॥ तेन तन्मते पञ्चैवाहुतयो भवन्ति॥ श्रत्र लौकिकाग्नौ स्थालीपाकवि-धिना चर्रुं छत्वा तेभ्य एवाहुतिषट्कं हुत्वेन्द्राद्दिशलोकपालेभ्य-स्तन्नाम्ना वर्लि दद्यात्। इति मिताच्चरायाम्॥

तत्र चरुहोमे इन्द्रादिभ्यो बिलदाने च मूलं चिन्त्यम् । अन्ते स्वाहा समन्वितैर्नामभिजुँहुयात् । नमस्कारसमन्वितैश्चेत्यादिभ्य एव बिलं दद्यादिति वद्यमार्णेन सम्बध्यत इति तु युक्तम् ।

दद्याच्चतुष्पथे सुर्थे कुशानास्तीर्थ सर्वशः । कृताकृतांस्तराडुलांश्व पलकौदनमेव च ॥१॥ मत्स्यान्पकांस्वथैवामान्मांसमेतावदेव तु । पुष्यं चित्रं सुगन्धि च सुरां च त्रिविधामिष ॥२॥ मूलकं पूरिकापूपास्तथैवोिएडरकस्रजः । दध्यन्नं पायसं चैव गुडिपष्टं समोदकम् ॥३॥ एतान्सर्वान्समाहृत्य भूमौ कृत्वा ततः शिरः । कृताकृतान्सकृदवहत।न् पललौदनः ॥४॥

तिलिपिष्टिमिष्ट श्रोदन इति मिताच्तरायाम् ॥ श्रपक्षमांसं मिश्रं श्रोदन इति तु युक्तम् ॥ पललं क्रव्यमामिषं मिति कोशात् । श्रामान् पक्षान् मांसमेतावदेव तु । पक्षमपक्षमांसमन्यदित्यर्थः ॥ त्रिविधा सुरा गौडी पैष्टी माध्वी च । मूलकं कः दाकारो मच्यविशेष इति मिताच् रायाम् ॥ स्वरूपत एव श्राह्यमिति तु युक्तम् । उभवमपि श्राह्यमिति महार्गावे । श्रपूपाः स्रोहपका गोधूमविकारा इति विज्ञानेश्वरः । उण्डेरकाः पिष्टविकारा नानाविधास्ते स्रज इत्युच्यन्ते । गुडिपिष्टं गुडिमिश्रं शाल्यादिपिष्टं श्रत्र सुरामांसं चाऽब्राह्मणविषयम् ॥ ब्राह्मणैस्तु मांस-सुरास्थाने तु सलवणं पायसं दुग्धं च श्राह्यम् ।

पायसं लवणोपेतं मांसस्थाने प्रकल्पयेत्। दुग्धं लवणसंमिश्रं सुरास्थाने प्रकल्पयेत्॥१॥

स्मरणादिति महार्णवादिषु विनायकाम्बिकागायत्रीभ्यां विनायकमम्बिकां च नमस्कृत्य पूर्वोक्तद्रव्यजातं तयोरस्रत उपहृत्य तच्छेषं सूर्पे निधाय चतुष्पथे सूर्पे संस्थाप्य वर्लि दद्यादेतिर्मन्त्रैः।

बिलं गृह्णिन्त्वमं देवा श्रादित्या वसवस्तथा।
मरुतोऽथाश्विनौ रुद्राः सुपर्णाः पन्नगा ग्रहाः ॥१॥
श्रसुरा यातुधानाश्र पिशाचा मातरोरगाः।
शाकिन्यो यत्तवेताला योगिन्यः पूतना शिवाः॥२॥
जम्भकाः सिद्धगन्धर्वा नागा विद्योधरा नगाः।
दिक्पाला लोकपालाश्र ये च विद्यविनायकाः ॥३॥
जगतां शान्तिकर्तारो ब्रह्माद्याश्र महर्षयः।
मा विद्यं मा च पापं मा संतु परिपंथिनः ॥४॥

#### सौम्या भवन्तु तृप्ताश्च भूतप्रेताः सुखावहाः।

द्यादित्यापि देहलीदीपबदन्वेति । विनायकस्य जननीमुपित-ष्ठेत्ततोम्बिकाम् । दूर्वासर्षपपुष्पाणां दत्वार्घे पूर्णमञ्जलिम् । अनन्तरं विनायकमम्बिकां च दूर्वाद्यञ्जलिमर्घे च दत्वोपितिष्ठेत ।

जपस्थानमन्त्रमाह-रूपं देहि यशो देहि भगं भगवति देहि मे । पुत्रान्देहि धनं देहि सर्वान्कामाँश्च देहि मे ॥१॥

भगवित्तत्यूह्य विनायकमण्डुपतिष्ठेतेति विज्ञानेश्वरः। श्रत्र मदनः। विनायकोपस्थानं कृत्वाऽभ्विकोपस्थानं कार्य्यमित्याह । किञ्च—

ततः शुक्राम्बरधरः शुक्रमाल्यानुरुपनः । ब्राह्मणान्भोजयेद्दयादृस्रयुग्मं गुरोरपि ॥१॥

गुरोराचार्याय । स्रापि शब्दाद्विणामिष ॥ एवंविधं कर्म कुर्वतः। एवं विनायकं पूज्य ग्रहांश्चैव विधानतः।

कर्मणां फलमामोति श्रियमामोत्यतुत्तमाम् ॥१॥

श्चस्याः कर्माङ्गत्वेन पौष्टिकत्वेन च वर्णचतुष्टयस्याप्यत्राधिकारः॥ शुद्धस्य तु मन्त्रवर्जे तान्प्रक्रस्य॥

मन्त्रवर्जन दुष्यन्ति कुर्वाणाः पौष्टिकीं क्रियामिति मोच्छर्म-श्रवणादिति वदन्ति॥ महार्णवोऽपि॥यजमानस्तु ग्रद्धश्चेदिति वदन् तस्याधिकारमभिष्नेति॥ इति विनायकशान्तिनिर्णयः समाप्तः॥

#### श्रथ प्रयोगः॥

कर्ता देशकाली सङ्कीत्यां ऽमुककर्मणो निर्विञ्चतासिद्धवर्धमुपसर्ग-निवृत्यर्थं वा विनायकस्मपनं कारण्य इति सङ्करपयेत् ॥ ततः पुण्याह-वाचननान्दीश्राद्धान्तं यथोक्तं कुर्यात् । अपरे पुण्याहवाचनं नेच्छन्ति॥ अस्रे तस्य कर्त्तव्यत्वात् ॥ अथाचार्य्यं ऋत्विक् चतुष्ट्यं वृण्णयात् ॥ ऋत्विजो न सन्तीति केचित् । तदाचार्यं एव वच्यमाणमभिषेकं कुर्यात् ॥ यजमानः प्रतिमास्वच्ततपुञ्जेषु वा । शिवं, पार्वतीं, गणेशं, वसुदेवं केतुं, अर्कं, भौमं, शुक्रं, गुरुं, बुधं, शनंं, चन्द्रं, राहुं, स्कन्दं, हुष्णां,

चावाद्य पूजयेत् ॥ तथाऽऽचार्यः पञ्चवर्णैः पूर्वादिचतुर्दिच् चत्वारि-मध्यस्थवेद्यां चैकमिति स्वस्तिकपञ्चकमालिख्य मध्यस्थस्वस्तिकोः परि श्रानडुहं रक्तं चर्म प्राचीनश्रीवमूर्ध्वलोम संस्थाप्य तस्योपरि श्रीपर्णीं पीठं संस्थाप्य सितेन वाससा संद्वाद्येत्॥ एतद्भद्रासन-मिति । श्रथ चतुर्षु स्वस्तिकेषु पूर्वादिदिच् चत्वारोऽपि ऋत्विजः कलशान्संस्थापयेयुः ॥ श्राचार्यो वा ॥ तत्राऽयं प्रकारः ॥ ॐ महीद्यौः पृथिवी च नेति भूमि स्पृशन् ॥ सम्प्रार्थ्य ॐश्रोषधयः समिति यवान् चिप्त्वा ॐ त्राजिझकलशेष्वितितेषु कलशं संस्थाप्य ॥ॐवरण्स्योत्त-म्भनमसीति उदकेनापूर्यं ॥ त्वां गन्धवेति गन्धं चिपेत् (केचित्तु चन्दनागरकस्त्री-कर्पूर-गोरोचनादीन गुग्गुलुं च निद्धिपन्ति) उँ या श्रोषधीरिति सर्वोषधीः चिपेत् ॥ ॐ काएडात्काडादिति दुर्वाः ॥ ॐ ब्रश्वत्थेव इति पञ्चपल्लवान् ॥ ऋों स्योना पृथिवीत्यनेन मृत्तिकां चिपेत्॥ ( श्रथवा उद्भृतासि वराहेण कृष्णेन शतवाहुना॥ मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्टतं इतमित्यनेन मन्त्रेण पञ्च मृदः चिपेत्) याः फलिनीरिति फलम् । ॐ परिवाजयतीति पञ्चरत्नानि चिपेत्॥ श्रों हिरण्यगर्भेति हिरएयं चिपेत्॥ श्रो युवा सुवासेति वस्त्रयुग्मेन वेष्ट्येत् ॥ ॐ पूर्णा दर्वी परेति कलशोपरि धान्यपूर्णं पूर्णपात्रं निद-ध्यात्॥ अत्र वरुणावाहने पूजने ऽपि केचिदाहुः॥ ततः कलशे सर्वे समुद्रा इति गङ्गाद्यावाहनम् । ततः कुम्भाभिमन्त्रणम् ॥ शस्य मुखे विष्णुरित्यादिना इति ॥ ततः कुम्भप्रार्थना ॥ देवदानव-संवादे ... सर्वदेति ॥ ततो ऋत्विज आनो भद्रेति शान्तिस्कं पठेयु-रिति केचित् ॥ आनो भद्रेति शान्तिस्कस्य राहुगणो विश्वेदेवास्त्रि-ष्टुप् श्राद्या सप्तमी च जगत्यः षष्ठी विराट् शेषास्त्रिष्टुभःशान्तिस्कजपे विनियोगः॥ ॐ श्रानो भद्राः १२ मंत्राः॥ शन्नो ब्वातः पवतामित्या-दिकां वा ३ मंत्राः ॥ तस्मिन्नेव समये श्राचार्यो भद्रासनस्योत्तरः ईशान्यां वा वस्त्राच्छादितपीठादी विनायकप्रतिमामस्विकाप्रतिमां चाग्न्युत्तारणपूर्वकं प्रतिष्ठाप्य षोडशोपचारैः पूजयेदिति निवन्ध-**इतः ॥** तत्र विनायकमन्त्रः ॥ ॐ गणानान्त्वा० ॥ ॐ तत्पुरुषाय विद्यहे वक्रतुग्डाय धीमहि ॥ तन्नो दन्तिः प्रचोदयादिति वा॥ गौर्यास्तु । ॐ श्रायं गौः । श्रम्बेऽश्रम्बिके० वा ॥ सुभगायै विद्यहे काममालिन्यै धीमहि ॥ तन्नो गौरी प्रचोदयादिति ॥ अत्र मितान्तरायां

चरहोमोप्युक्तः॥ शिष्टाश्च कुर्वन्ति तस्मिन्पत्ते श्राचार्यो गृह्योक्तिविध्या कुर्वे स्थितिहले वाऽनि प्रतिष्ठाप्य प्रादेशमात्रं सिमदृद्धयमान्दायास्मिन्होमे देवतापरिग्रहार्थमन्वाधानं करिष्य इति सङ्कल्य चत्रुषी श्राज्येनेत्यन्तमुत्कवा श्रत्र प्रधानं मितं सिमतं शालंकटं कृष्माडं राजपुत्रमेताः प्रधानदेवता एकेकया चर्वोहृत्वा यद्ये॥ शेषेण स्विष्टकृतमित्याद्युत्कवाग्नावाद्ध्यात्॥ श्रपराक्ष्मते तु पञ्चेवाहृतयस्तन्मते त्वाधाने होमद्वये च तथैवानुसन्ध्यम् ॥ ततः परिसमूहनादिन्वस्थ्रपणान्तं कृत्वा गोषृतलोलीकृतेन गौरसर्षपक्ष्केनोद्वत्तिताङ्गं सर्वौषधिचूणैः कस्तूरिकागरु-चन्दनादिभिविलिप्तशिरसं यजमानमाचार्यो भद्रासने उपवेश्येत्॥ ततो यजमानः स्वस्तिवाचनं कुर्यात्॥ श्रनन्तरं रूपगुण्शालिनोभिः सुवासिनीभिनीराजनं कारयेत्। ततो भद्रासनात्पूर्वदेशाविध्यतं कलशमादायाभिष्ठच्चेदाचार्यः।

मन्त्रश्र-सहस्रात्तं शतं धारमृषिभिः पावनं कृतम् । तेन त्वामभिषिश्वामि पावमानीः पुनन्तु ते॥१॥

ततो दक्तिणदेशावस्थितं कलशमादाय।भिषिश्चेदाचार्यः।

मन्त्रः-भगं ते वरुणो राजा भगं सूर्यो बृहस्पतिः। भगमिन्द्रश्च वाग्रश्च भगं सप्तर्पयो ददुः॥२॥

ततः पश्चिमदिगवस्थितं कलशमादायाभिषिञ्चेदाचार्यः।

मन्त्रः-यत्ते केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्द्धनि । ललाटे केशवो रक्ष्णोरापस्तं घ्रन्तु ते सदा ॥३॥

तत उदकदेशावस्थितकलशमादाय पूर्वोक्तैस्त्रिभिर्मन्त्रैरभिषि-श्चेत्॥ बृहत्पराशरेणाऽन्येऽपि मन्त्रा उक्ताः।

मन्त्रः-एतद्वे पावनं स्नानं सहस्रात्तमृषिसमृतम्। तेन त्वा शतधारेण पावमान्यः पुनन्तु माम् ॥१॥ शक्रादिदशदिनपाला ब्रह्माद्या केशवाद्यः। श्रापस्तं घ्रन्तु दौर्भाग्यं शान्ति यच्छन्तु सर्वदा॥२॥ वेदमन्त्रः-ॐ सुमित्रिया नऽ श्रापऽ श्रोषधयः सन्तु। दुर्मित्र ास्तस्मे सन्तु योस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥
मन्त्रः- समुद्रा गिरयो नद्यो मुनयश्च पतित्रताः ।
दौर्भाग्यं झन्तु ते सर्वं शान्ति यच्छन्तु सर्वदा ॥४॥
पादगुल्फोरुजङ्घादौ नितम्बोदरनाभिषु ।
स्तनोरुबाहुहस्ताग्रग्रीवा श्रंसाझिसन्धिषु ॥४॥
नासाललाटकर्णभूकेशान्तेषु च यत्स्थतम् ।
तदापो झन्तु दौर्भाग्यं शान्ति यच्छन्तु सर्वदा ॥६॥

इत्यैतैरप्यभिषिञ्चेदिति केचित् । चतुर्थकलशाभिषेचन एवैते पठनीयाः ॥ अथाचार्यो यजमानस्य पश्चिमत तिष्ठन् सन्यपाणिगृहीत-कुशां तर्हि ते यजमानशिरसि स्रौदुम्बरेण् स्नुवेण् सार्षपतैलं जुहुयात्।

मन्त्रा:-ॐ भिताय स्वाहा । यजमानः-इदं मिताय न मम ।।१॥
ॐ सम्मिताय स्वाहा । इदं सम्मिताय न मम ।।२॥
ॐ शालाय स्वाहा । इदं शालाय न मम ।।१॥
ॐ कटंकटाय स्वाहा । इदं कटंकटाय न मम ।।४॥
ॐ कूष्माण्डाय स्वाहा । इदं कूष्माण्डाय न मम ।।४॥
ॐ राजपुत्राय स्वाहा । इदं राजपुत्राय न मम ।।६॥

त्रथाचार्योग्यर्चनाद्याज्यभागान्तं कृत्वा चरुणा मिता-दिभ्य एव जुहुयाद्यजमानस्तु पूर्ववत्त्यजेत् ॥ श्राचार्य्यः स्विष्टकृदादिप्रणीताविमोकान्तं कर्मशेषं समापयेत् ॥ यजमानस्तु श्राभषेकशालायामिन्द्रादिदशदिक्पालेभ्या नाम्ना दिस् विद्त्ति च बलीन् दद्यात् ॥ एतानि श्राग्निस्थापन-चरुहोम-दिक्पाल-बलिदानानि मितात्त्ररामनुरुध्योक्तानि ॥ ततो मिताय एप बलिनं ममेति पायसेन माषभक्तेन वा बलि दत्वा विनायकाम्बिकयो-रत्रतः सकृदबहततगुडुलानां मांसेन तिलिपष्टेन वा मिश्रमोदनमत्स्य-मांसं पक्वमपक्वं गौडी पैष्टी माध्वीति त्रिविधां सुरां च ॥ व्राह्मणस्य मांसस्थाने सलवणं पायसं सुरास्थाने सलवणं दुग्धं चित्र पुष्पं सुगन्धिद्वस्यं मूलकं पूरिकाः श्रपूपाः उंडेरकसृजः ॥ दश्यम्नं पायसं गुडमिश्रतगडुलादिपिष्टं मोदकांश्च पात्रे संस्थाप्य तत्पुरुषाय विद्याहेति मन्त्रेण विनायकाय ॥ सुभगाय विद्याहेति मन्त्रेण चाम्बिकाये निवेद-येत् । द्राथाचार्यो नृतनशूर्पं सर्वमुपहारशेषं संस्थाप्य चतुष्पथं गत्वा तत्र गोमयेनोपिलप्य कुशानास्तीर्यं तत्र शूर्पं प्राङ्मुंखं संस्थापयेत् ॥ यजमानस्त्वेतैर्मन्त्रेर्वेलं द्यात् ॥

मन्त्रः — बिलं गृह्णिन्त्वमं देवा आदित्या वसवस्तथा।

मरुतोऽथाश्विनौ रुद्राः सुपर्णाः पन्नगा ग्रहाः ॥१॥

श्रास्त्रा यातुधानाश्च पिशाचा मातरोरगाः।

शाकिन्यो यत्त्ववेताला योगिन्यः पूतनाः शिवाः॥२॥

जुम्भकाः सिद्धगन्धर्वा नागा विद्याधरा नगाः।

दिक्पालाः लोकपालाश्च ये च विद्यविनायकाः॥३॥

जगतां शान्तिकर्तारो ब्रह्माद्याश्च महर्षयः।

मा विद्यं मा च मे पापं मा सन्तु परिपन्थिनः ॥४॥

सौम्या भवन्तु तृप्ताश्च भूतमेताः सुखावहाः॥इति॥

श्रनेन बिलदानेन देवादित्य-वसु-मस्दिश्व-स्द्र-सुपर्ण-पन्नग-श्रहा-सुर-यातुधान-पिशाच-मात्रुरग--शािकनी--यद्म-वेताल--योगिनी--पूत्ना-शिवजुम्मकसिद्ध-गन्धर्ग-नग-विद्याधर-नग-दिक्पाल--लोकपाल-विद्य-विनायक-जगच्छािन्तकर्त् ब्रह्मादिमहर्षि-भूत-प्रेतेभ्य इदं न ममेति त्यागः॥ ततः शिरसा भूमिं गत्वा पुष्पयुत्तमर्घे तत्पुरुषायेति मन्त्रेण विनायकाय सुभगाये इत्यम्विकाये च दद्यात् ॥ ततो दूर्वासर्षपपु-ष्पाणां पूर्वोक्तविनायकमन्त्रेण गणानाञ्चेति वा विनायकायाञ्जलि द्यात्॥श्रम्बिकाये पूर्वोक्तम-त्रेण श्रम्बेऽश्रम्बिके० श्रञ्जलि द्यात्॥ ततो विनायकमम्बिकां चोपतिष्ठेत्॥

मन्त्रस्तु-रूपं देहि यशो देहि भगं भगवति देहि मे । पुत्रान्देहि धनं देहि सर्वान्कामांश्व देहि मे ॥१॥

श्रस्मिन्मन्त्रे भगं भगवन्देहि म इत्यूद्य विनायकमुपतिष्ठेत्॥ श्रनन्तरं यजमानः प्राङ्मुखोपविष्ट उदङ्मुखानाचार्यादीन्पूजयित्वा दिच्णां दद्यात् । तत उत्तिष्ठ ब्रह्मण्ड्यत इत्यनेन यान्तु देवगणा इत्यनेन च विनायकमिन्वकां चोत्थाप्य विस्तृत्य प्रतिमादिसर्वां सामग्रीमाचार्याय दद्यात् । ततो यथाशिक भूयसीं दिच्चणां दीनानाथेभ्यो दत्वा यथाशिक विनायकप्रीत्यर्थमिन्वकाप्रीतये च ब्राह्मणान्मोजियत्वा सङ्कर्ण्य ॥ वा यस्य स्मृत्येत्याद्युक्तवा न्यूनातिरिक्तं सर्वे सम्पूर्णमस्त्वित तान्सम्प्रार्थ्य तैरनुक्षातः सुद्वद्युतो भुक्षीत ॥

इति श्रीमच्छङ्करभट्टस्रिस्नुभट्टनीलकगठकते भगवन्तभास्करे शान्तिमयूखे विनायकशान्तिपद्धतिः समाप्ता ॥

#### त्रथ ग्रहयज्ञः।

स्कान्दे-देवदानवगन्धर्वा यत्तरात्तसिकत्रराः।
पोड्यन्ते ग्रहपीडाभिः किं पुनर्भुवि मानवाः॥१॥
शनैश्वरेण सौदासो नरमांसे नियोजितः।
राहुणा पीडितो राजा नलो भ्रान्तो महीतले ॥२॥
श्रद्भारकविरोधेन रामो राष्ट्रान्तिवासितः।
श्रष्टमेन शशाङ्केन हिरण्यकशिपुहतः॥३॥
रविणा सप्तमस्थेन रावणो विनिपातितः।
गुरुणा जन्मसंस्थेन हतो राजा सुयोधनः॥४॥
पाण्डवा बुधपीडायां विकर्मणा नियोजिताः।
पष्टेनोशनसा युद्धे हिरण्यान्तो निपातितः॥॥॥
पते चान्ये च बहवो ग्रहदोषैस्तु पीडिताः।

याज्ञवल्क्यः-ग्रहाधीना नरेन्द्राणामुच्छायाः पततानि च । भावाभावौ च जगतस्तस्मात्पूज्यतमा ग्रहाः ॥१॥

प्रयोगपारिजाते उत्पत्तपरिमले-

कार्यारम्भेषु सर्वेषु प्रतिष्ठास्वध्वरेषु च । नव-वेश्मप्रवेशे च गर्भाधानादिकमेसु ॥१॥ द्यारोग्यस्नानसमये संक्रान्तौ रोगसम्भवे । द्यभिचारे च यः कुर्याइग्रहपूजां विधानतः ॥२॥ सोऽभोष्टफलमामोति निर्विघ्नेन न संशयः । श्रोकामः शान्तिकामो वा ग्रहयः समाचरेत् ॥३॥ वृद्यायुः पुष्टिकामो वा तथैवाभिचरत्रि ।।इति॥

मात्स्ये—ग्रहयज्ञास्त्रिधा प्रोक्ताः पुराणश्रुतिकोविदैः।
प्रथमोऽयुतहोमश्र लच्चहोमस्ततः परम् ॥१॥
तृतीयः कोटिहोमस्तु सर्वकामफलप्रदः।
ग्रहस्योत्तरपूर्वेण मण्डपं कार्यद्विधः॥२॥
क्द्रायतनभूमौ वा चतुरस्रमुदक्सवम् ।
दशहस्तमथाष्टौ वा हस्तान्कुर्याद्विधानतः॥३॥
तस्य द्वाराणि चत्वारि कर्चव्यानि विचच्चणैः॥इति॥

स्कान्दे-नवग्रहमखे कुएडं हस्तमात्रं समं भवेत् । चतुरस्रमधो हस्तं योनिवक्त्रं समे खलम् ॥१॥

योनिरेव वक्त्रं यस्य तत् । पुत्रादिकामनया तु योन्याद्याकारा श्रिपि भवन्ति । चतुरङ्गुलविस्तारा मेखला तद्वदुच्छिता । श्रत्र विशेषोपदेशादेकेव मेखला ।

मात्स्ये-वितस्तिमात्रा योनिः स्यात् षट्सप्ताङ्गुलविस्तृता । कूर्मपृष्ठोत्नता मध्ये पारवयोश्चांगुलोच्छिता ॥ गजोष्ठसदृशी तद्वदायता च्छिद्रसंयुता । मेखलोपरि सर्वत्र श्रश्वत्थदलसन्निभा ॥२॥

एकं कु॰डं च मग्डपेशानभागे उदीच्या वेति हेमाद्रिः । श्रयु-तादि होमं प्रकृत्य वशिष्ठस्तु--

> कुगडं तन्मध्यभागे तु कारयेच्चतुरस्रकम् । कुगडस्येशानभागे तु पूजावेदिं प्रकल्पयेदित्याह ॥१॥

श्रत्र चतुरस्रमित्यनेन स्तियादिपुरस्कारेण विहितानामाकार-विशेषाणां स्त्रीपुरस्कारेण विहितस्य योन्याकारस्य निवृत्तियोंनी पुत्राः शुभंदत्तेन्द्राभ इत्याद्याः काम्यास्त्वाकारा भवन्त्येव ॥वेद्यां विशेषमाह-

गोभिलः-कुण्डस्य प्राग्रदीच्यां वा प्राच्यामुत्तरतोऽपि वा ।
चतुरस्नं चतुर्द्वारं कर्त्तव्यं ग्रहपीठकम् ॥१॥
श्रीकामः पूर्वतः कुर्यात्पुष्टचर्थं दिल्लाणेन तु ।
पश्चाद्दिजन्मसिद्धचर्थं शान्त्यर्थं चोत्तरेण तु ॥२॥
ऐशान्यां सर्वकामाय लाग्नेय्यां त्वभिचारके ।
नैऋत्यां पुत्रलाभाय पुष्टचर्थं वायवेन त्विति ॥३॥

प्रहवेदी तु स्थिएडलपत्तेऽपि कार्या।

वशिष्टः-लिखेदष्टदलं पद्मं वेदिकोपरि तग्डुलैः।

श्रत्रैकाग्निब्रह्माचार्यपत्तमुक्त्वा तेषां नवसंख्या कुएडेषु तत्तद्द-ग्रहाकारांश्चाह—

#### प्रयोगपारिजाते भगवान्-

मनोरमे शुचौ देशे होमशालामलङ्कृताम् ।
कृत्वा तु संद्रतां श्राज्ञो ग्रहस्थानं प्रकल्पयेत्॥१॥
तन्मध्ये भास्करस्थानं भवेत्पूर्वोत्तारे बुधः ।
पूर्वस्मिन्भागवस्थानं सोमो दिच्चणपूर्वके ॥२॥
दिच्चणस्यां कुजस्थानं राहोर्दिचणपश्चिमे ।
शनेस्तु पश्चिमस्थानं केतोरुत्तरपश्चिमे ॥३॥
उत्तरस्यां गुरोः स्थानमेवं च स्थिण्डलुं भवेत् ।

#### स्थण्डिलमग्न्यर्थम् ।

भास्करस्य च दृत्तं स्याचन्द्रस्य चतुरस्रकम् । कुजस्य तु त्रिकोणं स्याद्वाणाकारं बुधस्य तु ॥१॥ गुरोदीर्घचतुष्कोणं पश्चकोणं सितस्य तु । चापाकारं शने राहोः सूर्पकेतोध्वेजाकृतिम् । २॥ नवधा विभजेद्गि श्रोतकर्मविधानतः । ऋत्विजश्र यथायोगं कुण्डेषु ब्राह्मणाः पृथक्॥ २॥ श्रथ स्रुवेण जुहुयात्सूर्य्यपावकदारुकान् । ऋत्विजो जुहुयुः सर्वे स्रुवेणेवं पृथक् पृथक्॥ ॥ श्रष्टो तु शकलान् गृह्य समारोपणमिष्ठ । मधानासौ निधायेमानित्यं होमं समाचरेदिति ॥ ॥

श्रत्रैव च स्थिएडलं भवेदित्यनेन स्थिएडलानां कुएडानां च स स श्राकारस्तत्तिद्दश्च निवेशश्चोक्तः । ब्राह्मलाः पृथिगित्यनेन नवा-ऽऽचार्या ब्राह्मलाश्च नवेत्युक्तं । श्रत्रार्थसंचेपः प्रयोगपारिजाते । मध्यकुएडे स्मार्त्ताग्नं प्रणीय ततो नवाचार्या श्रष्टसु कुएडेप्विग्नं प्रणीयाऽऽज्यभागान्तेऽकादिसमिद्धिगुँडोदनादिहिविर्भिराज्येन च श्रहादिमन्त्रेर्द्वत्वा ज्यस्तसमस्तज्याद्वतिभिश्च तिलान् हुत्वा स्विष्ट-स्दादिहोमशेषं कृत्वा पूर्णांहुतीर्जुहुयुरिति॥

#### कुएडमुक्त्वा स्कान्दे—

तस्य चोत्तरपूर्वेण स्थिषिडलं हस्तमात्रकम् । त्रिवपं चतुरसं च वितस्त्युच्छायसम्मितम् ॥१॥

स्थिष्डलं वेदिः। वप्रो मेखला।

भारस्ये-द्विरङ्गुलोच्छितो वपः प्रथमः समुदाहृतः । त्र्यङ्गुलोच्छायसंयुक्तं वपद्वयमथोपरि ॥१॥ द्वचङ्गुलस्तत्र विस्तारःः सर्वेषां कथितो बुधैः ।

#### तत्र ग्रहानाऽऽह याज्ञवल्क्यः-

सूर्यः सोमो महीपुत्रः सोमपुत्रो बृहस्पतिः। शुक्रः शनैश्वरो राहुः केतुश्चेति प्रहाः स्मृताः॥१॥ स्कान्दे-नवग्रहमखे कुर्यादृत्विजश्वतुरः शुभान्। श्रथवा चैकमभ्यर्च्य विधिना ब्रह्मणा सह॥१॥

#### त्रिविधमपि नवग्रहमुपक्रम्य वसिष्ठस्तु-

षोडश ब्राह्मणान् शुद्धान् द्रम्भानृतविवर्जितान्। तेषां मध्ये श्रेष्ठतममाचार्यं तं प्रकल्पयेदिति ॥१॥

श्रत्र पारिजाते नवाचार्या एको ब्रह्मा षड्ट्रात्वजः । श्राचार्येभ्यो नवभ्यश्च ग्रहार्चनफलं तत इत्युक्तेः । श्राचार्यः कर्म एव कुर्यात् ॥ परे त्वारम्भमात्रम् । धेन्वाद्या ग्रहद्दिश्णा श्रिप तेभ्य एव देया इत्याद्युक्तम् , तद्युक्तम् । उपक्रमे एकाचार्यस्य संस्कार्यं त्वेनैकत्वमिववित्तम् । तथाप्याचार्यस्य भृतमाव्युपयोगामावात्संस्कार्य्यत्वानुपपत्तेर्वृत श्राचार्यः स्वकर्म कुर्यादिति कल्पिते वाक्ये उपादेयत्वादाः चार्यस्य भवत्येकत्वं विविद्यतम् । उपपादितं चेदमध्वर्युं वृश्गीते होतारं वृशीते पुरोहितं वृशीत इत्यत्र मिश्रैः ।

जन्मभूर्गोत्रमग्निश्च वर्णस्थानम्रुखानि च । योऽज्ञात्वा कुरुतेशान्ति ग्रहास्तेनाऽवमानिताः॥१॥

तत्र वर्णजन्मनि आह दामोदरीये द्रद्भपराशरः-

रक्तः कश्यपजो भातुः शुक्को ब्रह्मसुतः शशी।
रक्तो रुद्रसतो भौमः पीतः सोमस्रतो बुधः॥१॥
पीतो ब्राह्मसुराचार्यः शुक्रः शुक्रो भृगूद्दः।
कृष्णः शनी रवेः पुत्रः कृष्णो राहुः प्रजापतेः॥२॥
कृष्णः केतुः कृशनृत्थः कृष्णाः पापास्त्रयोऽप्यमी॥

स्कान्दे-उत्पन्नोऽर्कः कलिङ्गेषु यम्रनायां च चन्द्रमाः।
श्रङ्गारकस्त्ववन्त्यायां मगधायां हिमांशुजः॥१॥
सैन्थवेषु गुरुर्जातः शुक्रो भोजकटे तथा।
शनैश्ररस्तु सौराष्ट्रे राहुर्वैराठिनापुरे॥२॥
श्रन्तर्वेद्यां तथा केतुरित्येता ग्रहभूमयः।
यस्य यस्य च यद्गोत्रं तत्ते वक्ष्याम्यतः परम्॥

श्रादित्यः करयपे गोत्रे श्रात्रे यश्चन्द्रमा भवेत् ।
भरद्वाजोद्भवो भौमस्तथाऽऽत्रेयश्च सोमजः ॥४॥
शक्तपूज्योऽङ्गिरो गोत्राः शुक्रो वै भागवस्तथा ।
श्रानः काश्यप एवाट्य राहुः पैठीनसिस्तथा ॥४॥
केतवो जैमिनेयाश्च ग्रहाग्निस्तदनन्तरम् ।
श्रादित्यः किपलो नाम पिङ्गलः सोम उच्यते ।
धूमकेतुस्तथा भौमो जाठराग्निबुधः स्मृतः ॥
ग्ररोश्चैव शिखानाम शुक्रो भवति हाटकः ।
शनैश्चारो महातेजा राहुकेत्वोहुताशनः ।

एतानि ग्रहविशेषतोऽग्निनामानि । कर्मविशेषतोऽपि देवीपुराणे-

ग्रुभो ग्रहविधौ ह्यग्निर्लक्तहोमे पराजितः । कोटिहामे शिवो विह्नः सर्वकामप्रदायकः॥१॥

किचानु-लन्नहोमे तु विद्वः स्यात्कोटिहोमे हुताशनः ।
स्कान्दे-भास्कराङ्गारको रक्तो श्वेतो शुक्र-निशाकरो ।
सोमपुत्रो गुरुश्चैव ताबुभौ पीतको स्मृतौ ॥
कृष्णं शनैश्चारं विन्द्याद्वाहुं चित्राश्चा केतवः ।
मध्ये तु भास्करं विद्याच्छिशनं पूर्वदिन्तिणे ॥२॥
दिन्तिणे लोहितं विन्द्याद्बुधं पूर्वोत्तरेण तु ।
उत्तरेण गुरुं विन्द्यात्पूर्वेणैव तु भार्गवम् ॥३॥
पश्चिमेन शनिं विन्द्याद्वाहुं पश्चिमदिन्तिणे ।
पश्चिमेन शनिं विन्द्याद्वाहुं पश्चिमदिन्तिणे ।
पश्चिमेन शनिं विन्द्याद्वाहुं पश्चिमदिन्तिणे ।
श्चिथवा वर्णकैः कार्याः कार्याः स्वर्णदिधातुभिः।

याज्ञवन्क्यः नताम्रकात्स्फटिकाद्रक्तचान्द्रनात्स्वर्णजादुभौ ॥ रजताद्यसः सीसात्कांस्यात्कार्या ग्रहास्तथा । विशिष्ठः - यथारुचित्रमाणेन प्रतिमाः कल्पयेत्सुधीः ॥ अत्र सर्वत्र प्रहाणां सूर्यादिः स्पष्टः । वौधायनस्तु सूर्याङ्गारक-शुक्र-चन्द्र-बुध-गुरु-शनय इत्याह —

स्कान्दे-भानुं तु मण्डलाकारं सेामं तु चातुरस्नकम् । श्रङ्गारकं त्रिकोणं च बुधं बाणाकृतिं तथा ॥१॥ दीर्घचतुरस्रं गुरुं पश्चास्रं भागवं तथा । धनुस्तुल्यं शनिं विन्द्याद्राहुं सूर्पाकृति तथा ॥२॥ ध्वजाकाराः केतवश्च गणेशं तत्र रूपिणम् ।

रूपिणं हस्तपादाद्यवयवयुक्तम्। स्थापयेच्छुत्कतण्डुलैर्वर्णकैर्लेख्या इत्येतत्पत्तयोर्मण्डलाद्याकारतेति हेमाद्भिः।

तत्रीव-शुक्राकी पाङ्मुखी ज्ञेयी गुरु-सौम्यावुदङ्मुखी। प्रत्यङ्मुखी शनि-सोमी शेषा दत्तिणतो मुखाः ॥१॥

इदं च शुकादोनां प्राङ्मुखत्वादि श्रादित्याभिमुखाः सर्व इति मारस्योकादित्याभिमुखत्वेन विकल्पते । यत्तु हेमाद्रिविकल्पपरि-जिहीर्षया प्राङ्मुखावूर्ध्वेदष्टी उदङ्मुखौ वामदृष्टी प्रत्यङ्मुखोऽघो-दृष्टिर्दित्त्त्त्यातो मुखाः दित्त्त्यादृष्ट्य इति व्याचष्ट तत्र मूलं चिन्त्यम्। विरोधतादवस्यं च । वर्णक्षपगुणैर्युकान् व्याहृत्यावाहयेन्तु तान्।

मात्स्ये-पुर्णयेहि विप्रकथिते कृला ब्राह्मणवाचनम् । श्रिप्रणयनं कृत्वा वेद्यामावाहयेत्सुरान् ॥१॥ देवानां तत्र संस्थाप्या विश्वतिद्वीदशाधिका । श्रादित्याभिसुखाः सर्वे साधिप्रत्यिषदेवताः ॥२॥

#### विष्णुधर्मोत्तरे-

श्रतः पूरं प्रवक्ष्यामि यो देवो यो ग्रहः स्मृतः । श्रिप्तरकः स्मृतः सोमो वरुणः परिकीर्त्तितः ॥१॥ श्रिङ्गारकः कुमारश्र बुधश्र भगवान् हरिः । बृहस्पतिः स्मृतः शक्रः शुक्रो देवी च पार्वती ॥२॥ प्रजापितः शिनश्चैव राहुर्ज्ञेयो हैंगणाधिपः ।
विश्वकर्मा स्मृतः केतुर्ये ग्रहास्ते सुराः स्मृताः ॥३॥
श्रत प्रवाग्त्यादिलिङ्गका मन्त्राः सूर्यादिस्थापने उक्ताः ।
स्कान्दे—श्रिप्तं द्तं दिनेशाय चान्द्रायाप्स्वन्त इत्यपि ।
स्योना पृथिवि भौमाय इदं विष्णुर्ज्ञुधाय चा ॥१॥
इन्द्र श्रासां सुरेज्याय शुक्रज्योतिः सिताय चा ।
प्रजापतेति सौराय श्रायं गौरिति राहवे ॥२॥
केतवे ब्रह्मयज्ञानं स्वैस्वैर्मन्त्रैः प्रतिष्ठिताः ।

एतेषां च मन्त्राणां व्याहृत्याऽऽवाहयेनु तानित्युक्त्वाभिन्याहृ-तिभिरावाहने विकल्पः ॥ मदनस्त्वावाहन-स्थापनयोभेदादु व्याहृ-तिभिरावाहनम् । एतेर्मन्त्रैः स्थापनिमत्यूचे पारिजाते वामनस्तु-

प्रणवं त्वादितः कृत्वा भूर्भुवः स्वस्ततः परम् । चातुथ्यो नामसंयुक्तं नमस्कारन्तये।जितम् ॥१॥ एष मन्त्रः समाख्याता ग्रहपूजाविधायकः । श्रमेनाऽऽवाहनं कुर्यादनेनैव विसर्जनमित्यूचे ॥२॥

श्रत्रावाहनवाक्येषु विशेषमाह बौधायनः । किरीटिनं पद्मासनं पद्मकरं पद्मगर्भसमद्युति सप्तारवं सप्तखड्गं कलिङ्गदेशजं काश्यप-गोत्रं विश्वामित्रार्षं त्रिष्टुप्छन्दसं रक्ताम्बरधरं रक्ताभरणभूषितं रक्त-गन्धानुलेपनं रक्तछत्रध्वजपतािकनं मुकुटकेयूरमणिशोभितमारुद्य रथं दिव्यं मेरुं प्रदक्तिणीक्जवाणं प्रहमण्डले प्रविष्टमधिदेवताग्निसहितं प्रत्यिधदेवतेश्वरसहितं रक्तवृत्तमण्डले पूर्वमुखमादित्यमावाहयामि॥१॥

किरीटिनं श्वेताम्बरधर दशाश्वं श्वेताभूवणं पाशपाणि द्विवाहं वनायुदेशजमित्रगोत्रमात्रेयार्षगनुष्टुष्छन्दसं श्वेताम्बरधरं श्वेतगन्धानुलेपनं श्वेतछत्रध्वजपताकिनं मुकुटकेयूरमाणिशोभित-मारुह्य रथं दिव्यं मेरुं प्रदित्तणीकुर्वाणं प्रहमण्डले प्रविष्टमधि-देवताऽपसहितं प्रत्यधिदेवतोमासहितं चतुरस्रमण्डले प्रत्यङ्भुखं सोममाबाह्यामि ॥२॥

The second secon

किरीटिनं रक्तमाख्यं रक्तश्लगदाधरं चतुर्भु जं मेषगमनमवन्ति-देशजं वाशिष्ठगोत्रजं जमदम्यार्षं जगती छन्दसं रक्ताम्बरधरं रका-भरणभूषितं रक्तगन्धानुलेपनं रक्तछत्रध्वजपताकिनं मुकुटकेयूरम-णिशोभितमाख्द्य रथं दिव्यं मेखं प्रदित्त्वणीकुर्वाणं प्रहमण्डले प्रविष्ट-मधिदेवताभूमिसहितं प्रत्यिधदेवतास्कन्दसहितं त्रिकोण्रक्त-मण्डले दित्त्णमुखमङ्गारकमाबाह्यामि ॥३॥

किरीटिनं पीतमाल्यं पीतवर्णं किण्कारसमद्युति खङ्गचर्मगदापा-णि सिंहस्थं वरदं मगधदेशजमित्रगोत्रजं भारद्वाजार्षे वृहतीछन्दसं पीताम्बरधरं पीताभरणभूषितं पीतगन्धानुलेपनं पीतछत्रध्वजपता-किनं मुकुटकेयूरमिणभूषितमारुद्य रथं दिव्यं मेरुं प्रदित्तिणीकुर्वाणं प्रहमएडले प्रविष्टमधिदेवताविष्णुसहितं प्रत्यधिदेवताविष्णुसहितं पीतवर्णमण्डले उदङ्मुखं बुधमावाहयामि ॥४॥

किरीटिनं पीतवर्णं चतुर्भु जं दिएडवरदं साम्मसूत्रकमएडलुं सिन्धुदेशजमाङ्गिरसगोत्रं वासिष्ठार्षमनुष्टु छन्दसं पीताम्बरधरं पीताभरणभूषितं पीतगन्धानुलेपनं पीतछत्रध्वजपताकिनं मुकुट-केयूरमणिभूषितमारु रथं दिव्यं मेरुं पदिम्णीकुर्वाणं ब्रहमएडले प्रविष्टं श्रिधदेवतेन्द्रसहितं प्रत्यिधदेवताब्रह्मसहितं पीतदीर्घ-चतुरस्रमण्डले उदङ्मुखं गुरुमावाहयामि ॥४॥

किरीटिनं श्वेतवर्णं चतुर्भु जं दिएडनं वरदं काव्यं साद्मसूत्र-कमण्डलुं कीकटदेशजं भागवगोत्रजं शौनकार्षं पंक्ति छन्दसं श्वेताम्बरधरं श्वेताभरणभूषितं श्वेतगन्धानुलेपनं श्वेत-छत्रध्वजपताकिनं मुकुटकेयूरमणिशोभितमारुह्य रथं दिव्यं मेरुं प्रदित्तणीकुर्वाणं ग्रहमएडले प्रविष्टमधिदेवतेन्द्राणीसहितं प्रत्यधिदेवे-न्द्रसहितं शुक्कपञ्चकोणमण्डले प्राङ्मुखं भगवन्तं शुक्रमावाह-यामि ॥६॥

किरीटिनिमन्द्रनीलसमद्युति शुलघरं वरदं गृधवाहनं सवाण-शरघरं सौराष्ट्रदेशजं काश्यपगोत्रजं भृग्वार्षं गायत्रीछन्दसं कृष्णा-म्बरघरं कृष्णाभरणभूषितं कृष्णगन्धानुलेपनं कृष्णछत्रध्त्रजपताकिनं मुकुटकेयूरमणिशोभितमारुद्य रथं दिव्यं मेरुं प्रदक्तिणीकुर्वाणं महमण्डले प्रविष्टमधिदेवताप्रजापतिसहितं प्रत्यधिदेवतायमसहितं कृष्णधनुर्मग्रहले प्रत्यङ्मुखं शनैश्चरमावाहयामि ॥७॥

किरीटिनं करालवदनं खङ्गचर्मग्रलधरं सिंहासनस्यं पूर्वदेशजं पाटिलगोत्रमाङ्गिरसार्षमनुष्टु॰छन्दसं कृष्णाम्बरधरं कृष्णामरणभूषितं कृष्णगन्धानुलेपनं कृष्णछत्रध्वजपताकिनं मुकुटकेयूरमणिशोभित-मारुह्य रथं दिव्यं मेरं प्रदित्तणोक्जवांणं ग्रहमण्डले प्रविष्टमधिदेवतास्पर्पसिहितं प्रत्यधिदेवताकालसहितं कृष्णग्रूपमण्डले दित्तणामुखं राहुमावाह्यामि ॥॥

धूम्रान् द्विबाहुन् पाश्रधरान् विकृताननान् गृश्रवाहनान् किरीटिनो मध्यदेशजान् जैमिनिगोत्रजान् गौतमार्षान् नानाछन्दश्चित्राम्यरधरां-श्चित्राभरणभूषितांश्चित्रगन्धानुलेपनान् कृष्णपिङ्गलध्वजपताकिनो मुकुटकेयूरमणिशोभितानारु रथं दिव्यं मेरुं प्रदक्तिणीकुर्वाणान् प्रहमण्डले प्रविद्यानिधदेवताब्रह्मसहितान् प्रत्यधिदेवताचित्रगुप्तस्त-हितान् कृष्णपिङ्गलध्वजमण्डले दित्तणामुखान् केत्नावाहयामि ॥६॥

स्कान्दे-ईश्वरं भास्करे विन्द्यादुमां विद्यानिशाकरे।
स्कन्दमङ्गारके विन्द्याद्धुधे नारायणं विदुः॥१॥
गुरौ वेदनिधि विन्द्यात् शुक्रे शक्रो विधीयते।
शनैश्वरे यमं विन्द्यादाहौ कालस्तथैव च॥२॥
वित्रग्रप्तोधिपः केतोरित्येता ग्रहदेवताः।
वेदनिधिर्वद्याः।

तत्रैव —वक्ष्ये स्थानानि देवानामीश्वरादि यथाक्रमम् ।
सूर्यस्य चोत्तरे शम्भ्रम्नमां सोमस्य दक्षिणे ॥१॥
स्कन्दमङ्गारकस्यैव दक्षिणस्यां निवेशयेत् ।
सौम्यात्पश्चिमतो विष्णुं ब्रह्मा जीवस्य पूर्वतः ॥२॥
इन्द्रमैन्द्रचां सिताद्विद्धि मन्दाद्याग्नेयतो यमम् ।
राहोः पूर्वोत्तरे कालं सर्वभूतभयावहम् ॥३॥
केतोनैंत्रमृतदिग्भागे चित्रग्रमं निधापयेत् ।

स्कान्दे-श्रतः स्थापनमन्त्रांश्च कथयाम्यनुपूर्वशः । ईश्वरं **च्यम्बकश्चेति श्रीश्च ते चेति पार्वतीम्** ॥१॥ यदक्रन्देति च स्कन्दं विष्णुं विष्णो रराडिति । त्रा ब्रह्मिति ब्रह्माणं सजोपेन्द्रेति वासवम्॥२॥ यमाय त्वेति च यमं कालं कार्पिरसीति च। चित्रावस्विति मन्त्रेण चित्रग्रप्तं निधापयेत् ॥३॥ श्रग्निरापः चितिर्विष्णुरिन्द्रश्चैन्द्री मजापतिः । सर्पो ब्रह्मा च निर्दिष्टा श्रिधिदेवा यथाक्रमम् ॥४॥ श्चरिनन्दृतमिति त्वरनेवेरुणस्य उदुत्तमम् । स्योना पृथिवि मेदिन्या इदं विष्णुस्तु विष्णावे।।४।। इन्द्र ऽत्र्यासान्नेतेतीन्द्रादित्यै रास्ता शचीस्थितौ । प्रजापते प्रजेशस्य एष ब्रह्मेति वै विधेः॥६॥ मन्त्रो नमोऽस्तु सर्पेभ्यः सर्पाणां स्थापने मतः। ग्रहदेवाधिदेवानां नैवेद्यं कुसुमानि च ॥ ७॥ ग्रहवर्र्चासनं दानं स्थापनं चातुपूर्वशः।

सूर्यादयो ब्रहा ईश्वरादयो देवाः श्रग्न्यादयोऽधिदेवाः। तत्रेश्वरा॰ दिदेवानां सूर्यस्यैवोत्तरे शम्भुमित्यादिना पूर्वं स्थलान्युक्तानि। श्रग्न्यादयोऽधिदेवास्तु ब्रहदेवयोर्मध्ये स्थाप्याः। तथा च मदनरत्ने गोभिल-वशिष्ठौ-

ग्रहदेवतयोर्मध्ये श्र्यधिदेवान्निधापयेत् । तत्रौव संग्रहे तु−ईश्वरादयो देवा श्रधिदेवतात्वेन व्यवहृता॥

श्रग्न्यादयस्तु प्रत्यधिदेवतात्वेन । तेषां स्थानान्तरं चोक्तम्

श्रिधिदेवा दिच्चिणतो वामे प्रत्यधिदेवताः । स्थापनीयाः प्रयत्नेन व्याहृतिभिः पृथक् पृथक् ॥१॥ तत्रैव वासिष्ठीये तु देवतानां स्थानान्तरं चोक्तम्-

रहं त्र्यम्बकमन्त्रेण रवेरुत्तरतो न्यसेत्।
सोमस्याप्त्रे यदिग्भागे श्रीश्च ते येनकात्मजाम् ॥१॥
यदक्रन्देति भौमस्य स्कन्दं याम्ये प्रदापयेत्।
विष्णुं विष्णो रराटेति यजेत्पूर्वे बुधस्य च ॥२॥
ग्ररोरुत्तरतोऽभ्यच्यों ब्रह्मा ब्रह्मेतिमन्त्रतः।
सजोषेन्द्रेति शुक्रस्य प्राच्यां शक्नं निधापयेत् ॥३॥
शनेः पश्चिमतः स्थाप्यो यमाय त्वेत्युचा यमः।
कार्षिरसीति मन्त्रेण राहो कालं तथोत्तरे ॥४॥
चित्रग्रप्तं तु केत्नां चित्रायस्वेति नैर्क्यते।
ग्रहाश्च देवताः ख्याताः शृणुष्वातोऽधिदेवताः॥
श्रिनरापो यरा विष्णुरिन्द्रेन्द्राणी प्रजापतिः।
सर्पो ब्रह्मा च निर्दिष्टा श्रिधदेवा यथाक्रमम्॥६॥
ग्रहदेवतयोर्मध्ये श्रिधदेवानिनवेशयेत्।

एतानि च वाशिष्टीयवचांसि कैश्चिन्नादियन्ते-

पारिजाते-पद्म पाग्दलमारभ्य दलाग्रेषु क्रमान्न्यसेत् । इन्द्रादि लोकपालांश्च तत्तन्मन्त्रैः प्रपूजयेत् ॥१॥ विनायकं तथा दुर्गां वायुराकाशमेव च । श्रावाहयेद्दव्याहृतिभिस्तथैवाश्विकुमारकौ ॥२॥

एतेऽत्र विनायकाद्याः पञ्चम्रहेभ्य उत्तरतः स्थाप्या इति साम्प्र-दायिकाः। दक्तिगपश्चिम-वायव्योत्तर-पूर्वेषु यथाक्रममित्यन्ये।

> राहुमन्दिदनेशानामुत्तरस्यां यथाक्रमम् । गणेशो दुर्गा वायुश्च राहुकेत्वोश्च दित्ताणे ॥१॥ श्राकाशमश्विनौ चेति पश्चैतानस्थापयेद्रबुधः।

इति संग्रहवचनानुसारेगोति पितामहचरणा रूपनारायणश्च-

स्कान्दे-उत्तरे शनिसूर्याभ्यां ग्रुक्केत्वोश्च दिव्वणे । गणाधिपं पतिष्ठाप्य सर्वदेवनमस्कृतम् ॥१॥

रिव-शनि-केतु-गुरूणां मध्य इति फलितोऽर्थः । विनायकपद-मुपलच्चणम् । तेन दुर्गादयोऽप्यत्रैव स्थाप्या इति केचित् । चन्दनादि नियमस्तत्रीव ।

दिवाकर-कुजाभ्यां हि दापयेद्रक्तचन्द्नम् ।
चन्द्रे च भागवे चैव सितवर्णं प्रदापयेत् ॥४॥
कुङ्कुमेन तु संयुक्तं चन्दनं जीव-सौम्ययोः ।
श्रारुकं चन्दनं दद्याद्राहुकेत्वर्कजेषु च ॥२॥
प्रहवर्णानि पुष्पाणि गायत्र्या धूपमादहेत् ।
स्वेः कुन्दुक्कं धूपं शशिनस्तु घृताच्नताः ॥३॥
भौमे सर्ज्जरसं चैव श्रारुकं च बुधे स्मृतम् ।
सिह्नकं ग्रुपवे दद्याच्छुक्रे विन्वागुकं तथा ॥४॥
गुग्गुलं मन्दवारे तु लाचा राहोश्च केतवे ।

कुन्दुरुकः = सरलकीनियांसः । सिह्नकं = सिह्ना इति मध्यदेशे मसिद्धम् । विख्वागुरुं = विख्वफलनिर्याससिहतमगुरुं । मन्द्वारः = शनिः । अग्निज्योंतीति मन्त्रेण दीपं द्याद्तन्द्रितः । विहितधूपदीपगन्धादीनामसम्भवे तु—

याज्ञवल्क्यः-यथावर्णं प्रदेयानि वासांसि कुसुमानि च । गन्धाश्च वलयश्चेव धूपो देयश्च गुग्गुलः ॥१॥

स्कान्दे-गुडोदनं रवेर्द्घात्सोमाय घृतपायसम्। लोहिताय हविष्यान्नं बुधाय चीरपाष्टिकम् ॥१॥ दध्योदनं गुरोद्देघाच्छुक्राय च घृतोदनम् । मिश्रितं तिलमापेश्र नैवेद्यं तु शनैश्वरे ॥२॥ राहोर्मीषोदनं दद्यात्केतोश्चित्रोदनं तथा ।

चित्रोदनम्-तिलतएडलिमश्रं स्यादजाचीरं च शोणितम् । कर्णनासागृहीतं स्यादेतिचित्रोदनं स्मृतम् । इति दामोदरः

पतैरेव द्रव्येर्बाह्मणा भोज्याः। तथा च याज्ञवल्क्यः---

गुडोदनं पायसं चा हविष्यं चीरषाष्टिकम् । दथ्योदनं हविश्चूर्णं मांसं चित्रान्नमेव चा ॥१॥ दद्याद्व्यहक्रमादेतद् द्विजेभ्यो भोजनं बुधः । शक्तितो वा यथालाभं सत्कृत्य विधिपूर्वकम् ॥२॥

विशिष्ठः-उपचाराणि सर्वेषामि शुक्लान्ततैः सदा । गन्धाभावे शुक्लगन्धं पुष्पाभावे सुगन्धकम् ॥२॥ धूपाभावे गुग्गुलः स्याद्द्रव्याभावे तु मिश्रकम् । पश्चामृतं गवामेव मिश्रकं न कदाचानेति ॥३॥

मात्स्ये-प्रागुत्तरेण तस्माच दध्यत्ततिभूषितम् ।
चृतपल्लवसंयुक्तं फलवस्त्रयुगान्वितम् ॥१॥
पश्चरत्नसमायुक्तं पश्चभङ्गयुतं तथा ।
स्थापयेदत्रणं कुम्मं वस्णं तत्र विन्यसेत् ॥२॥
गङ्गाद्याः सरितः सर्वाः समुद्राश्च सरांसि च ।
गजारवरथ्यावल्मोकसङ्गमाद्भदगोकुलात् ॥३॥
मृद्मानीय विभेन्द्र ! सर्वौषधिसमन्विताम् ।
स्नानार्थं विन्यसेनात्र यज्ञमानस्य धर्मवित् ॥४॥

## हेमाद्रौ देवीपुराखे —

गणाधिपतये देया प्रथमा तु वराहुतिः। अन्यथा विफलं विष! भवतीह न संशय इति।।

#### श्राश्वलायनः---

जुहुयात्सिमद्त्राज्येनाभिऋिग्भर्यथाक्रममिति । समित्सु विशेषमाह याज्ञवन्वयः—

होतन्या मधुसर्पिभ्यां दन्ना चीरेण वा युता।

इति चात्र सम्प्रति यन्न देवताकानेकद्रव्याणामेकैवाहुतिः सान्ना-ज्यवत्तदिति वाच्यम् ।

श्रादौ तु समिदनाज्यैः पृथगष्टोत्तरं शतमिति वाशिष्टात् ।

श्रन्यत्रापि सम्प्रतिपन्नदेवताके स्मातं कर्मण्यनेकद्रव्यके पृथगेव होम इति साम्प्रदायिकाः। बहुषु कर्मसु प्रायो वचनान्यप्येवम्।

स्कान्दे—श्राकृष्णेन सहस्रांसोरिमं देवा तथेन्दवे। श्रिप्तम् र्द्धेति भौमाय उद्बुध्यस्व बुधाय च ॥१॥ बृहस्पतेति चा गुरोः शुक्रायाऽन्नात्परिश्रुतः। श्रनैश्ररस्य मन्त्रोऽयं शन्नोदेवीरुदाहृतः॥२॥ कयान इति राहोश्र केतुं कृणवंस्तु केतवे।

मात्स्ये-श्रावोराजेति रुद्रस्य वर्लि होमं समाचारेत् ॥३॥ श्रापो हिष्ठेत्युमायास्तु स्योनेति स्वामिनस्तथा । विष्णोरिदं विष्णुरिति त्वमित्सेति स्वयम्भुवः॥४॥ इन्द्रमिहेवतातय इतोन्द्रस्य प्रकोर्तितः । तथा यमस्य चायङ्गीरिति होमः प्रकीर्त्तितः ॥४॥ कालस्य ब्रह्मजज्ञानमिति मन्त्रः प्रशस्यते । चित्रग्रुप्तस्य चाज्ञातमिति पौराणिका विदुः ॥६॥ श्राग्न दूनं द्रणीमह इति विष्णोरुदाहृतः ।
इन्द्रायेन्द्रो मरुत्वत इति शकस्य शस्यते ॥७॥
उत्तानपर्णिसुभगे इति शच्याः समाचारेत् ।
प्रजापतेः पुनहींमं प्रजापत इति स्मृतः ॥८॥
नमोऽस्तु सर्पेभ्य इति सर्पाणां मन्त्र उच्यते ।
पूषं ब्रह्माय ऋत्विज इति ब्रह्मएयुदाहृत ॥६॥
विनायकस्य चात्न इति मन्त्रो बुधैः स्मृतः ।
जातवेदसे सुनवाम दुर्गामन्त्रोऽत्र उच्यते ॥१०॥
पूर्णाहुतिं च मूर्द्धानं दिव इत्यभिमातयेत् ।
नैवेद्यशेषं हत्या च होग्यन्त्राद्यन्त्यम् ।

स्कान्दे—नैवेद्यशेषं हुत्वा च होममन्त्रादनन्तरम् । श्रथ व्याहितिभिद्धत्वा एकैकस्य यथाक्रमम् ॥१॥ श्रष्टोत्तरं च साहस्रं शतमष्टादिकं तथा । श्रष्टाविंशितरष्टौ वा एकैकस्य तु होमयेत् ॥२॥ होतव्यं च ष्टुतं तत्रा चरुलक्षादिकं पुनः । मन्त्रीदेशाहुतीहु त्वा होमो व्याहृतिभिः समृतः॥३॥

श्रथेति श्रथवेत्यर्थः । गृहीत्वा तामथाम्विकामितिवत् । मद्नस्त्व-थवेत्येव पपाठ तत्तन्मन्त्राणां व्याहृतीनां च परस्परं विकल्पः । श्रथा-ऽष्टोत्तरसहस्रादिसंख्यादि तु पत्तद्वयेऽपि नैवेद्यशेषहोमस्तु शाखा-विशेषपर इत्यपि स एव लज्ञादिकः पुनव्यांहृतिभिहोंमो मन्त्रे-दंशाहुती हुत्वा स्मृत इत्यन्वयः । मन्त्रेर्ग्रहमन्त्रेः । व्याहृतिभिर्व्य-स्ताभिः समस्ताभिश्च । तातचरणास्तु । श्रथ व्याहृतिभिर्द्धत्वेति पृथावाक्यं एकैकस्येति तु प्रतिदैवतमष्टादिसंख्यान्वयार्थम् । एकैकस्य तु होमयेदित्वेकैकपदं तु चर्वादिद्रव्यपरम्, न देवतापरं । श्रास्मन्नेव होमे घृतचरद्रव्यविधिरश्रे लज्ञादिक इत्येतत्तु । श्रथ व्याहृतिविहि-ते होमे लज्ञादि संख्याविध्यर्थं । मन्त्रेरित्यादि तु चरुहोमोत्तरं सोमं राजानमिति मन्त्रेण यथाप्रकृतिस्विष्टकृदुधुत्वा सूर्यादिमन्त्रे-दृशस्त्राहुतीः प्रतिदैवतं लज्ञहोमादिद्रव्येण हुत्वा व्याहृतिभिर्ल्ज्ञादि होमः कार्य इत्याहुः। यवाद्यन्यतमद्रव्येण ब्रहादिभिः प्रत्येकं दशाहुती-स्तत्तन्मन्त्रेर्हुत्वा तेनैव द्रव्येण व्यस्तसमस्तव्याद्वितिभरयुतलचा-कोटचन्यतमसंख्यया जुहुयादिति हेमाद्रिमदनौ। तानि च द्रव्याणि देवीपुराणे--यवब्रीहि-घृत-चीर-तिल-कंग्र-प्रसारिकाः ।

पङ्कजोशीर-विन्यार्क-दला होमे पकी किंताः ॥१॥ उदब्धुखाः पाङ्गुखा वा कुर्युब्रीह्मणपुङ्गवाः । मन्त्रवन्तरच कर्त्तीच्यारचरवः प्रतिदेवतम् ॥२॥ हुत्वा च तांश्रख्न सम्यक् कृती होमं समारमेत् ।

चर्वादिकं च घृताद्यकं होतध्यम्-

होतन्यं च घृताद्यक्तं चरु भक्ष्यादिकं पुनः । इति—मात्स्यात् भक्षं द्राचादि । चरुनैवेद्यशिष्टो गुडोदनादिः । तानि द्रव्याण्यु-क्त्वा इत्येतानि हवींषि स्युः समित्संख्यासमाहुतीरित्याश्वलायनोक्तेः श्रिधदेवताभ्योऽपि होमः—

हेमाद्रौ-चरुणा चा समिज्रिश्व सर्पिषा चा तिलैः क्रमात् । तत्तन्मन्त्रौश्च होतव्याः क्रमादत्राधिदेवताः ॥१॥

गृह्यपरिशिष्टे—प्रधानदशांशेन पार्श्वदेवतयोरिति श्रधिदेवतादि-होमे संख्या वाशिष्ठे द्वित्राश्चैवाधिदेवताः पञ्चानां चैव पञ्चधेति । द्वित्राः पञ्च। पञ्चानां गणेशादीनां पञ्चधा प्रत्येकमित्यर्थः । केचित्तु द्वौ त्रयो वा द्वित्राः । विनायकादीनां पञ्चधा एकैकामिति केचित् ।

### प्रयोगपारिजाते-

इन्द्रादिलोकपालांश्च तत्तनमन्त्रैः मपूजयेत्। तत्तनमन्त्रौर्जपं कुर्यात्ततो होमं समारभेत्।।१॥ नृसिंहपुराणे—

> ततो व्याहृतिभिः पश्चाज्जुहुयाच तिलादिकम् । यावत्प्रपूज्यते संख्या लच्च वा कोटिरेव वा ॥१॥

वा शब्दादयुतमपि प्रहयज्ञश्च न नियतकालीनः स्वेच्छायज्ञः स उच्यतं इति भविष्योत्तरात् —

ततो व्याहृतिभिः कुर्यात्तिलहोमं प्रयक्षतः ।
प्रथमोऽयुतहोमः स्याल्लचहोमो द्वितीयकः ॥ १ ॥
तृतीयः कोटिहोमः स्यात्त्रिविधो ग्रहयज्ञकः ।
एकरात्रं त्रिरात्रं वा पश्चरात्रमथाऽपि वा ॥ २ ॥
शिवगाथां विष्णुगाथां शान्ति ब्राह्मणभोजनम् ।
समापयेत्प्रतिदिनमेवं भक्तिसमन्वितम् ॥ ३ ॥

इति वाशिष्ठेप्येकरात्रादि प्रहर्णं नियमानादरार्थम् । अत्र स्का-दिजपोऽपि तुलादानवदिति केचित् ।

वाशिष्ठे—अथाभिषेकमन्त्रेण वाद्यमङ्गलगीतकैः ।
पूर्णकुम्भेन तेनैव होमान्ते प्रागुदङ मुखैः॥ १॥
अन्यङ्गावयवै ब्रह्मन् हैमस्रग्दामभूषितैः ।
यजमानस्य कर्त्तन्यं चतुर्भिः स्नपनं द्विजैः॥ २॥

श्रभिवेकमन्त्राः प्रथोगे वदयन्ते—

विशिष्ठः—स्विस्तकं कल्पयेत्पश्चात्कुग्डस्येशानभागतः।
यजमानाभिषेकार्थं तत्र भद्रासनं न्यसेत् ॥१॥
माङ्गुखस्योपविष्टस्य यजमानस्य तत्र च ।
श्रभिषेकं ततः कुर्युः साचार्याः षोडशार्त्वजः ॥ २॥
विविधेमङ्गलैर्घोषेः स्तमागधजैः सह ।
ततस्तस्याभिषिकस्य रत्तार्थं बलिष्ठत्विपेत् ॥ ३॥
दिग्विदिद्यु विचित्राःनेदीपैनीराजयेत्ततः ।
शुक्रमाल्याम्बर्धरः शुक्लगन्धानुलेपनः ॥ ४॥
ततो मग्डपमागत्य ध्यायेदिष्रं सुरान्ग्रहान् ।
मत्येकं प्रतिमन्त्रेश्च दद्यात्पुष्पाञ्चिलं तत इति ॥ ४॥

リーン・ターフ・ハロセン・ターの時では、アール・サイスを変え、ない、アール・ファイスを変え

वामनः — श्राचार्यप्रभृतिभ्यश्च ग्रहार्चनफलं ततः ।

प्रमिदाज्यचरूणां च तिलहोमफलं च यत् ॥ १ ॥

ब्रह्मत्वे कुम्भपूजायां चाऽर्चनस्य फलं च यत् ।

गणपन्तेत्रपाश्वीशदुर्गादेव्यङ्गदेवताः ॥ २ ॥

तासां जपफलं सम्यग्रृह्णीयाज्जलपूर्वकम् ।

एतानि च वामनवचांसि निर्मूलानीति पितामहचरणाः । वाशिष्ठ-गोभिलवचसामपि केचिदाहुः ।

विशिष्ठः-ततो जपादीन् जुहुयात्पूर्णोहुतिमथाऽऽचरेत् ।
तत्रैव-मन्त्रेण सप्त ते ऽत्र्यन्ने इति पूर्णोहुतिं चरेत् ॥१॥
श्रिग्निपुराणे-मूर्जानं दिव मन्त्रेण संस्रवेण च धारया।
दद्यादुत्थाय पूर्णी वै नोपविश्य कदा च नेति ॥२॥

मात्स्ये पूर्णांद्वतेरेकत्वान्मन्त्राणां विकल्पः । उपांग्र याज इव शाखाभेदभिन्नानां याज्यानुवाक्यानां समुच्चयेन तु पठन्ति वसोर्द्धारा त्वयुतहोमे नास्ति प्रमाणाभावात् ।

ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लगन्धानुलेपनः ।
सर्वोषधेः सर्वगन्धेः स्नापितो वेदपुङ्गवैः ॥१॥
यजमानः सपत्नीक ऋ लिजस्तान्समाहितः ।
दिल्लाभिः पयत्नेन पूजयेद्दगतविस्मयः ॥२॥
सूर्याय किपलां धेनुं दद्याच्छङ्गं तथेन्दवे ।
रक्तं धुरन्धरं दद्याद्रौमाय ककुदाधिकम् ॥३॥
बुधाय जातरूपं तु गुरवे पीतवाससी ।
श्वेताश्वं दैत्यगुरवे कृष्णां गामकसूनवे ॥४॥
श्रायसं राहवे दद्यात्केतवे छागग्रुत्तमम् ।
सुवर्णेन समाः कार्या यजमानेन दिल्लाः ॥४॥

बुधप्रीत्यर्थं देय हेम्रा सह सर्वा मूल्यतः समा इति केचित् । श्रास्मिन्पत्ते षोडशमाषविशिष्टहेमवाचि सुवर्णपदाऽसमंजसस्या-पत्तेस्तादशसुवर्णमूल्यं प्रत्येकमिति परे वह्वल्पमूल्येषु तथा हेमाऽपि देयं यथा सर्वाः प्रत्येकं दशमाषसुवर्णेन समा भवन्तीति तुसम्यक् ।

सर्वेषामथवा गावो गुरुवी येन तुष्यति । स्वमन्त्रेण प्रदातन्याः सर्वीः सर्वत्र दित्ताणाः ॥१॥

स्कान्दे-केतवे छागमांसानि सर्वेषामेव काञ्चनमिति ।

तत्रैव-यस्तु पीडाकरो नित्यं स्वल्पवित्तस्य वा ग्रहः।

तमेव पूजयेद्धक्त्या दक्षिणाभिः स्वशक्तितः।

दानोद्योते आश्वलायनः-

यथाशक्ति ततो विषानृत्विजश्चेत्तरानि । एकमेकाहुतौ विषं होमे लन्नेन भोजयेत् ॥१॥ श्रात्यथीं मध्यमश्रापि विषमेकं शताहुतौ । सहस्रस्य हुतैवैंकं जघन्योऽपि प्रभोजयेत् ।

तत्रैव-तस्मादातुमशक्तोऽपि दित्तिणां चात्रमेव वा । जपैः प्रणामैः स्तोत्रैश्च तोषयेत्तर्पयेद्गुरुम् ॥३॥

स्कान्दे-यथा ग्रहो द्विजस्तद्वद्विज्ञेयो वेदपारगः । तोषयन् मृदुवस्त्राधैस्तुष्टमेनं विसड्जयेत् ॥१॥ अन्नहोनो दहेद्राष्ट्रं मन्त्रहीनश्च ऋखिजः । यजमानमदिचाययो नास्ति यज्ञसमो रिपुः॥२।

तत्रैव-यथा समन्वितं मन्त्रं मन्त्रेण प्रतिहन्यते ।
एवं समुच्छितं घोरं शीघ्रं शान्त्या विनश्यति ॥३॥
अहिंसकस्य दान्तस्य धर्मार्जितधनस्य च ।
नित्यं च नियमस्थस्य सदा सातुग्रहा ग्रहाः ॥४॥

ग्रहा गावो नरेन्द्राश्च ब्राह्मणाश्च विशेषतः। पूजिताः पूजयन्त्येते निर्देहन्त्यपमानिताः॥५॥ ग्रहाणामिदमातिथ्यं कुर्यात्संवत्सरादपि । श्चारोग्यवलसम्पन्नो जीवेच्च शरदां शतम् ॥६॥

मात्स्ये-एवं समग्रान्निष्पाद्य सर्वान्देवान्विसर्जयेत् । तत्र मन्त्रः-यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय पार्थिवीम् । इष्टकामप्रदानार्थे पुनरागमनाय च ॥१॥

भविष्योत्तरे-ततः समाप्ते यज्ञे तु कारयेत्तु महोत्सवम् । शंखतूर्यनिनादेन ब्रह्मघोषरवेण च ॥ १ ॥

मात्स्ये-श्रनेन विधिना यस्तु ग्रहपूजां समारभेत्।
सर्वान्कामानवाप्नोति प्रेत्य स्वर्गे महीयते।।१।।
स दैवायुतहोमोऽयं नवग्रहमखः स्मृतः।
विवाहोत्सवयज्ञेषु प्रतिष्ठादिषु कम्मस्र।।२।।
निर्विद्मार्थं सुनिश्रेष्ठ ! तथोद्देगाद्धतेषु च ।
वश्यकमीभिचारादि तथैवोच्चाटनादिकम्।।३।।
नवग्रहमखं कृत्वा ततः काम्यं समारभेत्।
श्रम्यथा फलदं पुंसां न काम्यं जायते कचित्।।४।।
तस्मादयुतहोमस्य विधानं तु समाचरेत्।

विवाहेत्यादिना च विवाहादिषु काम्येषु कर्मस्वङ्गत्वमुक्तम् । श्रत्र ग्रहस्वरूपवर्णदेशगोत्राग्निस्थानमुखाकारस्थापनहोममन्त्रचन्दन-धूपदीपनैवेद्यसमिद्द्विणाधिदेवताप्रत्य धिदेवतोपदेशकवाक्येषु ग्र-हाणां स्वरूपनिहेंशस्थापनहोममन्त्रोपदेशवाक्येषु वाधिदेवताप्र-त्यधिदेवताविनायकादिपञ्चलोकपालानामनेकस्मृतिपुराणभेदेन भूयो विसंवादिभिरनेकः पर्यायशब्दैरूपस्थितेनात्रकवैधशब्दिनयमः । नापि मन्त्रवर्णेनैकशब्दोपस्थितः । शब्दविशेषेहेंवता श्रनूद्य-

तत्स्मारकतया मन्त्रविनियोगेन मन्त्राणां देवताशयकत्वायोगात् । तेषां बाहुल्येनास्पष्टलिङ्गत्वाच । त्रातो द्रव्यत्यागादिषु स्वरूपाति-निद्दशकस्मृतिमन्त्रवर्णोपस्थितशब्दानामन्यतमेन शब्देनोद्देशो प्रहादी-नामिति शिष्टाचारोप्येवम् । स्रत्र ब्याहृति-करण्के युतहोमेऽग्निवायु-सूर्यप्रजापतय एव देवताः। न नवग्रहाः। ऐन्द्रचादिवत्तत्प्रकाशकत्वेन तिस्रो व्याहतयो जपेत्। श्राभिश्च होमे तिस्रिभिश्चतुर्थी स्यात्समा-सत इति समस्ताभिरेव होमः स चाग्नि-वायु-सूर्य-दैवत्य इति तु मदनः। सर्वथा ब्याहृतिहोमेन ग्रहा देवता इति । प्रधानं चात्र ग्रह-पूजा तद्धोमोयुत होमादिश्च । श्रीकामः शान्तिकामो वा श्रहयइं समाचरेदित्यादिना तत्पूजा तद्धोमयोः फलसम्बन्धात् । प्रहयज्ञ-बिधेत्युक्त्वा प्रथमोऽयुतहोम इत्यादिनाऽयुतलक्तकोटिहोमानां प्रह-यज्ञविशेषकत्वेनोपक्रमात्। तस्माद्युतहोमस्य विधानं तु समाचरे-दित्युपसंहाराच । यहायहदेवत्यकर्मसमृहे प्राणभृत उपद्धातीति वर्ष्टिलगसमवायेन ग्रहयक्षशब्दः । तातचरणास्त्वयुतहोमादीनामेव प्राधान्यं ग्रहहोमस्त्वङ्गमित्याहुः। तदाशयं न जाने यो हि कामशब्देन श्रीकामः शान्तिकामो वा श्रहयज्ञं समाचरे-दित्यादिः स तावद्ग्रहपूजाहोमयोरेवोचितः। ग्रहसम्बन्धमाप्ते ग्रह-यञ्चश्रब्दस्य तन्नामत्वात् । न चायुतहोमादीनां फलसम्बन्धे तत्प्रकर-गुपाठादुग्रहपूजाहोमयोरङ्गतेति वाच्यं वैपरीत्यस्यापि सुवचत्वात्। श्रयुतहोमादिशब्दानां ग्रहयज्ञसामानाधिकरएयेन ग्रहयज्ञनामत्वं तु लिङ्गसमवायेन आर्थवादिकः फलसम्बन्धस्तु।

> श्रनेन विधिना यस्तु ग्रहपूजां समाचरेत् । सर्वोन्कामानवाप्नोति पेत्य स्वर्गे महीयते॥१॥

इत्यत्र यज्ञदेवपूजासंगितकरणदानेष्त्रित्यनुशिष्टयोः पूजाहोमयोः सदैवायुतहोमोयमित्याद्यपक्षम्य निर्विद्यार्थं सुनिश्रेष्ठ इत्यादिना त्वयु-तहोमादिनामणि स्मृतिष्ठ प्राय श्रार्थवादिकमेव फलम् । श्रत्र कामश-व्दोपनीते फले सत्पार्थवादिकं सम्बध्यते न वेति तु विचारान्तरम् । किं च याज्ञवल्क्यादिस्मृतिषु न तावद्युतहोमादीनां विधिनांष्यनुनादः । श्रतो प्रहपूजाहोमयोः माधान्याभावे तत्रत्येतिकर्त्व्यताः

सम्बन्धो न स्यात् । श्रतो श्रहपूजाहोमयोरिप श्रधान्यं भाति । श्रत एव कचित्केवलश्रहमखेषु तदङ्गकेषु च शान्तिकादिकर्मस्वेकस्मृत्यु-काङ्गप्रधानादरेण स्मृत्यन्तरोक्तप्रधानभूतायुतादिहोमं विनाऽिप शाखान्तरोक्तश्रहयागाभ्यासं विनैकशाखीयश्रहयागाभ्यासमात्राणामिव पूजा श्रहदेवत्यहोमयोरेवानुष्ठानं कथिञ्चत् शिष्टानां सङ्गच्छते । श्रहपूजाहोमयोरङ्गत्वे त्वङ्गमात्रानुष्ठानमेव स्यात् ।

## अथ प्रहादीनां लच्चणानि ।

पद्मगर्भसमद्युतिः । मात्स्ये-पद्मासनः पद्मकरः सप्ताश्वरथसंस्थश्च द्विभ्रजः स्यात्सदा रविः ॥१॥ श्वेतः श्वेताम्बर्धरो दशाश्वः श्वेतभूषणः। गदापाणिर्दिबाहुश्र कर्तव्यो वरदः शशी ॥२॥ रक्तमाल्याम्बर्धरः शक्तिशूलगदाधरः। चतुर्भुजो मेषगमो वरदः स्याद्धरास्रतः ॥३॥ कर्णिकारसमद्यतिः। पीतमाल्याम्बर्धरः खड्गचर्मगदापाणिः सिंहस्थो वरदो बुधः ॥४॥ देव-दैत्यगुरू तद्वत्पीतश्वेतौ चतुर्भुजौ । दिएडनो वरदौ कार्यौ सान्तसूत्रकमण्डलू ।।५।। इन्द्रनीलचुतिः श्रूली वरदो ग्रुश्रवाहनः। वाणवाणासनधरः कर्तव्योऽकीसुतः सदा ॥६॥ खड्गचमभूत्वी वरप्रदः। करालवदनः नीलः सिंहासनस्थश्च राहुरत्र प्रशस्यते ॥७॥ धूम्रा द्विवाहवः सर्वे गदिनो विकृताननाः। गृत्रासनगता नित्यं केतवः स्युर्वरपदाः ॥=॥ सर्वे किरीटिनः कार्या प्रहलोका हितावहाः । श्रङ्गुलेनोच्छिताः सर्वे शतपष्टोत्तरं सदेति ॥६॥

## श्रथाधिदेवताप्रत्यधिदेवतालच्रणानि---

## विष्णुधर्मोत्तरे-

पश्चवक्त्रो वृषारूढः प्रतिवक्त्रं त्रिलोचनः। कपाली श्र्लखट्वाङ्गी चन्द्रमौत्तिः सदाशिवः ॥१॥ श्रनसूत्रं च कमलं दर्पणं च कमण्डलुम्। उमा विभर्ति हस्तेषु पूजिता त्रिदशैरिप ॥२॥ कुमारः षरमुखः कार्यः शिखरडकविभूषराः । देवो मयूरवरवाहनः ॥३॥ रक्ताम्बरधरो कुक्कुटश्च तथा घएटास्तस्य दिच्चिएाहस्तयोः। पताका वैजयन्ती स्याच्छक्तिः कार्या च वामयोः ॥४॥ विष्णुः कौमोदकी-पद्म-शङ्ख-चक्रधरः क्रमात् । भद्**त्तिर्णं दत्ति**णाघः करादारभ्य नित्यशः ॥५॥ पद्मासनस्थो जटिलो ब्रह्मा कार्यश्रद्धजः। श्रन्नमालां स्रवं विभ्रत्पुस्तकं च कमण्डलुम् ॥६॥ चतुर्दन्तगजारूढो वज्री कुलिशभृत्करः। शचीपतिः पकर्त्तव्यो नानाभरणभूषितः॥॥। ईषत्रीलोपमः कार्यो दएडहस्ते विजानता। रक्तद्वप(शहस्तश्च महामहिषवाहनः कालः करालवदनो नीलाङ्गश्च विभीषणः पाशहस्तो दएडहस्तः कार्यो दृश्चिकरोमवान् ॥६॥ श्रवीच्यवेपस्वाकारं द्विभ्रुजं सौम्यदर्शनम् । दित्तिणे छेखनीं चित्रग्रप्तं वामे तु पात्रकम् ॥१०॥ पिङ्गलश्मश्रुकेशात्तः पीनाङ्गजटरोऽरुणः छागस्थः सात्तसूत्रोऽग्निः सप्तार्चिः शक्तिधारकः ॥११॥

चिह्नितं चमरेणास्य करमन्यं प्रकल्पयेत् ।

ग्रापः स्त्रोरूपथारिण्यः श्वेता मकरवाहनाः ॥१२॥

दधानाः पाशकलशौ मुक्ताभरणभूषिताः ।

शुक्कवर्णा मही कार्या दिव्याभरणभूषिता ॥१३॥

चतुर्भुजा सौम्यवपुश्रण्डांश्रुसदृशाम्बरा ।

रत्नपात्रं सस्यपात्रं पात्रमोषधिसंयुतम् ॥१४॥

पद्मं करे च कर्त्तव्यं भ्रुवो यादवनन्दन !।

दिङ्नागानां चतुर्णी सा कार्या पृष्ठगता तथा ॥१४॥

विष्णोरिन्द्रस्य चोकम्-

वामे शच्याः करे कार्या सौम्या सन्तानमञ्जरी । वरदा मण्डिता कार्या दिश्वजा च तथा शची ॥१॥ यज्ञोपवीती हंसस्थ एकवक्त्रश्चतुर्श्वजः । श्रज्ञं स्ववं स्वचं विश्वत्कुण्डिकां च प्रजापतिः ॥२॥ श्रज्ञं श्रज्ञमालाम् । कुण्डिकां कमण्डलुम् ।

श्रनसूत्रधराः सर्गाः कुण्डिकापुच्छभूषणाः । एकभोगास्त्रिभोगा वा सर्वे कार्याश्र भोषणाः ॥३॥

### ब्रह्मलच्यमुक्तम्—

ग्रहाणां दित्तिणे पार्श्वे स्थापयेदिधदेवताः । ग्रहाणाग्रुत्तरे पार्श्वे न्यसेत्प्रत्यिधदेवताः ॥४॥

## श्रथ विनायकादिलचणानि ।

चतुर्भुजिस्त्रिनेत्रश्च कर्त्तव्योऽत्र गजाननः। नागयज्ञोपवीतश्च शशाङ्कुकृतशेखरः ॥५॥ दत्ते दन्तं करे दद्याद् द्वितीये चात्तस्त्रकम्। तृतीये परशुं दद्याचतुर्थे मोदकं तथा॥६॥ शक्ति वाणं तथा शूलं खड्गं चक्रं च दिन्छे ।
चन्द्रविम्बमधो वामे खेटमूर्ध्वे कपालकम् ॥७॥
स्रकं कटं च विश्वाणा सिंहारूढा तु दिग्छुजा ।
एषा देवी समुहिष्टा दुर्गा दुर्गाऽक्तिहारिणी ॥८॥
धावद्धरिणपृष्टस्थो ध्वजधारी समीरणः ।
वरदानकरो धूम्रवर्णः कार्यो विजानता ॥६॥
नीलोत्पलाभं गगनं तद्वर्णाम्बरधारि च ।
चन्द्रार्कहस्तं कर्त्तच्यं द्विञ्चजं सौम्यखण्डवत् ॥१०॥
दिञ्चजो देवभिषजो कर्त्तच्यो रूपसंस्थितो ।
तयोरोषध्यः कार्या दिच्या दिन्तणहस्तयोः ॥११॥
वामयोः पुस्तको कार्यो दर्शनीयौ तथा द्विजाः ।
एकस्य दिन्तणेपार्श्वे वामे चान्यस्य यादव !॥१२॥
नारीयुगं प्रकर्त्तच्यं सुरूपं चार्द्यभनम् ।
रत्नभाण्डकरे कार्ये चन्द्रशुक्काम्बरे तथा ॥१३॥

# 🎏 अथ लोकपाल रूपोणि।

तत्रेन्द्राग्नियमरूपाण्यधिप्रत्याधिदेवोक्तानि— खड्गचर्मधरो बालो निर्ऋतिर्नरवाहनः॥ ऊध्वेकेशो विरूपात्तः करालः कालिकापियः॥१॥ नागपाश्चरो रक्तभूषणः पद्मिनीपियः॥ वरुणोऽम्बुपतिः स्वर्णवर्णो मकरवाहनः॥ २॥

वायुर्विनायकादिपञ्चके उक्तः । सोमो प्रहेषु । श्रनन्तः सर्पः सप्रत्यधिदेवतासु । इत्ययुत्होमः ।

## अथ लचहोमः ।

तत्र प्रहपीडादीनि निमित्तान्युक्तान्ययुतहोभारमभो देवीपुराणे—

लक्तहोमं प्रवक्ष्यामि यथाप्रोक्तं तु शम्भुना ।
भूमिकम्पे दिशादाहे ग्रहयुद्ध उपस्थिते ॥ १ ॥
केतुसन्दर्शने चैव श्रादित्यस्य च कम्पने ।
कृष्णवर्णेऽथवा सुर्ये तथा छिद्रसमन्विते ॥२॥
रक्तष्टिष्टस्तथा नद्यो विपरीतां वहन्ति च ।
निर्गतं गगनाद्ध्यमं वास्मिध्ये च यत्स्थितम् ॥ ३ ॥
उपसर्गास्तथा लोके रक्षान्तु चयकारकाः ।
यस्य राशौ ग्रहाः पश्च श्रथ सप्त सुराधिप ॥४॥
ग्रहणं चन्द्रसूर्यसग्रहैर्वाष्ट संस्थितेरित्यपि ।

तथा-कम्पनं स्वेदनं गात्रे श्रम्बुपानार्थजन्पनम् । देवतानां छुराध्यत्त छत्पाताः स्वयकारकाः ॥१॥ लत्तहोमं प्रकुर्वीत कोटिहोममथापि वा । इति ।

मात्स्ये-ग्रस्माद्दशगुणः मोक्तो लक्तहोमः स्वयम्भुवा । ग्राहुतीभिः पयत्नेन दक्तिणाभिस्तथैव च ॥१॥ द्विहस्तविस्तृतं तद्वचतुहस्तायुतं पुनः । लक्तहोमे भवेत्कुण्डं योनिवक्त्रं त्रिमेखलम् ॥२॥

ब्यासतो ब्रिह्स्तं फलतश्चतुर्हस्तायतं भवतीत्यर्थः । तस्य चोत्तरपूर्वेण वितस्तित्रयसम्मितम् । प्रागुदक् प्रवणं तद्वच्चतुरस्रं समं ततः ॥३॥ विष्कम्भाद्धीच्छितं पोक्तं स्थण्डिलं विश्वकर्मणा । संस्थापनाय देवानां वपत्रयसमाष्टतम् ॥४॥ तस्मिस्स्नावाहयेदेवानपूर्ववत्युष्पतण्डुलैः । गरुत्मानधिकस्तत्र सम्पूज्यः श्रियमिच्छता ॥५॥ सामध्वनिशरीरस्त्वं वाहनं परमेष्ठिनः । विषपापहरो नित्यमतः शानित प्रयच्छ मे ॥६॥

श्रयं गरुडावाहनमन्त्रः--

पूर्ववत्कुम्भमामन्त्र्य तद्दद्योमं समाचरेत् । सहस्राणां शतं हुत्वा समित्संख्यादिकं पुनः ॥१॥

पूर्ववदेव समिदाज्यं चरुहोमं पूर्वोक्तेरेव मन्त्रैः कुर्यात् । गरुत्मतः सुपर्णोसि गरुत्मानिति इन्द्रं मित्रमिति वा मन्त्रः ।

घृतकुम्भवसोद्धीरां पातयेदनलोपरि ।

उदुम्बरीमथाद्धी च ऋज्वीं कोटरवर्जिताम् ॥१॥

वाहुमात्रां सुचं कृत्वा ततः स्तम्भद्वयोपरि ।

घृतधारां तथा सम्यगग्नेरुपरि पातयेत् ॥२॥

श्रावयेत्स्रक्तमाग्नेयं वैष्णवं रौद्रमैन्दवम् ।

महावैश्वानरं सम्यग्ङ्येष्ठसाम च पाठयेत् ॥३॥

स्नानं च यजमानस्य पूर्ववत्स्वस्तिवाचनम् ।

दातच्या यजमानेन पूर्ववद्त्तिणा पृथक् ॥४॥

कामक्रोधविद्दीनेन ऋत्विग्भ्यः शान्तचेतसा ।

तद्व द्द्वादश चाष्टौ वा लच्चहोमेऽपि ऋत्विजः ॥४॥

कर्चच्याः शक्तितस्तदृच्चत्रो वा विमत्सराः ।

ब्रह्माचार्यसहिता नामेवेयं संख्येति केचित्-

नवग्रहमखात्सर्व लत्तहोमे दशोत्तरम् । दद्याच मुनिशार्द्ल ! भूषणान्यपि शक्तितः ॥१॥ शयनानि च वस्नाणि हैमानि कटकानि च । कर्णाङ्गुलीपवित्राणि क्रण्टस्त्राणि शक्तितः ॥२॥ न कुर्योद्दत्तिणाहीनं वित्तशाट्येन मानवः।

श्रद्भवा होमलोपाद्वा कुलत्त्वयमवाष्तुयात्।।३।।

श्रम्भदानं यथाशक्त्या कर्त्तव्यं भूतिमिच्छता।

मन्त्रहीनं कृतो यस्मादुर्भित्तफलदो भवेत्।।४।।

तथा—तस्मात्पीडाकरोतीव य एव भवित ग्रहः।

तमेव पूज्येद्धक्तचा द्वौ वात्रीन्वा यथाविधि।।४।।

तथा—पूज्यते शिवलोके च वस्वादित्यमरुद्धणैः।

यावत्कल्पशतान्यष्टौ श्रथ मोत्तमवाष्तुयात्।।६।।

तथा—पुत्रार्थौ लभते पुत्रं धनार्थौ लभते धनम्।

भार्यार्थौ लभते भार्यो कुमारी च शुभं पतिम्।।७।।

श्रष्टराज्यस्तथा राज्यं श्रोकामः श्रियमाष्तुयात्।

यं यं प्रार्थयते कामं तं तं प्राप्नोति पुष्कलम्।।८।।

निष्कामः कुरुते यस्तु परं ब्रह्म स गच्छति।

# ॥ इति लच्चहोमः ॥

## अथ कोटिहोमः।

तत्राप्ययुतलच्छोमप्रकरण एव निमित्तान्युक्तानि । भविष्योत्तारेऽपि । संवरण जवाच —

भगवन् ! महदुत्पातसम्भवे भूमकम्पने ।
निर्घाते पांग्रुवपे च श्रहभङ्गे तथैव च ॥१॥
जन्मनत्तत्रपीडाम्च अनाष्ट्रष्टिभयेषु च ।
क्रूराम्च ग्रहपीडाम्च दुर्भित्ते राष्ट्रविप्तवे ॥२॥
व्याधीनां सम्भवे जाते शरीरे वेति पीडिते ।
क्लेशे महति चोत्पन्ने किं कर्राव्यं नरोत्तमैः ॥३॥

स्वर्गस्य साधनं यत्तत्कोतिंदं धनदं तथा। प्रबृहि मनुजश्रेष्ठ ! तथाऽऽरोग्यप्रदं नृणाम् ॥४॥

सनत्कुमार उवाच-

शृशु राजन् ! प्रवक्ष्यामि शान्तिकर्मण्यनुत्तमम् । कोटिहोमाख्यमतुलं सर्वेकामफलप्रदम् ॥१॥ ब्रह्महत्यादिपापानि येन नश्यन्ति तत्त्वाणात्। उत्पाताः प्रशमं यान्ति महत्सम्पद्यते शुभम्।।२।। विधानं तस्य वक्ष्यामि शृग्रु ह्येकमना भव । देवागारे च भवने तीर्थे वा शिवसन्नियौ ॥३॥ पर्वते वाऽथ कुर्वीत इच्छेत्त्वेममात्मनः । शुभनत्तत्रयोगे च वारे सर्वग्रणान्विते ॥४॥ यजमानस्यानुक्ले कोटिहोमं समाचरेत् । पूजियता प्रयत्नेन ब्राह्मणं वेदपारगम् ॥४॥ वस्त्रैर्विभूषर्णेश्चैव गन्धमाल्यानुहेपनैः । प्रणम्य विधिवत्तस्मै चात्मानं निवेदयेत् ॥६॥ त्वं मे यतः पिता माता त्वं गतिस्त्वं परायणम् । त्रत्मसादेन विपर्षे ! सर्वे मे स्यान्मनोगतम्।।।।। श्रापद्विमोत्ताय च मे कुरु यज्ञमनुत्तमम्। कोटिहोमाख्यमतुलं शान्त्यर्थं सार्वकामिकम् ॥८॥ पुरोहितस्ततः पाज्ञः शुक्राम्बरधरः शुचिः। ब्राह्मणैः संदृतः पुण्यैः संयुतः स्रुसमाहितैः ॥६॥ भूमिभागे समे शुद्धे मागुदक्षवणे, तथा। पुरायाह वाचयेत्पूर्व कृत्वा विप्रांस्तु पूजयेत् ॥१०॥ ततः समाहितो विषः सूत्रयेन्मएडपं शुभम्। **उत्तमं शतहस्तं तु तदर्देन तु मध्यमम् ॥११॥** 

The second secon

श्रधमं तु तदर्देन शक्तिकालाद्यपेत्तया न मध्ये तु मगडपस्यापि कुग्डं कुर्याद्विचत्तगः ॥१२॥ श्रष्टहस्तप्रमाणेन **त्र्यायामेन तथैव** च मेखलात्रितयं तस्य द्वादशाङ्गुलविस्तृतम् ॥१३॥ तत्प्रमाणां तथा योनिं कुर्वीत सुसमाहितः कुण्ड्स्य पूर्वभागे तु वेदिं कुर्याद्विचन्नणः ॥१४॥ चतुर्हस्तां समां चैव हस्तमात्रोच्छितां नृप । स्थापनं च सदेवानां कुर्याद्यत्नेन बुद्धिपान् ॥१५॥ उपलिप्य ततो भूमिं मगडपस्य पकन्पयेत्। स्थापयेदिन्नु सर्वामु तोरणानि विचन्नणः ॥१६॥ एवं सम्भृतसम्भारः पुरोधाः सुसमाहितः। पुरायाहजयघोषेरा होमकर्म समाचरेत् ॥१७॥ स्थापयिला सुरान्वेद्यां वक्ष्यमाणानरिंदम ! ब्रह्माणं पूर्वभागे तु मध्ये देवं जनार्दनम् ॥१८॥ पश्चिमे तु तथा रुद्रं वसुनुत्तरतस्तथा ईशान्यां च ग्रहान्सर्वानाग्नेय्यां मरुतस्तथा ॥१६॥ वायुं भूम्यां तथैशान्यां लोकपालान्क्रमेख तु । एवं संस्थाप्य विबुधान्यथास्थानं तृपोत्तम ! ॥२०॥ पूजयेद्विधिवद्वस्त्रैर्गन्धमाल्यातुछेपनै : वेदोक्तमन्त्रस्तिन्तिङ्गैः पुराणोक्तैः पृथक् पृथक्॥२१॥ श्रादित्या वसवो रुद्रा लोकपालास्तथैव च । ब्रह्मा जनाद<sup>६</sup>नश्चैव श्र<u>त</u>्वपाणिर्महेश्वरः ॥२२॥ श्रत्र सन्निहिताः सर्वे भवन्तु सुखभागिनः पूजां गृह्णनतु सर्वत्र मया भक्तयोपपादिताम् ॥२३॥ पकुर्वन्तु शुभं सर्वे यज्ञकर्तुः समाहिताः ।

एवं तु पूजियला तान्देवान्यत्नेन शुद्धधीः ॥२४॥ नैवेचैविंविधेभें स्यैः फलैं श्रेव सुशोभितैः । ततस्तु तैर्द्विजैः सर्वैः कुण्डस्य विधिपूर्वकम् ॥२५॥ कुर्यात्संस्कारकरणं यथोक्तं वेदवित्तमैः। ततः समाह्वयेद्रहिनाम्नाख्यातं घृताचितम् ॥२६॥ नियोजयेद्द्विजांस्तत्र शतसंख्यान्तृपोत्तम । श्रलाभे च बहूनां च यथालाभं नियोजयेत् ॥२७॥ विद्यावित्तवयोद्धान् गृहस्थान् संयतेन्द्रियान् । स्वकमेनिरतान् बुद्ध्वा ज्ञानशीलान्त्रयत्रतः ॥२८॥ चिन्तयेत्तत्र देवेशं पश्चास्यं नृप ! पावकम् मुखानि तस्य चलारि सप्तजिह्वानि पार्थिव ।।।२६।। एकजिह्नमथैकं तु तत्स्मृतं सार्वकामिकम् । धूमायमानेन दृथा होतन्यं ज्वलितेन ते ॥३०॥ ऋग्भिः पूर्वप्रस्वैः कार्यो यज्ञभिश्रोत्तराम्रस्वैः । सामभिः पश्चिमे कार्यः पूर्ववहत्तिणामुखैः ॥३१॥ श्राघारावाज्यभागौ तु पूर्वे हुला विचन्तरणाः। परितश्च परिस्तीर्धे कल्पिते च तथाऽऽसने ॥३२॥ ब्राह्मणाः पूर्वमेवात्र सर्वे पश्चात्समाचरेत्। होमो ब्याहृतिभिश्चैव सर्वस्तत्र विधीयते।।३३॥ प्रणवादिभिश्च तिल्लिङ्गेः स्वाहाकारान्तयोजितैः। जुहुयात्सर्वदेवानां वेद्यां ये चावकल्पिताः ॥३४॥ एवं पकल्पयेद्यज्ञं कोटिहोमाख्यमुत्तमम् तिलाः कृष्णाः घृताभ्यक्ताः किश्चि द्वीहिसमन्विताः ॥३५॥

- Control of the second of the

किञ्चियव समायुक्ता इति कचित्पाठः । होतन्याः कोटिहोमे तु समिधः सुपलाशजाः।

पूर्णे पूर्णे ,सहस्रे तु दद्यात्पूर्णाहुति ,शुभाम् ॥३६॥ पञ्चमे तन्मुखे राजन्! सर्वकामार्थसिद्धये। पूर्णाहुत्यः समाख्याताः कोटिहोमे नराधिप ! ॥३७॥ सहस्राणि नृपश्रेष्ठ ! दशशास्त्रविशारदैः। पारम्भदिनमारभ्य ब्राह्म**णैर्ब्रह्मवादिभिः ॥३८॥** होतन्यं यजमानैश्र श्रथवा सुपुरोहितैः। क्रोधलोभादयो दोषा वर्जनीयाः प्रयत्नतः॥३६॥ यजमानेन राजेन्द्र सर्वेकामानभीष्सता । मात्स्ये-श्रस्माच्छतगुणः प्रोक्तः कोटिहोमः स्वयम्भुवा । श्राहुतीभिः प्रयत्नेन दित्तिणाभिः फल्लेन च ॥ १ ॥ पूर्ववद्ग्रहदेवानामावाहनविसङ्जेनम् होममन्त्रास्त एवोक्ताः स्नानदाने तथैव च ॥ २ ॥ कुएडमएडपवेदीनां विशेषोऽयं निबोध मे। कोटिहोमे चतुर्हस्तं चतुरस्रं च सर्वशः॥३॥ तद्प्याहुस्त्रिमेखलम् ॥ योनिवक्त्रद्वयोपेतं

सर्वशः चतुर्हस्तमिति विस्तारायामखातेष्वत्यर्थः । योनिवक्त्र-द्वयोपेतमित्येका योनिः पश्चिमतोऽभ्या दित्तगत इति हेमाद्रिः । वक्त्रं=क्राउः । योनिकण्ठयुतमिति पितामहचरणाः ।

वेदिश्व कोटिहोमे स्याद्वितस्तीनां चतुष्ट यम् । चतुरस्ना समाहृता त्रिभिवेभैः समाहृता ॥१॥ वप्रमानं मया पोक्तं वेदिकायास्तथोच्छ्यः।

उक्तमयुतहोमे-

तथा षोडशहस्तः स्यान्मएडपश्च चतुर्मुखः ॥ २ ॥ पूर्वद्वारे च संस्थाप्य वह्ट्चं वेदपारगम् । याजुर्वेदं तथा याम्ये पश्चिमे सामवेदिनम् ॥ ३ ॥

श्रयवेवेदिनं तद्वदुत्तरे स्थापयेद्बुधः। श्रष्टौतु होमकाः कार्या वेदवेदाक्ववेदिनः ॥ ४ ॥ एचं द्वादश तान् विमान् वस्त्रमाल्यानुलेपनैः। पूर्ववत्यूजयेद्भवत्या सर्वाभरणभूषितैः ॥ ५ ॥ रात्रिस्कं च रौद्रं च पावमानं सुमङ्गलम्। पूर्वतो बहुरुचः शान्ति पठन्नास्त उदङ्गुखः ॥ ६ ॥ शाक रौद्रं च सौम्यं च कौष्माएडं शान्तिमेव च। पठेलु दिलाणे द्वारि याजुर्वेदिकम्रुत्तमम्।। ७।। वैराजमाग्नेयं रौद्रसंहिताम्। ज्येष्ठसाम तथा शान्ति छन्दोगः पश्चिमे पटेत् ॥ ८ ॥ शान्तिसूक्तं च तथा तथा शाक्कनकं शुभम्। पौष्टिकं च महाराजसूत्तरेणाऽप्यथर्ववित्।। ६ ॥ पश्चभि सप्तभिर्वाऽथ होमः कार्योऽत्र पूर्ववत् । स्तानं दाने च मन्त्राः स्युस्त एव ग्रुनिसत्तम !।।१०॥ वसोद्धीराविधानं तु लचहोमवदिष्यते । अनेन विधिना यस्तु कोटिहोमं समाचरेत् ॥११॥ सर्वाम्कामानवाष्नोति ततो विष्णुपर्दं व्रजेत्। यः पठेच्छ्यायाद्वाऽपि ग्रहशान्तित्रयं नरः।।१२।। सर्वपापविशुद्धात्मा पदमिन्द्रस्य गच्छिति । श्चरवमेधसहसाणि दश वाऽष्टौ च धर्मवित् ॥१३॥ कृत्वा यत्फलमामोति कोटिहोमात्तदस्तुते । ब्रह्महत्यासहस्राणि भ्रूणहत्याऽर्बुदानि च ॥१४॥ ज् नश्यन्ति कोटिहोमेन यथावदैवभाषितम्। इति कोटिहोमः।

# श्रथ शतमुखकोटिहोमः।

### संपरण खवाच--

षहुत्रात्कर्मणो ब्रह्मन ! कोटिहोमः सुदुष्करः । कालेन महता चैव कर्तु शक्यः कथश्चन ॥ १ ॥ नियमा ब्रह्मचर्याचा दुष्करा इति मे मितः । निरोधो ब्राह्मणानां च भुशय्यादि सुदुष्करम् ॥ २ ॥ कार्याणामलघीयत्वात्पूर्वकालाद्यपेत्तया । एतद्विज्ञाय तं ब्रह्मन ! सर्वशास्त्रेषु पट्यते ॥ ३ ॥ कोटिहोमस्य संत्तेषं वद मे ब्रह्मसम्भव ! ।

### समत्कुमार उवाच-

शताननो दशमुखो दिमुखैकमुखस्तथा।
चतुर्विधो महाराज! कोटिहोमो विधीयते॥१॥
कार्यस्य गुरुतां ज्ञाला नैकट्यमथ पर्वेषाः।
यथा संनेपतः कार्यः कोटिहोमस्तथा शृष्णु ॥२॥
कृत्वा कुएडशतं दिन्यं यथोत्तं मानसम्मितम्।
एकैकिस्मिस्तथा कुएडे दश विमानियोजयेत्॥३॥
सद्यः पत्ते तु विमाणां सहस्रं परिकीर्तितम्।
एकस्थानमधीतेऽसौ सर्वतः परिभाविते॥४॥
पकस्थानात्सर्वतः सर्वतः सर्वस्मिन्कुण्डे परिभाविते संस्कते-

होमं कुर्युर्द्धिनाः सर्वे कुण्डे कुण्डे यथोदितम् । यथा कुण्डबहुत्वेऽपि राजस्ये महाक्रतौ ॥ ४ ॥ न चाप्यग्रिबहुत्वं स्यास च यज्ञादि भिद्यते । तथा कुण्डशतेऽप्यत्र घृताचिषि नियोजिते ॥ ६ ॥

एक एव भवेद्यज्ञः कोटिहोमो न संशयः। एवं यैः क्रियते चिपं च्याकुलैः कार्यगौरवात् ॥ ७ ॥ शताननः स विज्ञेयः कोटिहोमो न संशय। स्वल्पेरहोभिः कार्यं स्यादीर्घकालादिकेऽपि वा ॥ 🗸 ॥ तदा दशमुखः कार्यः कोटिहोमः शुभे मते। विपाणां द्विशते तत्र प्रविभन्य नियोजयेत् ॥ ६ ॥ तेऽपि विज्ञातशीलाः स्युष्टेत्तवन्तो जितेन्द्रियाः। यंत्र कुराडद्वयं कृत्वा विभज्य च विभावसुम् ॥१०॥ होमं कुर्युर्द्विजा भूयः संस्कृत्य विधिपूर्वकम्। शतं तत्र नियोज्यं च विषाणां प्रविभज्य वै ॥११॥ मासेऽथवाऽर्द्धमासे वा कार्य्यः काले ह्यपस्थिते । तदापि द्विम्रुखः कार्यः कोटिहोमो विचन्नर्णैः ॥१२॥ तद्ञ स्वेच्छया यज्ञं यजमानः समापयेत्। कालेन बहुना राजंस्तदा चैकप्रुखो भवेत्।।१३॥ एककुएडस्थितो वहिरेकचिन्तैः समाहितैः। यथालाभस्थितैविंभैर्ज्ञानशीलैविंचत्तर्णः ॥१४॥ न संख्यानियमथाऽत्र ब्राह्मणानां नरोत्तम ! न कालनियमश्चैकस्वेच्छायज्ञः स उच्यते ॥१४॥ श्राष्ट्रत्या कर्तुकामस्य चातुर्मास्यादि कर्मवत् । <sup>्र</sup>ातदा प्रसक्तः कर्त्तव्यो यज्ञोऽयं सर्वकामिकः ॥१६॥ श्रयमेकमुखो राजन ! कालेन बहुना भवेत्। बहुविद्यश्च कालो वै तस्मात्संदीपमाचरेत्।।१७॥ यतो वै वित्तमायुश्च वित्तं चैवाऽस्थिरं सदा। श्रतः संचेपतः कार्यं धर्मकार्य्यं प्रशस्यते ॥१८॥ ततः समाप्ते यज्ञे तु कारयेत्स्रमहोत्सवम्।

शंखतूरयंनिनादेन ब्रह्मघोषरवेण च ॥१६॥ ततस्तु दत्तयेद्विपान् ऋत्विजः श्रद्धयान्वितः। एकैकं कनकैश्चैव कुएडलैविविधैर्नृप !।।२०।। गोशतं चैव दातव्यमश्वानां च शतं तथा। सहस्रं तु सुवर्णस्य सर्वेषामि दापयेत् ॥२१॥ ग्रामैर्गजै रथैरश्वैः पूजयेच पुरोहितम्। दीनान्धक्रपणान्सर्वान्वस्त्रोत्रैश्वाऽपि पूजयेत् ॥२२॥ ततश्रावस्थे स्नायात्तेर्घटैः पूर्वकल्पितैः। लत्तहोमोक्तमन्त्रेण सदाविजयकारिणा ॥२३॥ एवं समापयेद्यस्तु कोटिहोममखं शुभम्। तस्यारोग्यं वियाः पुत्रा आयुर्द्धदिस्तथैव च ॥२४॥ सर्वपापत्तयश्चैव जायते नृपसत्तम!। श्रनादृष्टिभयं चैव उत्पातभयमेव च ॥२५॥ दुर्भित्तग्रहपीदाश्च पशमं यान्ति भूतले । एतत्पुरायं पापहरं सर्वकामफलप्रदम् ॥२६॥ सनत्कुमारम्रुनिना पार्थिवाय निवेदितम् । सर्वोपसर्गशमनं भवनाशनं वा

ये कारयन्ति मनुना नृपकोटिहोमम् । भोगानवाप्य मनसोऽभिमतान मकार्म ते यान्ति शक्रसदनं भ्रुवि शुद्धसत्त्वाः ॥२७॥

श्रथ यथैते साहसाः साद्यस्कता इत्येकसंज्ञयोपकांतेषु क्रमाम्ना-तेषु च निकायिसंज्ञकेषु यागेषु प्रथमस्याम्नातधर्मकस्य धर्मा उत्तरे-ष्वनाम्नातधर्मकेषु निकायित्वाऽवान्तरासामान्यात्साहस्रं साद्य-स्क्त्राद्येकनामकत्वाच्च प्रवर्तेत इत्यष्टमे निकायिनां तु पूर्वस्योत्तरेषु प्रवृत्तिः स्यादित्यत्र निरणायि । तथेह चतुर्विधो महाराजकोटिहोम

इति चतुर्णा कोांटहोमनामत्व।वान्तरसामान्येन सघर्मकस्यैकमुखस्य

धर्मा श्रनाम्नातधर्मकेषु द्विमुखादिषु प्रवर्त्तन्ते तेन तेषां विक्वतित्वम् । तत्र द्विमुखे तावत्कुण्डद्वयं प्रकृतिप्राप्तेषु शतपञ्चायात्पञ्चविंशतिहस्त-मण्डपेषु मध्यमनवमांशे कार्यं तस्यैव मध्यमे नवमांशे तु कुएडं कुर्याद्विचत्त्रण इति प्रकृती वचनेनात्रापि तथा प्राप्तेः। तच्च कुण्ड-द्वयं पर्हस्तम्। दशलज्ञमिते होमे षद्करं संप्रचज्ञत इति भविष्य-त्पुराणात् । पश्चहस्तं वा । कुएडं पञ्चकरं प्रोक्तं दशलचाहुती क्रमादिति तत्वान्तराच्च। दशलद्योत्तरमेकोनकोटिपर्यन्तं पञ्चषट्करे इत्यर्थः । श्रयुतहोमतः प्राप्तं एकहस्तत्वं प्राकृतं परिमाणं त्वादुदृष्टार्थः त्वापत्याऽप्राकृतकार्यत्वाद्वाध्यते । ऋर्थात्परिमाणिमति कात्यायनो-क्तेश्च। तत्र पञ्चविंशतिहस्ते मण्डपे मध्यनवांशे दक्तिणोत्तरयोः कुएडद्वयं निविशतेः ॥ कथिञ्चत् प्रकृतितो द्वादशाङ्गुलमेखलाप्राप्तेः। इतरयोस्तु मएडपयोः सुगम एव निवेशः। एवं दशमुखेऽपि प्राक्ततै-कहस्तत्ववाधेन पश्चकराणि षट्कराणि वा दशकुण्डानि । तेषु प्रत्येकं दशलच श्राहुतयः। तत्र पश्चविंशतिहस्ते मण्डपे मध्यमांशेषु पूर्वादिषु चतुर्पु ।दत्तु मध्ये संलग्नानि चत्वारि कुएडानि । प्राकृतमध्यमाशाधि-करणत्वस्य यावत्सम्भवमनुष्रहस्य न्याय्यत्वात् । प्राचि नवमांशे तु प्राक्तता चतुःकरा वेदी । सप्तस्वंशेषु पट्कुएडानि यः कश्चिदेकोंशास्त्र रिक एव । कुंडद्वर्थं मध्यमांशे । श्रष्टस्वंशेष्वष्टाविति केचित् । शत्रु-खेऽपि पञ्चविंशतिहस्ते तावनमण्डपे शतकुएडो निवेशो वाधित एव। पंचाशबस्ते यद्यपि सम्भवति तथापि सहस्रविप्राणां सुखेन निवेशो वाधितः । श्रतः शतहस्त एव निवेश उच्यते । तत्र मध्य-मांशे प्राग्भागे उदक् संस्था पत्रचानामेका पंकिः । तेवां च कुएडानां प्रत्येकमन्तरं सार्द्धसप्तहस्ताः सप्तांगुलानि च । ततः प्रतीच्या-मेतादशमेबान्यत्पंकित्रयं कार्थम् । पंकीनामन्तरं वाष्टी हस्ताः। सप्तांगुलानि च । एवं विश्वितकुर्वानि मध्यभागे अन्येष्वष्टसु भागेषु मध्ये हे हेऽष्टस्त दिन्वष्टावष्टाविति। प्रत्येकं दश दशेति। नह शत-कुण्डेषु प्रत्येकं लचाहुतिप्राप्तिः । न चैतत्सद्यः कोटिहोमपन्ने सम्भ-वति । कत्वा कुण्डशतं विच्यं यथोकं हस्तसम्मितमिति शतसुख-प्रकर्णे कुण्डानां इस्तर्पारमाणोकेरिति चेत्तत्र केचित् इस्तस्विमत-मित्यत्र हस्ताभ्यां हस्तैर्वा सम्मितमिति विग्रहेण त्रित्रतुहस्ततापि युश्यते । ब्रिहरतेऽपि त लक्षमाहृतयः सम्भान्त्ये । श्रव एव --

हेमाद्रौ--श्रयुते लथ होतच्ये कुएडं स्याद्धस्तमात्रकम् । द्विगुणं लक्षहोमे तु कोटिहोमे चतुर्गुणमिति ॥१॥ यद्यायोजनार्यक एकवानान्त्रेतेव वियदस्त्रशार्ययसम्बद्धा दिवस

यद्यप्यौत्सर्गिक एकवचनान्तेनैव विग्रहस्तथाऽप्यनुपपत्या द्विबहु-वचनाग्तेनापि कियते । यथा सप्तदश प्राजापत्यान्पश्चनालभत इत्यत्र चोद्कप्राप्तैकपश्चनिष्पन्नहृद्याद्येकादशावदानगणानुरोधेन प्रजापति-र्देवता यस्यासी प्राजापत्यः प्राजापत्यश्च प्राजापत्यश्च प्राजापत्य इति कृत्तद्धितानामेकशेष एव यागी न तु अयं वा पञ्चैक इत्येकशेषी-त्तरं तद्धितं चोदकवाधापत्तेरित्युक्तम् । एवं द्विचतुईस्तकुगडं सम्पत्या युज्यन्त पक्षेकस्मिन्कुएडे लक्तमाहुतय इत्याहुः। तातचर-णास्तु-व्यासतुल्यखातेन षट्पञ्चचतुर्स्त्रिशह्यं गुलानां पञ्चमेखलानां विंशत्यंगुलोच्चतया च मध्यावकाशविवृध्या एकैकहस्तेष्विप शक्या एव तत्त्वमाहुतयः कर्तुम् । श्रनारभ्याम्नातपञ्चमेखलापत्तेण प्राकृत-मेखला त्रयवाधस्तूपदिष्टैकहस्तत्वानुरोधेनेति युक्तमाहुः। अत्रैकस्मि-न्कुण्डे श्राज्यभागान्तं कृत्वाऽन्यकुण्डेष्वश्चिप्रप्रण्यनमिति केचित्, तन्न वरुणाप्रधासि कदिन्तगोत्तरवेद्योरनुष्ठीयमानायामाहुत्यामाग्नेयाद्यष्ट-हविष्णुवाघाराज्यभागप्रयाजा खङ्गानाँ पृथगनुष्ठानवदाज्यभागांतं श्राहुतीतिवत्संख्यया **स्विष्टकृदाद्यङ्गानुष्ठानव**दिहापि तिस्र कोटिसंख्याकेषु होमेषु लच्चशः शतकुग्डेष्वनुष्टीयमा-नेष्वाज्यभागातिस्विष्टकदायङ्गानुष्ठानभेदस्यैव न्यार्यत्वात् च अप्रमादार्थेन दीन्नाकालीनजागरणेन दीन्नोपयुक्तसम्भारसंरन्न-प्रायणीयाद्यर्थसम्मारसंरत्त्रणार्थातिदेशिकजागरणावृत्ति-विदृहाप्यग्निस्रमिन्धनार्थेध्माधानावृत्तिः कथमप्यनिवार्येव । न हि श्राचार्थकुरुडस्थेऽग्नी समिद्धे कुण्डान्तरस्थानां समिन्धनं भवति । श्रत प्वायुतहोमे पूर्वेलिखितं तत्तदुप्रहाकारवच कुण्डीपद्ते प्रधा-नायतनाद्धि विभज्य श्राचार्यकुएडेषु प्रणीय नृत्राचार्या श्राज्यभा-गान्तं कृत्वेत्यादिना होमशेषं समाप्य पूर्णाहुतीर्हुत्वेत्यन्तेनाज्यभागा-तानां स्विष्टकुदादीनां चाङ्गानामावृत्तिलिखनं प्रयोगपारिजातीयं संगच्छते तदेव च कोटिहोमें चीदकात्प्राप्तम् । प्राकृताष्ट्रसंख्यावाधेन नवतिसंख्यामात्रं विधीयते । यद्यपि प्रणयनांतरं तथापि तद्धर्मकमेवं सर्वथाङ्गानामावृत्तिरेव एतावानविशेषः शतसंख्यया कुएडेषु नव-संख्या ब्रहाद्याकारास्थलविशेषाश्च निवर्तन्ते । श्रतोऽन्निस्थापनोत्तर-

मेष प्रणयनम्। यत्तु पारिजाते मध्यकुण्डात्प्रण्यनमुक्तं तन्न प्रागुदगप-वर्गप्रचारवाधात् । तेन तत्संरत्त्रणार्थं नैऋत्यकुण्डादेव प्रणयनं कार्य्यम् । अस्तु वा कथञ्चिद्यगुतहोमे मध्यकुण्डसद्भावात्तस्य च सर्वप्रधानभूतसूर्यदेवत्यत्वात्कथञ्चित्ततः प्रण्यनं शतमुखे तु मध्ये कुण्डनिवेशाभावान्न ततोग्निप्रण्यनं मध्यस्थलसमीपवर्त्तिष्वनेक-कुण्डेषु तु विनिगमनाविरहः । सर्वोऽप्ययं कोटिहोमविचारस्तात-चरणैद्वैतनिर्णये सुविवृत इति नेह विस्तरः॥

## श्रथ मायो मात्स्यानुसारिणीं भद्दकृतां पद्धतिमनुस्मृत्य श्रहमखप्रयोगः ।

कर्ता प्रारम्भिदनातपूर्वे सुदिने दानमयूखीयास्मदुक्तप्रकाराणा-मन्यतमप्रकारेण प्राची संसाध्य तत्र वितस्त्युच्छू।यं मण्डपिनवेश-योग्यं चतुरस्रं चत्वरं कृत्वा पूर्वाह्वं देशकाली स्मृत्वाऽमुककर्म कर्तुं मण्डप करिष्य इति संकल्प्य गणेशं कूर्म शेषं वासुकि द्विजांश्च-सम्पूज्य—

श्रागच्छ सर्वेकल्याणि वस्रधे लोकधारिणि। जद्धतासि वराहेण सशैलवनकानना ॥१॥ मगडपं कारयाम्यद्य त्वदूर्ध्वे श्रुभलचणम् । गृहा णाऽर्ध्ये मया दत्तं प्रसन्ना शुभदा भव॥२॥

इति वसुधाया अर्घ्यं दत्वा स्योना पृथिवीति तां प्रार्थ्य मण्डपं तदुद्दीच्यां मध्ये वा कुण्डं वेदिं च कुर्यात् । मण्डपश्चायुतहोमेष्ट- हस्तो दशहस्तो वा कुण्डं हस्तिमतं चतुरंगुलैकमेखलं वेदीमग्ड- पोत्तरभागे हस्तिवस्तृता वितस्त्युच्छ्रिता वप्तत्रयवती कार्या। तत्र प्रथमो वप्रस्त्यंगुलोच्छ्र्यः। तदुपरितनी प्रत्येकं द्वयङ्गुलोच्छ्रितो। विस्तारस्तु सर्वेषार्माप प्रत्येकं त्र्यंगुलः। लज्ञहोमे तु मण्डपो द्वादश चतुर्दश्योडशहस्तोऽपि कुण्डं चेत्रफलतश्चतुःकरम्। तदेव व्यास-तो द्विकरम्। द्वित्रचतुरंगुलोचित्रमेखलम्। तत्रोपरितनी चतुरंगुल- विस्तारा प्रधोगते द्वे अपि प्रत्येकं द्वयं गुलविस्तारे। कुण्डादीशान्यां सार्द्वहस्तविस्तृता तद्द्वीच्छ्रतेशानप्रवणा पूर्वपवित्तवप्रा वेदी ॥

The state of the s

कोटिहोम तु शततदर्द्धतदर्द्धषोडशान्यतमहस्तो मएडपः कुण्डं तु श्रष्टहस्तं दशहस्तं षोडशहस्तं वा फलतः । तच व्याससमस्रातं मएडपमध्ये तस्य दिल्लिपश्चिमयोयोनिद्धयम् । वेदी च प्राच्यां द्विह्न्स्तिवस्तृतेति विशेषः । द्विमुखदशमुखशतमुखेषु तु निर्णयावसरे सिन्निवेश उक्तः कर्ता सुदिने मासपत्तादि संकीत्यं श्रोकामादिर्श्रहपी-डानिवारणकामो वाऽयुतहोमं लत्तहोमं वा करिष्य इति संकल्य । गणेशपूजा-स्वस्तिवाचन-मातृपूजा—(वसोर्द्धारा श्रायुष्यमंत्रजप-) वृद्धिश्राद्धाचार्यादिवरणानि कुर्यात् । तत्रायुतहोमे चत्वार ऋत्विजो द्वी वा । लत्तहोमे द्वादशाधौ चत्वारो वा । कोटिहोमेऽधौ होमार्थं चत्वारो द्वारजापका इति द्वादश । श्रयुतलत्त्वकोटिहोमेषु त्रिष्विप षोडश वा । ब्रह्माचार्यावप्येतन्मध्य एव सर्वत्र ।

### वरणमन्त्रास्तु-

श्राचार्यस्तु यथा स्वर्गे शक्रादीनां बृहस्पतिः । तथा त्वं मम यहोऽस्मिन्नाचार्यो भव सुत्रत ॥ १ ॥ यथा चतुर्भुखो ब्रह्मा स्वर्गेतोके पितामहः । तथाऽस्मिन्मम यहो त्वं ब्रह्मा भव द्विजोत्तम ॥ २ ॥ श्रस्य यागस्य निष्पत्तौ भवन्तोऽभ्यर्थिता मया। स्रमसन्नाः पकुर्वन्तु शान्तिकं विधिपूर्वकम् ॥ ३ ॥

# (कोटिहोमे तु गुरुपार्थना)

त्वं मे यतः पिता माता त्वं गतिस्त्वं परायणम् । लत्प्रसादेन विप्रर्षे ! सर्वं मे स्यान्मनोगतम् ॥ ४॥ स्रापद्विमोत्ताय च मे कुरु यज्ञमनुत्तमम् । कोटिहोमाख्यमतुलं शान्त्यर्थं सावकामिकमिति ॥ ५॥

ततः सर्वानाचार्यादीन् स्वशाखीयानामृत्विक्शाखीयानां च पदा-र्थानामनुसमयेन मधुपर्केण संपूज्य शुक्कमाल्याम्बरानुलेपनः सप-लीक ऋत्विक्सहितो भद्रं कर्णेभिरिति वेदघोषेण मण्डपं प्रदित्ति-णीकृत्य पश्चिमद्वारेण प्रविशेत्। तत श्राचार्यो— यदत्र संस्थितं भूतं स्थानमाश्रित्य सर्वदा ।
स्थानं त्यक्ता तु तत्सर्वे यत्रस्थं तत्र गच्छतु ॥ १ ॥
श्रपक्रामन्तु भूतानि पिशाचाः सर्वतो दिशम् ।
सर्वेषामविरोधेन ब्रह्मकर्म समारभे ॥ २ ॥

इति सर्षपान्विकीर्य शुची वो हव्येति एतोन्विन्द्रमिति च तृचाभ्यां श्रापो हि छेत्यादिभिश्च भुवं प्रोद्य स्वस्त्ययनं तार्क्यमिति ऋग्छयं पठेत्। ततो मग्डपिनऋतिभागे हस्तमितां वेदिं छत्वा तस्यां वस्त्रं प्रसार्थ्यं तत्र सुवर्णादिशलाक्तया नव रेखाः प्राक्पिश्चमा-यता नव च दित्तिणोत्तरायताः छत्वा मध्यकोष्ठचतुष्ट्यमेकीछत्य प्रतिकोणं त्रिषु पदेषु सूत्रं दद्यात्। तथा चतुविंशतिरर्क्षपदीनि सम्प-द्यन्ते। मग्डलस्याग्नेयादिषु कोणेषु शंकुचतुष्ट्यं निखनेयुः।

### तत्र मन्त्रः---

विशन्तु भूतले नागा लोकपालाश्च सर्वतः । मण्डपेऽत्रावतिष्ठन्तु श्रायुर्वलकराः सदा ॥ इति मन्त्रेण निरवाय ॥ १ ॥

### ततो बलिदानम्-

श्रिभयोऽण्यथ सर्पेभ्यो ये चान्ये तान्समाश्रिताः।
तेभ्यो विलं प्रयच्छामि पुण्यमोदनग्रुत्तमम् ॥१॥
नैर्ऋत्याधिपतिश्चैव नैत्र्यत्यां ये च रान्तसाः।
विलं तेभ्यः प्रयच्छामि सर्वे गृह्धन्तु मन्त्रितम्॥२॥
ॐ नमो वायुर्त्तोभ्यो ये चान्ये तान्समाश्रिताः।
विलं तेभ्यः प्रयच्छामि पुण्यमोदनग्रुत्तमम्॥३॥
छद्रेभ्यश्चैव सर्पेभ्यो ये चान्ये तान्समाश्रिताः।
विलं तेभ्यः प्रयच्छामि गृह्धन्तु सत्ततोत्प्रकाः॥४॥
इति मन्त्रैः शंकुपार्श्वेषु यथाक्रमं प्रतिमन्त्रं माषभक्तवलीन्दत्वा।
शान्तिर्यशावती कान्तिर्विशाला प्राणवाहिनी सती सुमना नंदा सुभद्रा

इति नव प्रागायतरेखादेवताःपूजियत्वा हिरएया सुप्रभा लद्मीर्विभूति-विमला प्रिया जया काला विशोका इति नवदित्तणोत्तरायतरेखादेव-ताश्च सम्पूज्य । मध्ये व्यस्तसमस्तव्याहृतिभिर्वास्तुपुरुषमावाह्य बास्तोष्पते प्रतीति सम्पूज्य । बर्लि च दत्वा मध्यपदचतुष्ट्ये वास्तो-हु दये ब्रह्माणमावाह्य पूजियत्वा ॐ ब्रह्मणे नमो बर्लि समर्पयामीति पायसवर्लि द्द्यात् ॥ १॥

ततः पूर्वपदद्वये दिन्धणस्तनेऽर्घमणे नमः॥२॥ दिन्धणपदद्वये जठरदिन्धणभागे विवस्वते नमः॥३॥ पश्चिमपदद्वये वामभागे मित्राय नमः॥४॥ वामस्तने पृथिवीधराय नम इत्युदकपदद्वये॥४॥ अग्निकोणसूत्रद्विधाक्रतपदद्वयोत्तराद्वद्वये दिन्धणहस्ते

सावित्राय नमः ॥ ६ ॥ दक्षिणार्द्धद्ये सवित्रे च ॥७॥

एवं नैऋत्यपदद्वयपूर्वार्द्धपदद्वये दृषणयोर्विबुधाधिपाय० ॥ □ ॥ तत्पश्चिमार्द्धदेये उरसि अद्भव्यः० ॥ ॥ दिल्लार्द्धदेये प्रत्ये आपवत्साय० ॥ १०॥ ततोऽन्त्यपंक्तिगते ईशानपददिल्लार्द्धे शिरसि शिखिने० ॥ १९॥ तद्दल्लिणार्दे स्थिप० ॥ १२॥ तद्दल्लिणार्दे द्विणवाद्दील्लेणवाद्दीलेणवाद्दीवे सत्याय० ॥ १३॥

केषांमते एवं क्रमः—मध्यपदचतुष्टये वास्तोह दये ब्रह्मणे ॥१॥ तत्पूर्व-पदद्वये दक्षिणस्तने अर्थमणे ॥२॥ तद्क्षिणपदद्वये जठरदक्षिणभागे विवस्वते ॥३॥ पश्चिमपदद्वये वामभागे मित्राय ॥४॥ उदक्पदद्वये वामस्तने प्रथिवी-भराय ॥५॥ अभिकोणसूत्रद्विधाकृतपदद्वयोत्तराई दक्षिणहस्ते सावित्राय ॥६॥ तद्क्षिणाई पदे सवित्रे ॥७॥ एवं नैत्रत्यपद्दये पूर्वाई द्वये वृष्णयोविं बुधा-भिपाय ॥८॥ तत्पश्चिमाई जयन्ताय ॥९॥ वायव्यपददक्षिणाई वामहस्ते राजयक्ष्मणे ॥१०॥ उत्तराई इदाय ॥११॥ ईशानपदोत्तराई हर्स अद्भाः ॥१२॥ दक्षिणाई मुखे आपवस्ताय ॥१३॥ ततोऽन्स्यपंक्तिगते ईशानपददक्षि-

तइक्षिणे स्यार्दे दिक्षणकूर्परे भृशाय० ॥१४॥ तहित्रणमवाही श्राकाशाय० ॥१४॥ तत्पश्चिमार्द्धे दिन्ताणप्रवाहावेव वायवे० ॥१६॥ तत्त्वश्चिमद्वये दिचायोरौ यमाय० ॥१७॥ तत्पश्चिमयोर्देचिएाजानौ गन्धर्वाय० ॥१८॥ तत्वश्चिमे सार्द्धे पदे दिचणजङ्घायां भृतराजायः।।१६॥ ्तत्पश्चिमे नैऋत्यपदार्द्धे दित्तासिफिचि मृगाय०॥२०॥ तदुत्तरार्द्धे पादयोः पितृभ्यः० ॥२१॥ तदुत्तरे सार्द्धपदे वामस्फिचि दौवारिकाय० ॥२२॥ तदुत्तरयोवीमजङ्घायां सुग्रीवाय० ॥२३॥ तदुत्तरयोवीमजानौ पुष्पदन्तायः ॥२४॥ तदुत्तरयोर्वामोरौ वरुणाय० ॥२५॥ तदत्तरयोवीमपाश्वे सुराय० तदुत्तरे सार्द्धे पदे वामपार्श्वे शेषाय० ॥२७॥ तदुत्तरे वायव्यार्दे वाममणिवन्धे पापाय० ॥२८॥ त्रह्मागर्दे वामप्रवाही रोगाय०॥ २८॥ तत्राक्-सार्दे वामप्रवाहावेव बाह्वे० ॥ ३० ॥

णार्हे शिरसि शिक्तिन ॥१४॥ तद्दक्षिणे सार्हपदे दक्षिणनेत्रे पर्जन्याय ॥१५॥ तद्दक्षिणपदयोर्दक्षिणश्रोत्रे जयन्ताय ० ॥१६॥ तद्दक्षिणपदयोर्दक्षिणश्रोत्रे जयन्ताय ० ॥१६॥ तद्दक्षिणपदयोर्दक्षिणांसे कुलिशान् पुष्पंय ॥१०॥ तद्दक्षिणवाहावेव सत्याय ॥१६॥ तद्दक्षिणे सार्ह्वे दक्षिणकूर्परे सृशाय ॥२०॥ तद्दक्षिणाऽग्नेयप-दार्घे दक्षिणप्रवाही आकाशाय ० ॥२१॥ तत्पश्चिमार्ह्वे दक्षिणप्रवाही वायवे०॥२१॥ तत्पश्चिमार्ह्वे दक्षिणप्रवाही वायवे०॥२१॥ तत्पश्चिमयोर्दक्षिणपार्ह्वे वितथाय ०॥२६॥ तत्पश्चिमयोर्दक्षिणपार्ह्वे वितथाय ०॥२६॥ तत्पश्चिमयोर्दक्षिणोरी यमाय ० ॥२६॥ तत्पश्चिमयोर्दक्षिणोरी यमाय ० ॥२६॥ तत्पश्चिमयोर्दक्षिणारी यमाय ० ॥२६॥ तत्पश्चिमयोर्दक्षिणारी एदे दक्षिणक्षिमयां स्वत्रायाय ॥१८॥ तत्पश्चिमयोर्दक्षिणारी एदे दक्षिणक्षिमयां स्वत्राय ॥१८॥ तत्पश्चिम सार्ह्वे पदे दक्षिणक्षिमयां स्वत्राय ॥१८॥ तत्पश्चिम सार्ह्वे पदे दक्षिणक्षिमयां स्वत्राय ॥१८॥ तत्पश्चिम सार्ह्वे पदे विवारिकाय ॥१८॥ तत्रायोः पदे वामस्किष्य दौकारिकाय ॥

तत्माक्द्रये वामकूर्परे ग्रुख्याय०॥ ३१॥
तत्माक्द्रये वामवाही भन्ताटाय०॥ ३२॥
तत्माक्द्रये वामवाहावेव सोमाय०॥ ३३॥
तत्माक्द्रये वामांसे सर्पाय०॥ ३४॥
तत्माक्द्रये वामांसे सर्पाय०॥ ३४॥
तत्माक्सार्द्वे वामभेत्रे अदित्यै०॥ ३५॥
तत्मागर्द्वे वामनेत्रे दित्यै०॥३६॥ इति षट्त्रिंशाहेवताः॥
तत उत्तरे वास्तोष्पत इति वास्तोष्पतये०॥

ततो मण्डलाद्वहिरीशानादिषु चरक्यै० विदार्थ्ये० पूतनायै० पापराच्चस्ये०॥ ततः पूर्वादिषु स्कन्दाय श्रय्यम्णे जुम्भकाय पिलि-पिच्छाय॥ पुनः पूर्वादिषु इन्द्रादीन् । ततो मण्डलादीशाने कलशं संस्थाप्य तत्र वस्णं तत्वायामीत्यावाद्य पूजयेत्।

> यथा मेरुगिरेः शृङ्गं देवानामालयः सदा । तथा ब्रह्मादिदेवानां ममयक्रे स्थिरो भव।।१॥ इति प्रार्थयेत्॥

॥३१॥ तहुत्तरयोवांमजङ्कायां सुप्रीवायः ॥३२॥ तहुत्तरयोवांमजानी पुष्पदन्तायः ॥३६॥ तहुत्तरयोवांमोरी वहणायः ॥३५॥ तहुत्तरयोवांमपाइवें असुरायः ॥३५॥ सहुत्तरे सार्खं पदे वामपाइवें शेषायः ॥३६॥ तहुत्तरे वायव्याद्धें वाममणिकन्धे पायायः ॥३६॥ तहपाक्ष्यं वामप्रवाही रोगायः ॥३६॥ तहपाक्ष्याद्धें वामप्रवाहीं रोगायः ॥३६॥ तहपाक्ष्याद्धें वामवाहों भटलाटायः ॥ ४६॥ तहपाक्ष्यं वामवाहोवेव सोमायः ॥४१॥ तहपाक्ष्यं वामवाहोवेव सोमायः ॥४१॥ तहपाक्ष्यं वामवाहोवेव सोमायः ॥४१॥ तहपाक्ष्यं वामवाहोवेव सोमायः ॥४१॥ तहपाक्ष्यं वामवेत्रे दित्येः ॥४६॥ तहपाक्षाद्धें वासवेत्रे विष्याः महिष्यं वामवेत्रे दित्येः ॥४५॥ तहपाक्षाद्धें वासवेत्रे दित्येः ॥४५॥ तहपाक्षाद्धें वासवेत्रे व्यव्यादे पूर्वादिषु स्कन्दादिषु नः पूर्वादिषु इन्द्रादीन् । सद्याः । इन्द्रायः अन्वयेः यमायः निक्तं तयेः वहणायः वायवेः सोमायः दिशावायः वहणायः वायवेः स्तामायः विष्याः वहणायः वहणायः वायवेः स्ताम्पत्रे सर्वाः । ततो मण्डलादीशाने विष्याः कल्यां संस्थाःय तत्र वहणं तत्वायामीति आवाद्यं वहणायं नम इति सम्पूज्य प्रार्थयंत् । यथा महिणिरैः श्रद्धं देवानामालयः सदाः । तथा ब्रह्मादिदेवानां मम यज्ञ स्थिरो भवः ॥ इति ।

तत उदुम्बरादि—समित्तिलाज्यैः स्वतन्त्रस्थिष्डलेऽष्टाविशिति-रष्टौ वा प्रत्येकं तत्तन्नाममन्त्रेहुँत्वा वास्तोष्पत इति चतुर्भिश्च हुत्वा ॐ वास्तोष्पतये इति मन्त्रेण पञ्चिव्वक्कलानि हुत्वा स्विष्टक्रदादि-पूर्णाहुत्यन्तं कुर्यात् । ततो मण्डलदेवताभ्यः पायसविलं दत्वा कृणुष्वपाज इति त्रिस्कादिना मंडपं त्रिस्च्या वेष्टयित्वा वास्तुकलशेन यजमानमभिषिच्य पुनः सम्पूच्य यथाशिक दित्तणां दत्वा ब्राह्मणा-न्भोजयेदिति ।

शारदातिलके तु होमो नोकः । तिलाज्यादिद्रव्याणां विकल्प इति अन्थान्तरे । इति वास्तुपूजा ॥

मात्स्ये— उपोषितास्ततः सर्वे कृत्वैवमिवासनिमिति । पाद्मे--उपवासी भवेदेवमशक्तौ नक्तमिष्यत इति । सद्योऽधिवासनं चाथ क्रुर्याद्यो विकलो नर इति तत्रैवोक्तम्।।

ततो वास्तुमण्डलात्पाद्रचमिद्दशि स्वतम्त्रकुण्डे स्थण्डिले वा पञ्चभूसंस्कारपूर्वकमिन प्रतिष्ठाप्य ब्रह्मोपवेशनादि—आज्यभागान्तं कृत्वा प्रणवध्याहृतिपूर्वकैः
स्वाहान्तेस्तनान्मन्तेः भौदुम्बरादि—समित्तिलाज्यैर्मण्डलदेवतास्यः प्रत्येकमष्टाविशतिमधौ वाऽऽहुतीहु त्वा वास्तोष्पत इति चतुभिर्मन्त्रेश्च वा हुत्वा
ॐ वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणामिति मन्त्रेण पञ्चविक्वफलानि तद्वीजानि वा हुत्वा
इदं वास्तोष्पतयेति त्यजेत् । ततो महान्याहृतिहोमादिस्वष्टकृद्धोमान्तं विधाय
पूर्णाद्वृति जुहुयात् । सा यथा । अन्यदाज्यमाज्यस्थाल्यां निरूप्यावधिश्रित्य सुक्सुवी कुशैः सम्मार्ज्य भाज्यमुद्धास्य व्ह्यूय अवेक्ष्य पालास्यां सुचि सुवेणाज्यं
द्वादशगृहीतं गृहीत्वा समिधमादाय दक्षिणे वाहौ यजमानेनान्वाऽरब्धः । सस ते
अपने समिध इति पूर्णाहृति हुत्वा इदमग्नये न मम इति त्यागं विधाय संसर्वप्राशानादि तन्त्र विधाय समापयेत् । शारदातिलके तु होमो नोक्तः । तिलाज्यादिव्हच्याणां विकल्प इति प्रन्थान्तरे । ततो मण्डलदेवताभ्यः पायसवलि द्वा
कृणुष्वपाज इति सूक्तादिना मण्डपं त्रिस्च्या वेष्टयित्वा वास्तुकलशेन यजमानमभिष्विन्त्य पुनः सम्पूज्य यथाशक्तिदक्षिणां दत्वा ब्राह्मणान्मोजयेत् । इति वास्तुपूजा समाक्षा ।

श्रंथ मण्डपपूजा ॥ तत्राऽऽदौ मण्डपषोडशस्तम्भपूजनम् । मध्ये ईशानस्तम्भे । पृद्धोहि विभेन्द्र ॥ १ ॥ ईसप्रष्ठसमारूदण ॥२॥ आवा-द्याम्यहं देवं ॥ १॥ विश्वरूपं निराधारण ॥४॥ श्रियं तत्र द्वारपूजा। पूर्वद्वारे द्वारिश्रये नमः। ऊर्ध्वं देहत्ये नमः श्रधः वामदित्त्वणस्तम्भयोग्णेशाय स्कन्दाय नमः। द्वार-स्थितकलशद्वये गंगाये यमुनाये। दित्त्वणद्वारे द्वारिश्रये नमः। ऊर्ध्वं देहत्ये श्रधः स्तम्भयोः पुष्पदन्ताय० कपितं ने०कलशद्वये गोदावर्थे० छण्णाये इति। पश्चिमे द्वारिश्रये० ऊर्ध्वं देहत्ये० श्रधः स्तम्भयोः निन्दिने चएडाय नमः। कलशद्वये रेवाये० ताप्ये नमः। उत्तरे द्वार-श्रिये० ऊर्ध्वं देहत्ये० श्रधः स्तम्भयोः महाकालाय नमः। भृक्षिणे नमः। कलशद्वये वाएये० वेएये नमः। इति द्वारपूजा॥

ॐ ब्रह्मयज्ञानं० ॐ भूः० ब्रह्मणे नमः इति गन्धादिभिः पूजयेत् । प्रार्थयेत् । प्रार्थना-वेदाधाराय यज्ञाय० ॥१॥ कृष्णाजिनाम्बरधर० ॥२॥ इति प्रार्थना ।

ॐ साविञ्ये नमः । वास्तुदेवतायै०।ब्राह्मचै० । गङ्गायै० । स्तम्ममारुभ्य ।

🕉 जर्ध्व जषुण इति जपः । स्तम्भशिरसि नागमात्रे नमः ।

ॐ आयं गौरिति शाखावन्धनाद्यनुमन्त्रेण । यतो यतः इति मन्त्रजपः ॥१॥ एवं सर्वत्र स्तम्भमालभ्य जर्ध्व द्वषुण इति जपादिकं कुर्यात् ।

श्राथाग्नेयस्तम्मे — आवाहये तं ।। १।। पद्मनाभ ह्वीकेश ।। ।।। ॐ इदं विष्णु ॐ भू विष्णवे नमः । इति गन्धादिभिः सम्पूज्य । प्रार्थयेत् । प्रार्थना — नमस्ते पुण्डशिकाक्ष ।। ।।। देवदेव जगन्नाथ ।। ।।। इति सम्प्रार्थ्य ।

ॐ स्रक्ष्ये । ॐ आदित्याये । ॐ वैष्णव्ये । ॐ अर्ध्व उषुण् स्तम्भासमादि पूर्ववत् ॥ २ ॥

अथ नैऋतिस्तम्भे०—एहोहि गौरीश॰ ॥ १ ॥ गङ्गाघर महादेव०॥ १ ॥ ॐ नमः शम्भवाय च०॥ ३ ॥

ॐ भु॰ शङ्कराय नमः । इति गन्धादिभिः सम्पूज्य । प्रार्थयेत् । प्रार्थना—वृषवाहनदेवायं । ॥ । पञ्चवनत्र वृषारूढ० ॥ इति सम्मार्थ्ये ॥ ॐ गौर्ये नमः । ॐ माहेश्वर्ये । ॐ शोभनाये । ॐ कर्ष्व उतुण० ॥ इति स्तम्भारुम्भः ॥ ३ ॥

अथ वायव्यस्तम्मे — एद्योहि वृत्रव्न० ॥ १ ॥ शचीपते महाबाहो० ॥ २ ॥ ः ॐ त्रातारमिन्द्रमविता० ॥

ॐ भू० हन्द्राय नमः । गन्धादिभिः सम्पूज्य । प्रार्थयेत् । प्रार्थना—पुरन्दर नमस्ते तु० ॥१॥ देवराज गजारूढ० ॥२॥ इति सम्प्रार्थ्य । ॐ इन्द्राण्ये० । ॐ आदुन्ताये० । ॐ विभूत्ये० । ॐ कर्ष्व उपुण० ॥ इति स्तम्मालम्भः ॥ ४ ॥ श्रथ तोरणपूजा—तत्र पूर्वे वहिर्हस्तमात्रे वटतोरणमाश्वत्थं वा सुदृढनामकं सुशोभननामकं वा शंखाङ्कितमिनमीले इति मन्त्रेण न्यस्य सम्पूज्य राहुवृहस्पती तत्र न्यसेत् पूजयेच। तत्रैकः कलशः स्थाप्यः। तत्र मही धौरिति भूपार्थना। श्रोषधयः समिति यवप्रदेगः। श्राकलशेष्विति कलश्निधानं। इमं मे गङ्गा इति जलपूरणम्। गन्धद्वारा-मितिगन्धं प्रद्विपेत्। या श्रोषधीरिति सर्वौषधीः। श्रोषधयः समिति

एवं मध्यस्थान् ईशानादिकोणस्थान् चतुरः स्तम्भानम्यच्ये पुनर्वाह्ये ईशान-कोणादारभ्य द्वादशस्तम्भान्पूजयेत् ।

तदाशा—अथ वाह्येशानकोणे आवाहयेतं द्विभुजं दिनेशं ।।।।।पद्महस्तमहावाहो ।।।। ॐ आकृष्णेन । ॐ भू० सूर्याय नमः । इति गन्धादिभिः सम्पूज्य । प्रार्थयेत् ।

प्रार्थना—नमः सिवने ।।।।। पद्महस्त रथारूढ ।।।। इति सम्प्रार्था । ॐ सूर्यो । ॐ भूत्ये । ॐ सावित्र्येः । ॐ मङ्गलाये । ॐ जर्ध्वे उषुण । इति स्तम्भालम्मः ॥४॥

ईशानपूर्वयोरम्तरालस्त∓भे--आवाहयेत्तं गणराजदेवं०॥१॥ लम्बोदरं महाकाय०॥ १॥ ॐ गणानान्त्वा०॥ ॐ भू० गणपतये०॥ इति गम्बादिभिः सम्पूज्य। प्रार्थयेत्।

प्रार्थना — नमस्ते ब्रह्मरूपाय० ॥१॥ उम्बोदरमहाकायं०॥ २ ॥ इति संप्रार्थ्य ॥ ॐ सरस्वत्ये०। ॐ विध्नहराये०। ॐ अर्थ्व उषुण्य०॥ इति स्तम्माकम्मः ॥ ३॥

पूर्वामे सोरम्तरालस्तम्से—एशेहि दण्डायुथ० ॥१॥ विद्यापुसादिसंयुक्त० ॥ २ ॥ ॐ यमाय० त्वाङ्गिरस्वते० ॥ ॐ भू० यमाय० नमः ॥ इति गन्धादिभिः सम्पूज्य ॥ प्रार्थयेत् ॥

भाशीविष-समोपेत ।। ॐ भायं गौ० ॥ ॐ भू० नागराजाय ।।

यवान् । काण्डात्काण्डादिति दूर्वा । अश्वत्थेव इति पञ्चपन्नवान् । स्योनापृथिवीति पञ्चमृदः । याःफिलिनीरिति फलम् । सिहरत्नानीति पञ्चरत्नानि। हिरण्यरूप इति हिरण्यम् । युवा सुवासा इति वस्त्रादिना वेष्ट्येत् । पूर्णादवीरिति पूर्णपात्रमुपिर निद्ध्यात् । तत्र भ्रुवावाहनं पूजनं च । ततो दित्तेणे श्रीदुम्वरं प्लाचं वा सुभद्रं विकटं वा सक्षाङ्कितं तोरणिमिषेत्वोज्जैत्वेति निघाय । चन्दनादिचितं कृत्वा सूर्यमङ्गारकं च तत्र न्यसेत् । ततः पूर्ववत्कलशं स्थापित्वा तत्र घरामावाह्य पूजयेत् । ततः पश्चिमे प्लाचमीदुम्बरं वा सुकर्मसुभीमं

इति गन्धादिभिः सम्पूज्य प्रार्थयेत् ।

प्रार्थना — नमः खेटकहस्तेभ्य०॥ खङ्गखेटघराः सर्वे०॥ इति सम्प्रार्थ्य ॥ ॐ मध्यमसन्ध्याये०॥ ॐ घराये०॥ ॐ पद्माये०॥ ॐ महा-पद्माये०॥ ॐ अर्ध्व ऊषुण० स्तम्भा०॥८॥

श्रधाग्नेयद्त्तिग्योरन्तराले ॥ आवाहयामि देवेशं ॥१॥ मयूरवाहनं शक्ति ॥१॥ ॐ यद्कन्दः प्रथमं ॥

ॐ भू ॰ स्कन्दाय नमः इति गन्धादिभिः सम्युज्य ॥ प्रार्थयेत् ॥

प्रार्थना —नमः स्कन्दाय शैवाय० ॥ मयूरवाहनस्कन्द० ॥ इति सम्प्रार्थ्य ॥ উँ पश्चिमसन्ध्यायै नमः ॥ কুध्वे कषुण् इति स्तम्भास्त्रमः ॥९॥

श्रथ दित्तग्गिनेऋत्यान्तरालस्तम्मे ॥ आवाहयामि देवेशं० ॥१॥ खन्नहस्त-महावेगं० ॥२॥ ॐ वायो येते० ॥

ॐ भू० वायवे नमः ॥ इति गन्धादिभिः सम्पूज्य प्रार्थयेत् ॥ प्रार्थना—नमो धरणिपृष्ठस्य० ॥ धावन्धरिषपृष्ठस्य० ॥ इति सम्प्रार्थ्य ॥ ॐवायव्यै० ॥ ॐगङ्गायै० ॥ ॐगायव्यै० ॥ ॐप्रध्यमसम्ध्यायै०॥ ॐ ऊर्ध्व ऊषुण० ॥ १०॥

श्रथ नैऋत्यस्त∓मे—-आवाहयामि देवेशं० ॥१॥ सुधाकरं हिजाधीशं० ॥२॥ ॐ आप्यायस्व०॥

ॐ भू० सोमाय नमः ॥ इति गन्धादिभिः सम्पूज्य ॥ प्रार्थयेत् ॥ प्रार्थना—अत्रिपुत्र नमस्तेऽस्तु० ॥ अत्रिपुत्र निशानाथ० ॥ इति सम्प्रार्थ्य ॥ ॐ सावित्रयै० ॥ ॐ भम्रतकलायै० ॥ ॐ विजयायै० ॥ ॐ पश्चिमसन्ध्यायै० ॥

ॐ अर्ध्व अपुण ।। इति स्तम्भालम्भनम् ॥११॥

वा गदाङ्कितं तोरणमग्न आयाहीति न्यस्य सम्पूज्य चन्दनादिचर्चितं कृत्वा शुक्रं बुधं च तत्र न्यसेत्। ततः पूर्ववत्कलशं स्थापियत्वा तत्र वाक्पत्यावाहनपूजनादि। तत उत्तरे न्यमोधमाश्वत्थं पालाशं वा सुहोत्रं सुप्रभं वा पद्माङ्कितं तोरणं शन्नो देवीरिति निधाय पूजितं कृत्वा सोमं केतुं शिनं च तत्र न्यसेत्। ततः कलशं स्थापियत्वा तत्र विद्नेशावाहनपूजनादि। ततः पूर्वद्वारशाखाद्वये कलशद्वयं दृध्यज्ञतादिगुक्तं पूर्ववत्स्थापयेत्। परावतं कलशद्वयं न्यस्याच्येत् । तत्र पूर्वस्मन् अन्यदेविनावृत्विजौ द्वौ एकं वा शान्तिस्कजपार्थत्वेन त्वामहं वृणे इति प्रत्येकमृग्वेदः पद्मपत्राचो गायत्रः सोमदैवतः।

- श्रथ नैऋत्यपश्चिमयोर्मध्यस्तम्मे—आवाहयामि देवेशं ॥१॥ गम्भीरथस-मारूढं ॥२॥ ॐ इमं मे वरुण ॥ ॐ भू० वरुणाय नमः॥ इति गन्धादिभिः सम्पूज्य प्रार्थयेत् ।
- प्रार्थना-वरुणाय नमस्तेऽस्तु । नमः स्फटिकवर्णाभ० ॥२॥ इति सम्प्रार्थ्य । ॐ वारुण्ये । ॐ पाशधारिएये । ॐ वृहस्ये । ॐ ऊर्ध्व ऊषुण० इति स्तम्भास्तमः ॥ १२ ॥
- श्रथ पश्चिमवायव्यान्तरात्तस्तम्से आवाहयामि देवेशान् ॥ १॥ शुद्ध-स्फटिकः ॥ २॥ ॐ वसोः पवित्रः ॥ ॐ भूः अष्टवसुभ्यो नमः॥ इति गन्धादिभिः सम्पूज्य प्रार्थयेत् ।
  - प्रार्थना-नमस्करोमि देवेशान् । दिव्यवस्ना दिव्यदेहा ॥ इति सम्प्रार्थ्य ॥ ॐ विनताये ॥ ॐ अणिमाये ॥ ॐ भूत्ये ० ॥ ॐ गरिमाये ० ॥ ॐ उर्ध्व ऊष्ठण ॥ इति स्तम्भालम्भः ॥ १३ ॥
- अथ बायव्यस्तम्मे—भावाहयामि देवेशं० ॥१॥ दिन्यमालाम्बरघरं० ॥२॥ ॐ सोमो धेर्नु०॥ ॐ भू० धनदाय नमः ॥ इति मन्धादिभिः सम्पूच्य प्रार्थयेत्॥
  - प्रार्थना-पक्षराज नमस्तेऽस्तु० ॥ दिन्यदेहधराध्यक्ष० । इति सम्प्रार्थ्य । रूँ लिंघमायै० ॥ रूँ सिनीवाल्यै० ॥ रूँ कर्ध्व कषुण० ॥ इति स्तम्मालम्भः ॥ १४ ॥
- अर्थोत्तरवायव्यान्तरासस्तम्भे—आवाह्यामि देवेशं०॥१॥ शह्सं च कलशं वैव०॥१॥ ॐ वृहस्पतेऽअति०॥ ॐ मृ० गुरवे नमः॥ इति गन्धा-दिभिः सम्पूज्य प्रार्थयेत्।

श्रित्रिगोत्रस्तु विप्रेन्द्र ऋत्विक् त्वं मे मखे भवेति चृत्वाऽग्निमील इति पूजयेत्।

प्रहोहि सर्वागरसिद्धसाध्यैरभिष्टुतो वज्रधरागरेश । संवीज्यमानोऽप्सरसां गरोन रत्ताध्वरं नो भगवन्नमस्ते ॥

भो इन्द्र इहागच्छ इह तिष्ठेतीन्द्रं साङ्गं सपरिवारं सायुधं सग्र-किकं द्वारकलशे श्रावाद्य त्रातारामन्द्रमिति पूजियत्वाऽऽग्रः शिशान इति पताकां पीतं ध्वजं चोच्छ्रयेत्। तत पेरावतस्थं पीतवर्णं सह-स्नाचं दिच्णवामहस्तस्थवज्ञोत्पलिमन्द्रं ध्यात्वा।

इन्द्रः सुर्पतिः श्रेष्ठो वज्रहस्तो महाबलः। शतयज्ञाथिपो देवस्तस्मै नित्यं नमो नमः॥

इति नत्वां इन्द्राय साङ्गाय संपरिवाराय सायुघाय संशक्तिकायै-तं माषभक्तविलं समर्पयामीति विलं दद्यात्। तत श्रावम्याऽऽग्ने-यकोणे पूर्ववत्कलशं स्थापयित्वा तत्र पुगडरीकममृतं च सम्पूज्य—

एहा हि सर्वोमरहव्यबाह मुनिपवर्येरिभतोभिज्ञष्ठ । तेजोवता लोकगणेन सार्द्ध ममाध्वरं पाहि कवे नमस्ते॥

भो श्राने इहागच्छेह तिष्ठेति साङ्गादिकमिन कलशे श्रावाह्य त्वन्नो श्रानेत्यिन सम्पूज्यानि दूतिमिति रक्तां पताकां रक्तं भ्वजं चोच्छ्रयेत्। तत छागस्यं रक्तं दित्ति वामकरधृतग्रक्तिकमण्डलुं यक्नोपवीतिनं श्रिक्तं ध्यात्वा—

प्रार्थना-त्रहाउत्र नमस्तेऽस्तु । पूजिलोऽसि यथाशक्त्या ॥ इति सम्प्रार्थ्य ॥ ॐ सावित्र्ये नमः । ॐ कर्ध्व कषुण । इति स्तम्मालम्भ ॥ १४ ॥

श्रधोत्तरेशान्यान्तरालस्तम्भे — आवाह्यामि देवेशं० ॥१॥ त्रैकोक्यसू-त्रकर्तारं०॥२॥ ॐ विश्वकर्मन् हविषा०॥ ॐ भू० विश्वकर्मण०॥ इति गन्धादिभिः सम्पूज्य। प्रार्थयेत्।

प्रार्थना-नमामि विश्वकर्माणं ॥ प्रसीद विश्वकर्मस्त्वं ॥ इति सम्प्रार्थ्य । ॐसिनीवास्ये ॥ ॐवास्तुदेवताये ॥ ॐसाविष्ये ॥ ॐअर्ध्वे अषुण ॥ । स्तम्भा ॥ इति स्तम्भपूषा ॥ १६॥ श्राप्तेयः पुरुषो रक्तः सर्वदेवमयोऽन्ययः। धूच्चकेतु रजोध्यत्तस्तस्मै नित्यं नमो नमः॥ इति नत्वा।

श्रायये साङ्गाय० एतं माषभक्तवित्तं समर्पयामीति वित्तं द्यात्। ततः कृताचमनो दित्तगो गत्वा । प्रतिद्वारशाखं पूर्ववत्कलशद्वयं स्थापित्वा वामनं दिग्गजं तत्राचयेत्। ततो यजुर्वेदिनौ द्वावेकं वा दित्तगद्वारे शान्तिस्कजपार्थत्वेन त्वामहं वृण इत्युक्त्वा—

कातराचो यजुर्वेदस्त्रैष्टुभो विष्णुदैवतः । काश्यपेयस्तु विप्रेन्द्र ऋत्विक् त्वं मे मखे भव ॥ इति प्रत्येकं सम्प्रार्थ्य इषे त्वोज्जें त्वेति पूजयेत्--

ततः — एहा हि वैवस्वत धर्मराज सर्वापरैरचिंत धर्ममूर्ते । शुभाशुभानन्दशुचामधीश शिवाय नः पाहि मखं नमस्ते॥

भो यम इहागच्छेह तिष्ठेति साङ्गादि यममावाह्य यमाय सोम-मिति सम्पूज्य कृष्णां पताकां कृष्णं ध्वजं चायं गौरित्युच्छ्र्येत्। ततो महिषारूढं धृतदण्डवाशं दिल्लावामकरमञ्जनपर्वततुल्यकप-मग्निसमलोचनं यमं ध्यात्वा--

महामहिषमारूढं दण्डहस्तं महाबलम् । भ्याबाह्यामि यज्ञेऽस्मिन्यूजेयं प्रतिगृत्वताम् ॥ इति नत्वा ।

साङ्गाय यमायैतं माषभक्तवितं समर्पयामीति बितं दद्यात्। ततः आचम्य नैऋत्यां पूर्ववत्कलशं स्थापयित्वा कुमुद्गजं दुर्ज्जयं च सम्पूज्य--

एहा हि रत्तोगणनायकस्त्वं विशालवेतालिपशाचसङ्घेः। ममाध्वरं पाहि पिशाचनाथ लोकेश्वरस्त्वं भगवन्नमस्ते।।

भो नित्रहते इहागच्छेह तिष्ठेति साङ्गमावाह्यासुन्वन्तमिति सम्पूज्य नीलां पताकां नीलध्वजं च मोष्ठुणमन्त्रेणेति उच्छ्येत् । ततो नरारुढं खङ्गहस्तं नीलवर्णे महाबलं महाकायं बहुराक्षसंयुतं नित्रहति ध्यात्वा-- निऋतिं खङ्गहस्तं च सर्वलोकैकपावनम् । श्रावाहयामि यज्ञेऽस्मिन्पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ॥ इति नत्वा ।

साङ्गाय निर्ऋतये एतं माषभक्तवलिं समर्पयामीति बलिं द्यात्। तत श्राचम्य पश्चिमे गत्वा प्रतिद्वारशाखं कलशद्वयं निधा-याञ्जनदिग्गजं न्यस्यार्चयेत्। ततः सामगावृत्विजावृत्विजं वा वृत्वा।

सामवेदस्तु पिङ्गाचो जागतः शक्रदैवतः । भारद्वाजस्तु विपेन्द्र ! शान्तिपाठं मखे कुरु ॥ इति प्रार्थ्य । अग्न आयाद्यीति पूजयित्वा ।

ततः-एहा हि यादोगणवारिधीनां गणेन पर्जन्यसहाप्सरोभिः। विद्याधरेन्द्रामरगीयमान पाहि त्वमस्मान्भगवन्नमस्ते ॥

इत्युक्त्वा भो वरुणेहागच्छेह तिष्ठेति वरुणमावाह्य तत्वा-यामीति सम्पूज्य श्वेतां पताकां श्वेतां ध्वजं चेमं मे वरुणेत्यु-चिछुत्य मकरम्थं पाशहस्तं किरीटिनं श्वेतवर्णे वरुणं ध्यात्वा ।

पाशहस्तं च वरुणमणेसां पतिमीश्वरम् । स्रावाहयामि यज्ञेऽस्मिन्वरुणाय नमो नमः॥ इति नत्वा ।

साङ्गाय वरुणायैतं माषभक्तविलं समर्पयामीति विलं दद्यात् । ततोपस्पृश्य वायव्यां पूर्ववत्कलशं स्थापयित्वा पुष्पदन्तं सिद्धार्थे च तत्र पूजियत्वा ॥

एहा हि यहे मम रत्तायाय मृगाधिरूढः सह सिद्धसङ्घैः । प्राणाधिपः कालकवेः सहाय गृहाण पूर्णां भगवन्नमस्ते ॥

भो वायो इहागच्छेह तिष्ठेति साझं वायुमावाहा तव वायवृतस्य त इति सम्पूज्य वायो शतमिति धूम्रां पताकां धूम्रध्वजं चोच्छित्य मृगारूढं चित्राम्बरघरं युवानं वरध्वजघरं दित्त्ग्वामहस्तं वायुं ध्यात्वा॥

वायुमाकाशगं चैव पवनं वेगवद्गतिम् । स्रावाहयामि यज्ञेऽस्मिन्पूजेयं प्रतिपृत्तताम् ॥ श्रनाकारो महौजाश्च यश्चादृष्टगतिर्दिवि । तस्मै पूज्याय जगतो वायवेऽहं नमामि ते ॥ इति नत्वा।

साङ्गाय वायवे एतं माषभक्तविंतं समर्पयामीति विंतं दद्यात् । तत श्राचम्योत्तरे गत्वा प्रतिद्वारशाखं कलशद्वयं स्थापियत्वा सार्व-भौमं दिग्गजं न्यस्य पूजियत्वाऽथर्वविदावृत्विजावुत्तरद्वारे शान्तिस्कजपार्थत्वेनाऽहं वृण इत्युक्तवा ।

वृहन्नेत्रोऽथर्ववेदोऽनुष्टुभो रुद्रदैवतः । वैशम्पायन विप्रेन्द्र शान्तिपाठं मखे कुरु ॥ इति प्रार्थ्य । शन्नो देवीरिति पूजयेत् ।

एहा हि यहरेवर यहरत्तां विधत्स्व नत्तत्रगणेन सार्द्धम्। सर्वौषधीभिः विद्यभिः सर्हैव गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥

भो सोम इहागच्छेह तिष्ठेति साङ्गं सोममावाह्य वयं सोमेति सम्पूज्य हरितां पताकां हरितध्वजं चाप्यायस्वेति न्यस्य । नरपुष्पकविमानस्थं कुण्डलहारकेयूरसंशाभितं वरदगदाधरदित्त्ण-वामहस्तं मुकुदिनं महोदरं स्थूलकायं हस्वं पिङ्गलनेत्रं पीतवित्रहं श्रवसस्त्रायं सोमं ध्यात्वा ।

सर्वनत्तत्रमध्ये तु सोमो राजा व्यवस्थितः । तस्मै सोमाय देवाय नत्तत्रपतये नमः ॥ इति नत्वा ।

साङ्गाय सोमायैतं मायभक्तवालं समर्पयामीति वालं दद्यात्। तत र्रशान्यां गत्वाऽऽचम्य पूर्ववत्कलशं स्थापयित्वा सुप्रतीकनामानं दिग्गजं मङ्गलं च तत्र पूजयित्वा।

एहोहि विश्वेश्वर निस्नश्चलकपालखट्वाङ्गधरेण सार्द्धम् । लोकेन यहेश्वर यहसिद्धच गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ।।

ईशानेहागच्छेह तिष्ठेति तमावाद्य तमीशानिमिति सम्पूज्य श्वेतां सर्ववर्णो वा पताकां ध्वजं चाभित्वा देवसवितरित्युच्छिद्धत्य । वृषारूढं वरदित्रश्लयुतदित्त्ववामहस्तद्वयं त्रिनेत्रं स्फटिकः वर्णमीशानं ध्यात्वा— ष्ट्रपस्कन्धसमारूढं श्रूलहस्तं त्रिलोचनम् । श्रावाहयामि यज्ञेऽस्मिन्यूजेयं मतिगृह्यताम् ॥ सर्वाधिपो महादेव ईशानः शुक्क ईश्वरः । श्रूलपाणिविरूपात्तस्तस्मै नित्यं नमो नमः ॥ इति नत्वा—

साङ्गायेशानायैतं माषमक्तविलं समर्पयामीति विलं दद्यात्। तत श्राचम्य ईशानपूर्वयोर्मध्ये गत्वा पूर्ववत्कलशं संस्थाप्य श्रनन्तं पूजयेत्।

एहोहि पातालघरामरेन्द्रनागाङ्गनाकित्ररगीयमान । यच्चोरगेन्द्रामरलोकसङ्घेरनन्त रच्चाध्वरमस्मदीयम् ॥

भो श्रनन्त इहागच्छेह तिष्ठेति साङ्गमनन्तमावाह्यायं गौरिति-स्योना सम्पूच्य पृथिवीति मेघवर्णां श्वेतां वा पताकां ध्वजं चायं गौरित्युच्छित्य । श्रनन्तशयनासीनं फणासतकमिण्डतं । पद्म-शङ्क्षधरोध्वीघोदित्तणकरद्वयं चक्रगदाधरोध्वीघो वामकरद्वयं नीलवर्णमनन्त ध्यात्वा—

योऽसावनन्तरूपेण ब्रह्माएडं सचराचरम् । पुष्पवद्धारयेन्मृप्तिं तस्मै नित्यं नमो नमः ॥ इति नस्वा—

साङ्गाय सपरिवारायानन्तायैतं माषभक्तवितं समर्पयामीति विति दद्यात्। तत आचम्य। रूपनारायणमते तु नैऋत्यपश्चिमयोर्मध्यै गत्वा पूर्ववत्कलशस्थापनं ऋत्वा।

एहोहि सर्वाधिपते सुरेन्द्र लोकेन सार्द्धे पितृदेवताभिः। सर्वस्य धाताऽस्यमितप्रभावो विशाध्वरं नः सततं शिवाय ॥

भो ब्रह्मिन्नहागच्छेह तिष्ठेति ब्रह्माणमावाद्य ब्रह्मजङ्गानमिति सम्पूज्य। रक्तां पताकां घवजं च ब्रह्मजङ्गानमित्युच्छित्य। चतुर्भुखं हंसारूढमन्तमालाकुशमुष्टिघरोध्वांघो दिन्नणकरद्वयं स्नुवकमण्डलु-घरोध्वांघोवामकरद्वयं शमश्रुलं जिंदलं लम्बोदरं रक्तवर्णं ब्रह्माणं घ्यात्वा— पद्मयोनिश्रतुर्मूर्तिर्वेदावासः पितामहः । यज्ञाध्यत्तरचतुर्वेकत्रस्तस्मै नित्यं नमो नमः ॥ इति नत्वा ।

साङ्गाय सपरिवाराय ब्रह्मणे पतं माषभक्तविलं समर्पयामीति विलं द्यात् । रूपनारायणमते नैऋत्यपश्चिमान्तरालेऽनन्तविल्दान्मीशानपूर्वान्तराले ब्रह्मपूजाविल्दानं चेति । तत श्चाचम्य मण्डप-मध्येऽत्युच्चदग्डो दशहस्तदीर्घस्तिहस्तविस्ततः पश्चहस्तविस्तारो वा महाध्वजः किक्किण्यादियुक्तस्स इन्द्रस्य वृत्त इति स्थाप्यः । तत्रैव ब्रह्मपूजनं च । ततो मण्डपषोडशस्तमभेषु सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः । वंशेषु किन्नरेभ्यो नमः । पृष्ठे पन्नगेभ्यो नम इत्यर्चयेत् । ततः पूर्व-भागे उपलित्तभूमाञ्चपविश्य—

त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च।

ब्रह्मविष्णुशिवैः सार्द्धे रत्नां कुर्वन्तु तानि मे ॥१॥
देवदानवगन्धर्वा यत्तरात्तसपन्नगाः ।

न्रष्टपयो मनवो गावो देवमातर एव च॥२॥
सर्वे ममाध्वरे रत्नां प्रकुर्वन्तु ग्रुदान्विताः।
ब्रह्मा विष्णुश्र रुद्रश्र त्रेत्रपालगणैः सह॥३॥
रत्नन्तु मण्डपं सर्वे झन्तु रत्नांसि सर्वतः। इति पठित्वा।

त्रैलोक्यस्थेभ्यः स्थावरेभ्यो भूतेभ्यो नमस्त्रैलोक्यस्थेभ्यश्चरेभ्यो भूतेभ्यो नमः । ब्रह्मणे विष्णवे शिवाय देवेभ्यो दानवेभ्यो गन्धवेभ्यो राज्ञेंस्यो राज्ञेंस्यः पन्नगेभ्य ऋषिभ्यो मनुष्येभ्यो गोभ्यो देवमातृभ्यो नमः । इति प्रत्येकं सम्पूज्य भूमौ माषभक्तविलं दद्यात् । ततो यजमानः सर्वेन्द्रः तिवैभिः सह प्राग्हारेण मण्डणं प्रविश्य दिल्लाहारपश्चिमदेशे उपविश्य गुर्वादयो यथाविहितं कर्म कुरुष्वमिति वदेत् । प्रतिकुण्डमेकेकः कलश ऋत्विग्नः स्थाप्य इति केचित् । गुरुणा स्थाप्य इत्यन्ये । ततो ऋग्वेदादिक्रमात्प्रागादिकुण्डेषु ऋत्विजोऽनिन स्थापयेगुः । ततो गुरुर्यजमानान्वितो ग्रहवेद्यां सर्वतोभद्रे मण्डल-देवताः स्थापयेविति पितामहचरणाः ।

यथा—अद्येहेत्यादि मण्डलदेवतास्थापनं कारण्य इति सङ्कल्प स्थापयेत्॥ तत्र मध्ये ब्रह्माणं॥ ब्रह्मयद्यानं गौतमो वामदेवो ब्रह्मा तिष्टुप् स्थापने पूजने च विनियोगः॥ प्यमुत्तरत्र॥ ॐ ब्रह्मयद्यानी १॥ तत उदीचीमारभ्य वायव्यपर्यन्तं कुवेरादान्वाय्वन्तानष्टो लोकपा-लान् तत्राप्यायस्व गौतमः सोमो गायत्री ॥ ॐ आप्यायस्व०॥ २॥ अभित्वाजीर्गतः शुनःशेप ईशानो गायत्री०॥ ॐ अभित्वा देवसवितः ॥ ३॥ इन्द्रं वो मधुछन्दो इन्द्रो गायत्री०॥ ॐ इन्द्रो वो पश्यत ॥ ४॥ अग्नि काण्वो मेधातिथिरिय्यर्गायत्री०॥ ॐ अग्नि दृतं वृणीमहे०॥ १॥ अग्नि काण्वो मेधातिथिरिय्यर्गायत्री०॥ ॐ अग्नि दृतं वृणीमहे०॥ १॥ यमाय सोमं यमो यमोऽनुष्ट्रप्॥ ॐ यमाय सोमं०॥ ६॥ मोषुणो घोरः कण्वो निम्नृतिर्गायत्री०॥ ॐ मोषुणः॥ ७॥ तत्त्वायामि शुनःशेपो वरुणस्त्रिष्टुप्॥ ॐ तत्त्वायामि०॥ ६॥ वायुसोममध्येऽष्टी

पूर्वमिनिस्थापनं तत्पश्चाद्त्र सर्वतोभद्रस्थापनम् । तद्रनन्तरमिनस्थापनिम-ति क्रमः। यजुर्विदानां तु सर्वतोभद्रस्थापनम् ॥ ततो प्रहवेद्यां सर्वतोभद्रमण्डलं विकिष्य यजमानान्वितो श्राचार्यौ प्रहवेद्यां सर्वतोभद्रमण्डले देवताः स्थापयेत् । तद्यथा ॥ ब्रह्मयज्ञानिमिति प्रजापित ऋषिः त्रिष्टुप्छंदः ब्रह्मा देवता ब्रह्मस्थापने विनियोगः ॥ ॐ ब्रह्मयज्ञानं० कर्णिकायां ब्रह्माणम्० ॥१॥ वयर्ठः सोमेत्यस्य बंधूक ऋषिर्गायत्री छन्दः सोमो देवता सोमस्थापने विनियोगः ॥ ॐ वयठं सोमेति उत्तरे वाष्यां ॥२॥ तमीशानमित्यस्य गौतम ऋषिः जगती छन्दः ईशानी देवता ईशान-स्थापने विनि ।। ७० तमीशानं । ईशान्यां खण्डेन्द्री ईशानं ॥३॥ त्रातारमिन्द्रमि-त्यस्य गर्ग ऋषि त्रिष्टुष्छन्दः इन्द्रो देवता इन्द्रस्थापने विनियोगः॥ ॐ त्रातार-मिन्द्र० पूर्वे वाष्यां इन्द्रं० ॥ ४ ॥ त्वन्नो ऽग्रग्ने तव देवेत्यस्य हिरएयस्त्रप आङ्किरस ऋषिः जगती छन्दः श्रम्निर्देवता श्रम्निस्थापने विनियोगः॥ ॐ त्वन्नो ऽम्रग्ने तव॰ श्राग्नेयां खण्डेन्द्री अग्नि॰ ॥ १ ॥ सुगन्तु पन्थामित्यस्य प्रजापति ऋषिः त्रिष्ट्रप छन्दो यमो देवता यमस्यापने विनियोगः ॥ ॐ सुगन्तु पन्था॰ दक्षिणे वाष्यां यमं ।। ६ ॥ श्रमुन्वन्तम इत्यस्य प्रजापति ऋषिः त्रिष्टुप् छन्दः निऋतिदेवता निऋतिस्थापने विनियोगः । ॐ श्रमुन्वन्तम० नैऋत्यां खण्डेन्दौ निऋत्ति ।। ७ ॥ तत्त्वायामीत्यस्य श्चनःशेप ऋषिः त्रिष्टुष्छन्दः वहणो देवता वरुणस्थापने विनियोगः ॥ ॐ तत्त्वायामि० पश्चिमे वाष्यां वरुणं ० ॥ ८ ॥ आनो नियुद्धिरित्यस्य प्रजापति ऋषिः त्रिष्टुष्छन्दः वायुर्देक्ता वायुस्थापने विनियोगः॥ 🕉 म्रानो नियुद्धिः वायव्यां खण्डेन्द्री वायुं० ॥ ९ ॥ वसोः पवित्रमसीत्यस्य

वस्त ज्यया अत्र मैत्रावरणो वशिष्ठो वसवित्रस्तुप्॥ ॐ ज्यया अत्र०॥१०॥ सोमेशानमध्ये पकादशस्त्रान्॥ आरुद्रासः श्यावाश्त्र पकादशस्त्राः जगती०॥ ॐ आ सदा सः॥११॥ ईशानेन्द्रमध्ये द्वादशास्त्रियान्॥ त्यान्तुसां मदोमत्स्यो द्वादशास्त्रिया गायत्री॥ ॐ त्यान्तु च्वित्रयान्॥१२॥ इन्द्राञ्चिमध्येश्विना राह्नुगणो गौतमोश्विनातुष्णिक्॥ ॐ अश्विनावर्त्तिः॥१३॥ अश्वियममध्ये विश्वेदेवानस्येश्वान् ॥ अमासोमभुद्यन्दांसि विश्वेदेवा गायत्री ॐ मासः॥१४॥ यमनिऋतिमध्ये सप्त यत्तान् । अभित्यं वामदेवः सप्त यत्ताः प्रकृतिः। अभित्यं देवं सवितारमोणयोः कविकतुमचीमि सत्यसवं रत्नधामभित्रियं मितं कविम। अर्ध्वायस्या मितभां श्रदिद्युत्तस्योमिन्नि हिरण्यपाणिरिममीत सुकृतः कृप श्वः॥१४॥ निऋतिव्यस्योमिन्नि हिरण्यपाणिरिममीत सुकृतः कृप श्वः॥१४॥ निऋतिव्यस्यां गौः ॥१६॥ वस्णवायुमध्ये गन्धर्वाप्सरसः। अप्सरसामितस्य श्रद्धां गौः॥१६॥ वस्णवायुमध्ये गन्धर्वाप्सरसः। अप्सरसामितस्य ऋष्वश्वश्चो गन्धर्वाप्सरसोऽनुष्दुप्। ॐ अप्परसां गन्धर्वाः

गौतम ऋषिः जगती छन्दः वसवो देवता वसुस्थापने विनियोगः ॥ ॐ वसोः पवित्र वायुसोमयोर्मध्ये भद्रे अष्टवसूत् ॥ १० ॥ नमस्ते रुद्र इत्यस्य परमेष्ठो ऋषिः गायत्रीखन्दः रुद्दो देवता रुद्धस्थापने विनियोगः ॥ ॐ नमस्ते रुद्धः सोमेशानयोर्मध्ये भद्रे एकादशरुद्रान् ॥ ११ ॥ श्रदितिद्यौरित्यस्य प्रजापति ऋषिस्त्रिष्ट्रप छन्द: स्रादित्या देवता द्वादशादित्यस्थापने विनियोग: ॥ ॐ भदितिचौं े ईशाने स्त्योर्मध्ये भद्रे द्वादशादित्यान् ॥ १२ ॥ अश्विना तेजसेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिरनुष्टुष्टन्दः श्रिवनौ देवते अधिनौ स्थापने विनियोगः॥ ॐग्रिधिना तेजसा० इन्द्राज्योर्मध्ये भद्रे श्रश्विनौ० ॥ १३ ॥ विश्वेदेवास ऽत्रागत इत्यस्य परमेष्टी ऋषिः गायत्रीछन्दः विश्वेदेवा देवता विश्वेदेवस्थापने विनियोगः। 🕉 विश्वेदेवास ऽभागत० ॥ श्रशियमयोर्मध्ये भद्गे विश्वेदेवानसिपतृन् ॥ १४ ॥ श्रमित्यं देवमित्यस्य प्रजापति ऋषिः श्रष्टीखन्दः सप्तयक्षो देवता सप्तयक्ष-स्थापने विनियोगः॥ ॐ अभित्यं देवर्ड॰ सविता॰। यमनिऋतिमध्ये महो सप्तयक्षान् ॥ १४ ॥ भृताय त्वेति पराशर ऋषिः विराट् छन्दः नारायको देवता भूत । वा नमोऽस्तु सर्पेश्य इत्यस्य प्रजापित ऋषिनुष्टुप छन्दः सर्पे देवता सपस्थापने विनियोगः ॥ व्य भूताय त्वा ।। वा ॐ नमोऽस्तु सर्पेभ्यो• निऋतिवरुणयोर्मध्ये भद्रे भूतनागान् वा सर्पान् ॥ १६ ॥ गन्धर्वस्त्वेति गौतम ऋषिः द्विपदा विराट्छन्दः गन्धवा देवता गन्धर्वस्थापने विनियोगः॥ णाम् ॥१७॥ ब्रह्मलोममध्ये स्कन्दनन्दीश्वरश्लमहाकालान् ॥
कुमारस्कन्दिख्डिप् ॥ ॐ कुमारं माता० ॥१८॥ ऋषभमृषभो
वैराजो ऋषभोऽनुष्टुप्।ॐ ऋषभं मा॥१६॥ ब्रह्मशानमध्ये दत्तादीन् सप्त । श्रादितिलोक्यो बृहस्पतिर्दक्षोऽनुष्टुप्। ॐ श्रदितिऽर्द्धं जिन्छः ॥२०॥२१॥ ब्रह्मेन्द्रमध्ये दुर्गा विष्णुं च।तामग्नवर्ण्या सीमरिर्दुर्गा त्रिष्टुप्। ॐ तामग्निवर्णा॥२२॥ इदं विष्णुः
काएवो मेधातिथिर्विष्णुर्गायत्रो॥ ॐ इदं विष्णुः॥२३॥ ब्रह्माम्येयमध्ये स्वधाम् । उदीरतां शङ्कः स्वधा त्रिष्टुप्। ॐ उदीरतां
स्नृताः ॥ २४॥ ब्रह्मयममध्ये मृत्युरोगान् । परं मृत्योः
सन्तुताः ॥ २४॥ ब्रह्मवरुण्मध्ये श्रपः॥ शन्नो वरीषसिधुद्वीप
श्रापो गायत्री॥ ॐ शन्नो देवीः ॥ २०॥ ब्रह्मवायुमध्ये महतः॥

🦥 गन्धर्वस्त्वा० वरुणवायोर्मध्ये भद्गे गन्धर्वाप्तरसः॥ १७॥ यदकन्देत्यस्य भौतध्यदीर्घतमास्कन्द ऋषिः त्रिष्टुष्छन्दः स्कन्दो देवता स्कन्दस्थापने विनि-बोगः ॥ ॐ यदक्रन्दः० ब्रह्मसोममध्ये वाध्यां स्कन्दं० ॥ १८ ॥ श्राद्युः शिशाने-स्यस्य अप्रतिरथ ऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः इन्द्रो देवता नन्दीइवरस्थापने विनियोगः ॥ 🕉 आशुः ॥ स्कन्दोत्तरे नन्दीइवरं ।॥ १९ ॥ तत्रीव 🕉 कार्षिरसीति शूलं तथा महाकाछं ।।। २०॥१ १॥ अदिति चौरित्यस्य दक्ष ऋषिः श्रनुष्टुण्टन्दः दक्षादि-संसगणो देवता दक्षादि सप्तगणान्स्थापने विनियोगः । ॐ श्रदितिचौं विम्रो शाममध्ये श्रंसळायां दक्षादिससगणान् ॥ २२ ॥ अम्बेऽअम्ब इत्यस्य प्रजापित ऋषिः अनुष्टुष्छन्दः दुर्गादेवता दुर्गास्थापने विनियोगः ॥ ॐ श्रम्बेऽ-अम्बिके० ॥ ब्रह्मेन्द्रमध्ये वाष्यां दुर्गा० ॥ २३ ॥ इदं विष्णुरित्यस्य मेघातिथि महिषः गायत्रीछन्दो विष्णुदेवता विष्णुस्थापने विनियोगः। ॐ इदं विष्णु० अभ्विकः पूर्वे विष्णुं ॥ २४ ॥ उदीरता इत्यस्य शङ्ख ऋषिक्विष्टुण्डन्दः पित्रो-वैंवता पित्रास्थापने विनियोगः। ॐ उदीरता० ब्रह्मागिनमध्ये श्रृङ्खळायां पितृन् ॥ २५ ॥ परं मृत्यो इत्यस्य संकुशिकः ऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः मृत्युर्देवता मृत्युस्था-पने विनियोगः ॥ ॐ परं मृत्यो॰ ॥ ब्रह्मयममध्ये वाष्यां मृत्युरोगान् ॥ २६ ॥ गयानान्त्वा इत्यस्य शीनक ऋषिर्जगती छन्दो गणपतिर्देवता गणपत्यास्थापने विनियोगः ॥ ॐ गणानाम्स्वा • ब्रह्मानिऋतिमध्ये श्रृङ्ख्यायां गणपति ॥ २०॥ शामी देवीदित्यस्य दश्यथर्वण ऋषिः गायत्रीक्रम्दः आपी देवता ऋषां हथापने

गोत्र भौम०॥ ३॥ तत ईशान्ये वाणाकारे उदङ्मुखं बुधं पीतपुष्पास्तौरुदुबुध्यध्वं बुधः सौम्यो बुधिकिष्टुप् मगधदेशोद्भव श्रात्रेयसगोत्र बुव॥ ४॥ तत उत्तरतो दोर्घचतुरस्ने उदङ्मुखं बृहस्पतिं
पीतपुष्पाचतैवृहस्पते गृत्समदो बृहस्पतिस्त्रिष्टुप् सिंधुदेशोद्भव
श्रांगिरसगोत्र बृहस्पते०॥ ४॥ ततः पूर्वे पञ्चकोणे प्राङ्मुखं ग्रकं
ग्रुक्तपुष्पाचतैः ग्रकः पाराशरः ग्रुको द्विपदा विराट् ॥ भोजकटदेशाद्भव भागवसगोत्र ग्रुकः ॥ ६॥ ततः पश्चिमे धनुषि मत्यङ्मुख ग्रानं कृष्णपुष्पाचतैः श्रमग्निरिरंविद्धिः शनिरुष्णिक् सौराष्ट्रत
काश्यपगोत्र ग्रनैश्चर ॥ ७॥ ततो नैत्रुत्ये सूर्णकारे द्विणामुखं
राहुं कृष्णपुष्पाचतैः कयानो वामदेवो राहुर्णयत्री राह्वावहने०॥
राद्धिनापुरोद्भव पैठीनिससगोत्र राह्वो॥ ८॥ ततो वायव्ये ध्वजा-

द्भव भारद्वाजसगोत्र रक्तवर्ण भौम इहागच्छेइ तिष्ठ दक्षिणदके व्यक्कुले रक्तमंडले दक्षिण्मुखं भौमं रक्तपुष्पाक्षतैः पूजयेत् ॥ ३ ॥ ॐ उदुबुध्यस्वाम इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः बुधो देवता बुधस्थापने विनियोगः ॥ ॐ वदुबुध्यस्वाग्ने० क भूर्भुवः स्वः मगधदेशोद्धव आत्रेयसगीत्र पीतवर्ण बुत्र इहागच्छेह तिष्ठ ईशानदुळे वाणाकृतौ पीते चतुरंगुळे मंडळे वदङ्मुखं बुधं पीतपुरपाक्षतैः पूज-येत् ॥ ४ ॥ बृहस्वते अतीत्यस्य गृतसमद् ऋषिः त्रिष्टुष्छन्दः भूभु<sup>°</sup>वः ૐ ॐ बृहस्पते० **बृहस्**वतिस्थापने विनियोगः 11 पीतवर्ण गुरो इहागच्छेह तिष्ठ सिन्धुदेशोद्भव आङ्गिरसगोत्र दीर्घचतुरस्रे पीतवर्णषढङ्गुलमण्डके उदङ्मुखं बृहस्पतिं पीतपुष्पाक्षतैःपूजयेत् ॥५॥ अञ्चात्परिस्तृतस्य अश्विसरस्वतीन्द्रा ऋषयः श्रतिजगतीछन्दः शुक्रो देवता शुक्र-स्थापने विनियोगः ॥ ॐ प्रकात्परिस्तृतः ॥ ॐ भूभु वः स्वः भोजइटदेशोद्धव भागंवसगोत्र शुक्कवर्ण शुक्र इहागच्छेह तिष्ठ पूर्वद्छे पञ्चास्ने नवांगुले मण्डके प्राक्ष्युक्षं शुक्रं शुक्रपुष्पाक्षतैः पूजयेत् ॥ ६ ॥ शक्तो देवोरित्यस्य दृष्पकाथर्वण ऋषिः गायत्राछन्दः शनिर्देवता शनिस्थापने विनियोगः ॥ ॐ शस्रो देवी • ॐ भूभु वः स्वः सीराष्ट्रदेशोद्भव कश्यपगोत्र कृष्णवर्ण शनैश्वर इहागच्छेह तिष्ठ पश्चिमे द्वचङ्गुलमण्डले कृष्णवर्णे धनुषाकृतिमण्डले प्रत्यङ्मुखं शनि कृष्णपुष्पा-क्षतैः पूजयेत् ॥ ७ ॥ कपानिश्चत्र इत्यस्य वामदेव ऋषिः गायत्रीछन्दः राहुर्देवता राहस्थावने विनियोगः ॥ ॐ कयानश्चित्र० ॥ ॐ भूर्भुनः स्वः राठिनसदेशोज्ञव वैदिनस्तारेत्र कृष्णवर्ण राह्ये इहागच्छेह तिष्ठ नैक्ट्ये शूर्याकारे कृष्णवर्णे द्वादशां-मुख्याण्याले दक्षिणश्चर्या राहुं कृष्णा प्रवासतीः पूज्येतः ॥ ४ ॥ वे हैं कृपवं निश्मस्य

कारे दित्तगामुखं केतुं धूम्रपुष्पास्तौः केतुं मधुच्छन्दाः केतवो गायत्री अन्तर्वेदिसमुद्भवा जैमिनिसगोत्रा केतवो इहागच्छेह तिष्ठेति ॥ ६ ॥ श्रादित्यामिमुखाः श्रथाधिदेवताः श्वे तपुष्पाचतैः सर्वे वा क्रमात्स्यर्थादीनां दिच्णतः स्थाप्याः ॥ त्र्यम्बकं वशिष्ठो रुद्रोऽनु रुदुप् विनियोगः सर्वत्र क्षेयः ॥ ज्यम्वकं ॐ भूभुंवः स्वः ईश्वरं ॥ १ ॥ गौरीर्मिमाय दीर्घतमा उमा जगती सोमदत्त्रिणे ॥ २॥ यदकन्दो दीर्घतमा स्कन्दस्त्रिष्टुप् ॥ ३ ॥ विष्णोर्दीर्घतमा विष्णुस्त्र-ष्टुप्॥ ४॥ ब्रह्मयज्ञानं गौतमो वामदेवो ब्रह्मा त्रिष्टुप्॥ ४॥ इन्द्रे वो मुञ्जेब्बन्दा इन्द्रो गायत्रो ॥६॥ यमाय स्रोमं यमोऽनुष्टुप॥७॥ मोषुणो घोरः कएवः कालो गायत्री ॥ ८॥ उषो वाजं प्रस्करवश्चित्र-गुप्तो बृहती ॥ ६ ॥ एवमेव शुक्कपुष्पात्ततैर्प्रहाणां वामे मन्त्रान्ते व्याहः-तीरिहागच्छेह तिष्ठेति चोक्त्वा प्रत्यधिदेवताः स्थापयेत् ॥ श्रप्ति काल्वो मेघातिथिरग्निर्गायत्री॥ ॐ अग्निन्दूतं०॥१॥ अप्सु मे मेघा-तिथिरापोऽनुषुप् ॥२॥ स्योना मेघातिथिर्भूमिर्गायत्री ॥३॥ इदं विष्णुर्मेघातिथिविष्णुर्गायत्री ॥ ४ ॥ इन्द्रश्रेष्ठानि गृत्समद इन्द्रस्त्रि-

मधुच्छन्दा ऋषिः श्रनिहक्ता गायत्री छन्दः केतुर्देवता केतुस्थापने विनियोगः ॐ केतुं क्रएवस्न ॐभूर्भुवः स्वः भवन्तिदेशोद्भव जैमिनिसगोत्र चित्रवर्ण केतो इहा-गच्छेह तिष्ट वायव्ये ध्वजाकारे चित्रवर्णे षड्झु छमण्डले दक्षिणमुखं केतुं घूम्रवर्ण-पुष्पाक्षतैः पूजयेत् ॥ ९ ॥ केतूनां बहुत्वेऽपि पूजादौ बहुत्वविशिष्टमेकदेवतात्वम् ॥ सर्वान् भादित्याभिमुखान् स्थापयेदित्युक्तं मान्स्ये॥ श्रथाधिदेवताः सर्वे इवेत-पुष्पाक्षतैः स्थापयेत्पृजयेच ॥ व्यम्बकमिति वशिष्ठ ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः व्यम्बको हद्रो देवता हदस्थापने विनियोगः ॥ ॐ व्यम्बकं यजामहे॰ सूर्यादुत्तरतो रुद् इहागच्छेह तिष्ठेति रुद्धं स्थापयेत् ॥१॥ श्रोश्च तेत्यस्य नारायण ऋषिः त्रिष्टप्छन्दः उमादेवता उमास्थापने विनियोगः॥ ॐ श्रीर्च ते छक्ष्मी • उमेहागच्छेह तिष्ठ दक्षिणे उमाम् ॥ २ ॥ यदकन्देश्य भागवो जमदमि-दीर्घतमावृषी त्रिष्टुप्छन्दः ुस्कन्दो देवता स्कन्दस्थापने विनियोगः॥ ॐ यदक्रन्दः स्कन्देहागच्छेह तिष्ठ भौमदक्षिणे स्कन्दम् ।। ३ ॥ विष्णोरराट् इत्यस्य प्रजापति ऋषिः श्रनुष्टुप्छन्दः विष्णुरेवता विष्णुस्थापने विनियोगः ॥ ॐ विष्णोरराट् मसीत्यारभ्य विष्णवे त्वेत्यन्ते बुधपश्चिमे विष्णोरिहागण्छेह तिष्ठ विष्णुम् ॥ ४॥ श्राब्रह्मन्नित्यस्य प्रजापति ऋषिः यजुः छन्दः ब्रह्मा देवता ब्रह्मस्थापने विनियोगः॥ ॐ ग्राब्रह्मन् गुरोः पूर्वभागे ब्रह्मनिहागच्छेह तिष्ठ ब्रह्माणं ॥ ५॥ सयोषा इन्द्रेत्यस्य गोत्र भीम०॥ ३॥ तत ईशान्ये वाणाकारे उदङ्मुखं बुधं पीतपुष्पा-स्तिरुदुबुध्यध्वं बुधः सीम्यो बुधिस्रिन्दुप् मगधदेशोद्भव आत्रेय-सगोत्र बुत्र॥ ४॥ तत उत्तरतो दोर्घचतुरस्ने उदङ्मुखं बृहस्पतिं पीतपुष्पात्ततेबृहस्पते गृत्समदो बृहस्पतिस्त्रिन्दुप् सिंधुदेशोद्भव आंगिरसगोत्र बृहस्पते०॥ ४॥ ततः पूर्वे पञ्चकोणे प्राङ्मुखं ग्रकं ग्रुक्कपुष्पात्ततैः ग्रुकः पाराशरः ग्रुको द्विपदा विराट् ॥ भोजकट-देशाद्भव भागवसगोत्र ग्रुकः ॥ ६॥ ततः पिश्चमे घनुषि मत्य-ङ्मुख ग्रानं कृष्णपुष्पात्ततैः ग्रमिप्तिरिचितिः शनिरुष्णिक् सौराष्ट्रज काश्यपगोत्र शनैश्चर ॥ ७॥ ततो नैऋत्ये सूर्णकारे दिस्णामुखं राहुं कृष्णपुष्पात्ततैः कयानो वामदेवो राहुर्णायत्री राह्नावाहने०॥ राठिनापुरोद्भव पैठीनसिस्यगोत्र राह्नो॥ ८॥ ततो वायव्ये ध्वजा-

द्भव भारद्वाजसगोत्र रक्तवर्ण भौम इहागच्छेइ तिष्ठ दक्षिणदके व्यक्कुले रक्तमंडले दक्षिणमुखं भौमं रक्तपुष्पाक्षतैः पूजयेत् ॥ ३ ॥ ॐ उदुबुध्यस्वाम इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः त्रिल्टुच्छन्दः बुधो देवता बुधस्थापने विनियोगः ॥ ॐ वदुबुध्यस्वाग्ने० ဖို भूर्मुवः स्वः मगधदेशोद्भव बान्नेयसगोत्र पीतवर्ण बुध इहागच्छेह तिष्ठ ईशानदळे वाणाकृती पीते चतुरंगुळे मंडळे उदङ्मुखं बुधं पीतपुषपाक्षतैः पूज-येत् ॥ ४ ॥ बृहस्पते अतीत्यस्य गृतसमद ऋषिः त्रिष्टुष्छन्दः विनियोगः જેંદ્ર ॐ बृहस्पते० 11 पीतवर्ण गुरी इहागच्छेह तिष्ठ सिन्ध्रदेशोज्ञव आङ्गरसगोत्र दीर्घेचतुरस्रे पीतवर्णषढङ्गुलमण्डके उदङ्मुखं बृहस्पति पीतपुष्पाक्षतैःपूजयेत् ॥५॥ अन्नात्परिस्तुनस्य अश्विसरस्वतीन्द्रा ऋषयः श्रतिजगतीछन्दः शुक्रो देवता शुक्र-स्थापने विनियोगः ॥ ॐ प्रकात्परिस्नुत० ॥ ॐ भूभु वः स्वः भोजइटदेशोद्भव भागवसगोत्र शुक्कवर्ण शुक्र इहागच्छेई तिष्ठ पूर्वद्के पद्मास्ने नवांगुले मण्डके प्राक्ष्मुखं ग्रुकं शुक्कपुष्पाक्षतैः पूजयेत् ॥ ६ ॥ शक्तो देवोरित्यस्य दश्यकाथवंश ऋषिः गायत्राछन्दः शनिर्देवता शनिस्थापने विनियोगः ॥ ॐ शस्त्रो देवी • 🕉 भूभु वः स्वः सौराष्ट्रदेशोद्भव कश्यपगोत्र कृष्णवर्ण शनैश्वर इहागच्छेह तिष्ठ पश्चिमे द्वयङ्गुलमण्डले कृष्णवर्णे धनुषाकृतिमण्डले प्रत्यङ्मुखं शनिं कृष्णपुष्पा-क्षतैः पूजयेत् ॥ ७ ॥ कयानिश्चत्र इत्यस्य वामदेव ऋषिः गायत्रीछन्दः राहुर्देवता राहुस्थावने विनियोगः ॥ ॐ कयानश्चित्र० ॥ ॐ भूर्सुवः स्वः राहिनसर्देशोद्भव वैदिनसतीत्र कृष्णवर्ण राहो इहागच्छेह तिष्ठ नैक्त्त्ये शूर्णकारे कृष्णवर्णे द्वावशां-कुलमण्डले दक्षिणसुसं राष्टुं कृष्ण±ण्याक्षतीः प्रजयेत् ॥ ४ ॥ वेद्र कृपवं निश्मदेव

कारे दित्तणामुखं केतुं धूम्रपुष्पात्ततैः केतुं मधुन्छन्दाः केतवो गायत्री अन्तर्वेदिसमुद्भवा जैमिनिसगोत्रा केतवो इहागच्छेह तिष्ठेति ॥ ६ ॥ श्रादित्याभिमुखाः श्रथाधिदेवताः सर्वे वा श्वे तप्ष्पाचतैः क्रमात्स्योदीनां दिच्णतः स्थाप्याः ॥ त्र्यम्बकं विश्वष्ठो रुद्रोऽनुष्टुप् विनियोगः सर्वत्र क्षेयः ॥ ज्यम्वकं ॐ भूभुंवः स्वः ईश्वरं०े ॥ १ ॥ गौरीर्मिमाय दीर्घतमा उमा जगती सोमदित्त्रेण ॥ २ ॥ यदकन्दो दीर्घतमा स्कन्दस्त्रिष्टुप् ॥ ३ ॥ विष्णोदीर्घतमा विष्णुस्त्र-ष्टुप्॥ ४॥ ब्रह्मयक्कानं गौतमो वामदेवो ब्रह्मा त्रिष्टुप्॥ ४॥ इन्द्रे वो मॅंचुे छुन्दा इन्द्रो गायत्रो ॥६॥ यमाय सोमं यमोऽनुष्टुप॥७॥ मोषुणो घोरः कएवः कालो गायत्री ॥ ८॥ उषो वाजं प्रस्केणवश्चित्र-गुप्तो बृहती ॥ ६ ॥ एवमेव शुक्कपुष्पात्ततैर्प्रहाणां वामे मन्त्रान्ते व्याहः-तीरिहागच्छेह तिष्ठेति चोक्त्वा परयधिदेवताः स्थापयेत् ॥ अग्नि कारवो मेघातिथिरग्निर्गायत्री॥ ॐ श्रग्निन्दूर्त०॥१॥ श्रप्सु मे मेघा-तिथिरापोऽनुषुप् ॥२॥ स्योना मेघातिथिर्मूमिर्गायत्री ॥३॥ इदं विष्णुर्मेघाति थिविष्णुर्गायत्री ॥ ४ ॥ इन्द्रश्रेष्ठानि गृत्समद इन्द्रस्त्रि-

मधुच्छन्दा ऋषिः श्रनिरुक्ता गायत्री छन्दः केतुर्देवता केतुस्थापने विनियोगः ॐ केतुं क्रएवस्व ॐभूर्भुवः स्वः अवन्तिदेशोद्भव जैमिनिसगोत्र चित्रवर्ण केतो इहा-गच्छेह तिष्ठ वायब्ये ध्वजाकारे चित्रवर्णे षडझुङमण्डले दक्षिणमुखं केतुं घूत्रवर्ण-पुष्पाक्षतैः पूजयेत् ॥ ९ ॥ केतूनां बहुत्वेऽपि पूजादौ बहुत्वविशिष्टमेकदेवतात्वम् ॥ सर्वान् भादित्याभिमुखान् स्थापयेदित्युक्तं मात्स्ये॥ श्रथाधिदेवताः सर्वे इवेत-पुष्पाक्षतैः स्थापयेत्पृत्रयेच ॥ व्यम्बकमिति वशिष्ठ ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः व्यम्बको हद्दो देवता हदस्थापने विनियोगः ॥ ॐ व्यम्बकं यजामहे० सूर्यादुत्तरतो हद इहागन्छ्रेह तिष्ठेति रुद्धं स्थापयेत् ॥१॥ श्रोश्च तेत्यस्य नारायण ऋषिः त्रिष्टप्छन्दः उमादेवता उमास्थापने विनियोगः॥ ॐ श्रीइच ते छक्ष्मी • उमेहागच्छेह तिष्ठ दक्षिणे उमाम् ॥ २ ॥ यदकन्देस्य भागवो जमदमि-दीर्घतमावृषी त्रिष्ट्रप्छन्दः ुस्कन्दो देवता स्कन्दस्थापने विनियोगः॥ ॐ यदक्रन्दः स्कन्देद्दागच्छेद्द तिष्ठ भौमदक्षिणे स्कन्दम् । । विष्णोरराट् इत्यस्य प्रजापति ऋषिः श्रजुष्टुप्छन्दः विब्णुरेवता विब्णुस्थापने विनियोगः ॥ ॐ विष्णोरराट् मसीत्यारभ्य विष्णवे त्वेत्यन्ते बुधपश्चिमे विष्णोरिहागण्छेह तिष्ठ विष्णुम् ॥ ४ ॥ श्रानहान्नित्यस्य प्रजापति ऋषिः यजुःखन्दः ब्रह्मा देवता ब्रह्मस्थापने विनियोगः॥ ॐ स्राब्रह्मन् गुरोः पूर्वभागे ब्रह्मनिहागच्छेह तिष्ठ ब्रह्माणं० ॥ ५॥ सयोवा इन्द्रेत्यस्य ष्टुप् ॥ ४ ॥ इन्द्राणीं वृषाकिपिरिद्राणी पिकः ॥ ६ ॥ प्रजापतेि हिरण्यगर्भः प्रजापतिस्त्रिष्टुप् ॥ ७ ॥ श्रायं गीः सापराज्ञी सपर्गगायत्री ॥ = ॥ ब्रह्मयज्ञानं गीतमो वामदेवो ब्रह्मास्त्रिष्टुप् ॥ ६ ॥ ततः
शुक्कपुष्मक्षेतिर्विनायाकादीन् पञ्च गणानान्त्वा गृत्समदो गणपतिज्ञगती ॥ राह्रोकत्तरतो विनायकम् ॥ १ ॥ जातवेदसे कश्यपो
दुर्गा त्रिष्टुप् ॥ शनेकतरतो दुर्गाम् ॥ २ ॥ तव वायवृतस्य ते व्यथ्वश्राङ्गिरसा वायुर्गायत्रीछन्दः ॥ रवेकत्तरतो वायुम् ॥ ३ ॥ पतान्मश्रान्पद्यन्ति साम्प्रदायिकाः ॥ तत्र केषु चिन्मन्त्रेषु मूलं चिन्त्यम् ॥ ४॥
श्रादित्यल्य वत्स श्राकाशो गायत्रो ॥ राह्रोदित्ये श्राकाशम् ॥ ॥
पवी उपायकण्वाश्विनौ गायत्रो ॥ श्राश्विनाविहागच्छतामिह

विश्वामित्र ऋषिः त्रिष्टुण्छन्दः इन्द्रो देवता इन्द्रस्थापने विनियोगः॥ ॐ सयोषा इन्द्रः ग्रुकात्प्राच्यामिन्द्रेहागच्छेह तिष्ठ इन्द्रं ॥ ६ ॥ यमाय त्वा इत्यस्य दध्यङाथर्वण ऋषिः यजुरछन्दः यमो देवता यमस्थापने विनियोगः ॐ यमाय त्वा० शनेराग्नेयभागे यमेहागच्छेह तिष्ठ यमं ।। ७ ॥ कार्षिरसीत्यस्य प्रजापति ऋषिः श्रनुष्टुण्छन्दः काको देवता कालावाहने विनियोगः ॥ ॐ कार्षिरसी० राहोरीशान्यां कालेहागच्डह तिष्ठ कालं ।। ८ ॥ चित्रावसो इत्यस्य यजुर्जगती छन्दः चित्रगुप्तो देवता चित्रगुप्तस्थापने विनियोगः ॥ ॐ चित्रावस्रो स्वस्ति ते० केतोनैंऋत्यां चित्रगुप्तेहागच्छेह तिष्ठ चित्रगुप्तं ॥ ९॥ श्रथ प्रत्यधिदेवतास्थाप-नम् ॥ शुक्कपुष्पाक्षतैरेव महाविदेवतयोर्मध्ये श्रादित्यादिक्रमेण श्रग्न्याद्याः सर्वाः प्रत्यधिदेवताः स्थापयेत् ॥ तद्यथा ॥ अग्निन्दूतमित्यस्य विरुपाक्ष ऋषिर्गायत्री-छुन्दः श्राग्निदेवता श्राग्नस्थापने विनियोगः ॥ ॐ अग्निन्दूतं ० श्राग्ने इहागच्छेह तिष्ठ अग्नि ॥ १ ॥ ग्रापोहिष्ठेत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः गायत्रीखन्दः श्रापो देवता म्म्रपां स्थापने विनियोगः ॥ त्रों त्रापो हिष्टा० श्राप इहागच्छेह तिष्ठे ति आपः ॥ ॥ २ ॥ स्योनापृथिवीत्यस्य मेघातिथि ऋषिः गायत्रीखन्दः पृथिवी देवता प्रथिवी-स्थापने विनियोगः ॥ ओं स्योनापृथियो ॰ पृथिवि इहागच्छेह तिष्ठेति पृथिवीं ॰ ॥ ३ ॥ इदं विष्णुरित्यस्य मेवातिथि ऋषिः गायत्रीछन्दः विष्णुर्देवता विष्णुस्थाः पने विनियोगः॥ श्रों इदं विष्णु । विष्णो इहागच्छेह तिष्ठेति विष्णुं ।॥ ॥॥ इन्द्रं आसां इत्यस्य अप्रतिस्थ ऋषिः त्रिष्टुण्डन्दः इन्द्रो देवता इन्द्रस्थापने े विनियोग: ॥ श्रो इन्द्र ऽभासां० इन्द्रेहागच्छेह तिष्ठेति इन्द्रं० ॥ ५ ॥ ऑ श्रदित्यैरास्नासोत्यस्य दथ्यङाथर्वण ऋषिः यजुम्बिन्दुप् छं ॰ इन्द्राणी देवता हन्द्राणि स्थापने विनियोगः॥ श्रों श्रदित्यै रास्ना० इन्द्राणि इहागरछेह तिष्ठेति

तिष्ठतामिति केतोर्ड् चिणेऽश्विनौ ॥६॥ पतानि विनायकादि स्थानानि विन्तामणौ ॥ विनायकादीन् पञ्च उत्तरत प्रवेति सम्प्रदायः ॥ प्रवं द्वात्रंग्रहेवता इति रूपनारायणादयः ॥ हेमाद्रौ तु लोकपालादीना-मिप सूर्याभिमुखानां दिच्च स्थापनमुक्तम् । तद्यथा ॥ इन्द्रं विश्वो जेता माधुच्छुन्दस इन्द्रोऽनुष्टुप् ॥ इन्द्रेहागच्छेह तिष्ठेति पूर्वे इन्द्रम् ॥१॥ प्रवमुत्तरत्रं ॥ श्रप्तं मेघातिथिरग्निर्गायत्री ॥२॥ यमाय सोमं यमो यमोऽनुष्ट्रप् ॥३॥ मोषुणो घोरः कषवो निर्ऋतिर्गायत्री॥४॥ तत्त्वायामि श्रनःशेपो वरुणस्त्रिष्टुप् ॥४॥ तव वायो व्यश्वोवाङ्गिरसो वायुर्गायत्री॥६॥ सोमो घेनुं गौतमः सोमस्त्रिष्टुप् ॥॥

इन्द्राणीम् ॥ ६ ॥ प्रजापत इत्यस्य हिरण्यार्भ ऋषिः त्रिष्टुप् छन्दः प्रजापति-देवता प्रजापतिस्थापने विनियोगः ॥ ॐ प्रजापतेन त्वं० प्रजापतेहागच्छेह तिष्ठेति प्रजापति० ॥७॥ नमोऽस्तु सर्पेभ्य इत्यस्य प्रजापति ऋषिः श्रनुष्टुप्छन्दः सर्पाः देवताः सर्पस्थापने विनियोगः ॥ ॐ नमोऽस्तु सर्पेभ्यो० ॥ सर्पान्० ॥०॥ ब्रह्मजज्ञानमित्यस्य प्रजापति ऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः ब्रह्मा देवता ब्रह्मस्थापने विनि-योगः ॥ ॐ ब्रह्मजज्ञानं० ब्रह्मन् इहागच्छेह तिष्ठेति ब्रह्माणं० ॥ ९ ॥ उत्पछ-परिमछकारादयस्तु प्रहाणां दक्षिणपाश्चे प्रत्यिषदेवताः स्थाप्या इत्याहुः ॥

श्रथ पञ्चलोकपालानां स्थापनम् ॥ गणानान्त्वेत्यस्य प्रजापित ऋषिः यजुश्छन्दः गणपितदेवता गणपितस्थापने विनियोगः ॥ ॐ गणानान्त्वा० राहोक्तरतः गणपितम्० ॥ १ ॥ श्रम्बे अम्बिके इत्यस्य प्रजापित ऋषिः त्रिष्टुप् छन्दः दुर्गादेवता दुर्गास्थापने विनियोगः ॥ ॐ ब्रम्बेऽश्रम्बिके० शनेक्तरतो दुर्गाम्० ॥ २ ॥ वायो येते इत्यस्य गृत्समद ऋषिर्गायत्रीछन्दः वायुर्वेवता वायुस्थापने विनियोगः ॥ ॐ वायो ये ते० सूर्यादुत्तरतो वायुं० ॥ ३ ॥ घृतं पावान इत्यस्य प्रजापित ऋषिः पंक्तिश्छन्दः श्राकाशो देवता श्राकाशस्थापने विनियोगः ॥ ॐ घृतं घृतपावानः राहोदंक्षिणत० आकाशं० ॥ ॥ यावाङ्कशेत्यस्य मेघातिथि ऋषिः गायत्रीछन्दः श्रश्वनौ देवता श्रिवनौ स्थापने विनियोगः ॥ ॐ यावाङ्कशा० केतोदंक्षिणतः अश्वनौ देवता श्रिवनौ स्थापने विनियोगः ॥ ॐ यावाङ्कशा० केतोदंक्षिणतः अश्वनौ देवता श्रिवनौ स्थापने विनियोगः ॥ ॐ यावाङ्कशा० केतोदंक्षिणतः अश्वनौ० ॥ ५ ॥ एतानि विनायकादिस्थानानि चिन्तामणौ ॥ विनायकादीन् पञ्चोत्तर एवेति सम्प्रदायः ॥ उत्तरतो क्षेत्राधिपति वास्तोष्पतिञ्चाऽऽवाहयेत् ॥ इत्येके ॥ निह स्पशमित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः त्रिष्टुण्छन्दः क्षेत्राधिपतिदेवता क्षेत्राधिपतिस्थापने विनियोगः ॥ ॐ निह

तमीशानं गौतम ईशानो जगती॥ = ॥ सहस्रशीर्षा नारायणोऽनंतोऽ-नुष्टुप्॥ ईशानपूर्वयोर्मध्येऽनन्तम् ॥६॥ ॐ ब्रह्मजङ्गानं गौतमो वामदेवो ब्रह्मा बिष्टुप् ॥ नैऋत्यपश्चिमयोर्मध्ये ब्रह्माणं ॥ १०॥ तत उत्तरे त्तेत्रस्य वामदेवः त्तेत्रपालोऽनुष्टुप्॥ वास्तोष्पते वशिष्ठो वास्तोष्पति-स्त्रिष्टुप् ॥ ततो लत्त्रहोमश्चेदिन्द्रं मित्रमित्यनेन ॥ सामध्वनिश्वरीरस्त्वं बाहुनं परमेष्टिनः ॥ विषपापहरो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ म इत्यनेन चोत्तरे ॥ .गरुत्मन्तमावाह्य रवेः पूर्वे शेषं सोमस्यात्रे वासुकिं भौमात्रे तत्तकं बुघोत्तरे कर्कोटकम् ॥ वृहस्पतेरत्रे पद्मं शनिपश्चिमे शङ्खपालं राहोः पुरः कम्बलं केतोः पुरः कुलिकम् ॥ पोठात्प्राच्यामिश्वन्यादि-सप्तनक्षत्राणि ॥ विष्कुंम्भादि-सप्तयोगान् ॥ वव वालवकरणे ॥ सप्त-द्वीपानि ऋग्वेदञ्च ॥ दक्षिणे पुष्यादि सप्तनत्तत्राणि ॥ भृत्यादिसप्त-योगान् ॥ कीलव-तैतिलकरणे ॥ सप्तसागरान् ॥ यजुर्वेदश्च पश्चिमे स्वात्यादिसप्तनत्त्रत्राणि ॥ वज्रादिसप्तयोगान ॥ गर-वणिजकरणे ॥ सप्तपातालानि सामवेदञ्च॥ उत्तरे-श्रभिजिदादिसप्तनच्चत्राणि साध्यादिषट्योगान् विष्टिकरणम् ॥ भूरादीन् सप्तलोकान् । अथर्ववेद-ञ्च ॥ वायव्ये भ्रुवं सप्तर्षीश्च ॥ श्रथ यथावकाशं गङ्गादिसप्तसिरितः॥ सप्तकुलाचलान् ॥ अष्टी वस्न् ॥ द्वादशादित्यान् ॥ पकादश रुद्रान् ॥ मरुतः ॥ षोडशमातः ॥ षडृत्न् ॥ द्वादश मासान् ॥ द्वे त्रयने ॥ पञ्च-दश तिथीन् ॥ षष्टिसम्बर्सरान् ॥ सुपर्णान् ॥ नागान् ॥ सर्पान् ॥ यज्ञान् ॥ गन्धर्वान् ॥ विद्याधरान् ॥ श्रष्टिरसः ॥ रज्ञांसि ॥ भृतानि ॥ मजुष्यानिति॥ कोटिहामे तु वेदेः पूर्वे ब्रह्माणं मध्ये जनार्दनम्॥ पश्चिमे रुद्रम् ॥ उत्तरे स्कन्द्मित्येतानव्यावाहयेत्॥ ततोऽस्मिन न्कर्मीण देवतापरिग्रहार्थम् अन्वाधानं करिष्य इति सङ्कल्प्य चक्षुषी आज्येनेत्यन्तमुक्त्वा सूर्यादीन्त्रहादीन् समिदान्यनैवेद्यशेषचरुभिरः ष्ट्रसहस्राष्ट्रशताष्टाविंशत्यष्टान्यतमसंख्ययाऽधिदेवताषत्यधिदेवतावि-नायकादीन लोकपालांश्चामुकसंख्यया एतैरेव द्रव्यैः चेत्रपाला-दींश्रामुक्तसंख्यया सूर्याद्याः सर्वा देवता दशसंख्याकतिलाहुतिभिः

त्रिष्टुप्छन्दः वास्तोष्यतिर्देवता वास्तोष्यतिस्थापने विनियोगः ॥ ॐ वास्तो-ष्यते वास्तोष्यति इहागच्छेह तिष्ठ ॥ ७ ॥ एवं द्वात्रिशदेवता हत्युक्त्वा नारा-यणादयः ॥ हेमादौ तु दिक्यालानामिय सूर्याभिमुखानां दिश्च स्थापनायुक्तं ते चाष्ट्री स्थाप्याः ॥ देहति केचित् ॥ दशेति मक्ष्नरते इति ॥ श्रथ दिक्पाल- श्रीं वायुं सूर्यं प्रजापितं च प्रत्येकं पश्चिवंशितशतिमताभिस्तिलाहुतिभिर्यद्ये॥ लक्षहामे पश्चिवंशितसहस्रमिताभिः॥ कोटिहोमे पश्चिवंशितलहस्रमिताभिः॥ कोटिहोमे पश्चिवंशितलहस्रमिताभिः॥ कोटिहोमे पश्चिवंशितलहस्रमिताभिः॥ कोटिहोमे पश्चिवंशितलहस्रमिताभिः। ततः शेषेण स्विष्टकृतमित्यादियद्य इत्यन्तमुक्त्वा समिद्द्यमाधाय निर्वापादिक्रमेण गुडोदनादीन् नवान्यांश्च शुद्धांस्रयोविंशितिमिति द्वात्रिंशत् नवेश्व वा चरून् श्रपित्वा पश्चिमः षोडशिमवेंपिचारैः सम्पूज्येत्॥ तत्र वस्त्राणि ग्रहवर्णात्॥ स्विभौमयो रक्तवन्दनम्॥ चन्द्रशुक्रयोः श्वेतचन्दनं॥ बुधगुवोः कुङ्कमयुतम्॥ श्वान-राहु-केत्नां हृष्णागुरुं पृष्पाणि तत्तद्वर्णाति॥ धूपास्तु सङ्क्षक्षीनिर्यासम्॥ धृताक्तयवाः॥ रालमगरुं सिह्नकं विव्वयुतागुरुं गुग्गुलम्॥ लाल्ताक्रमादुगायत्र्या दत्वा उद्दीप्यस्वेति सर्वेभ्यो दीपान् दत्वा गुडोदनं पायसं नीवारीदनं चीरयुत्वपाष्टिकोदनं दृध्योदनं घृतौदनं तिलमाषयुतमोदनं मांसीदनं चित्रौदनं चक्रमान्निवेदयेत्॥ श्रधिदेवतादिभ्यस्तु वासोगन्धपुष्पाणि श्वेतानि॥ गुग्गुलुर्घूयः॥ नैवेद्यं पायसादियथालाभम्॥ सूर्यादिद्वात्रिंशतामन्येषां च सर्वेषां पूजापदार्थानुसमयेनैव॥

ततो वेदीशान्यां कलशं संस्थाप्य तत्र वरुगमावाह्य सम्पूज्याभि-मन्त्रयेत्॥ तद्यथा —

कलशस्य मुखे विष्णुः कएठे रुद्रः समाश्रितः । मूछे तत्र स्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणाः स्मृताः ॥१॥ कुत्तौ तु सागराः सप्त सप्तद्वीपा वसुन्धरा । ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथवणः ॥२॥

देवतास्थापनम् ॥ त्रातारमित्यस्य गर्गं ऋषिः त्रिष्टुण्छन्दः इन्द्रो देवता इन्द्रस्थापने विनियोगः ॥ ॐ त्रातारमिन्द्र० प्रास्यां इन्द्रं० ॥ १ ॥ त्वक्षो स्र ने
इत्यस्य हिरययस्तूप आङ्गिरस ऋषिः त्रिष्टुण्छन्दः स्रप्निर्देवता स्रमित्थापने
विनियोगः ॥ ॐ त्वक्षो स्रग्ने० श्राग्नेयामप्ति० ॥ २ ॥ सुगन्नु पन्धामित्यस्य प्रजापति ऋषिः त्रिष्टुण्छन्दः यमो देवता यमस्थापने विनियोगः ॥ ॐ सुगन्नु पन्धां०
दक्षिणस्यां यमं० ॥ ३ ॥ स्रमुन्वन्तम इत्यस्य प्रजापति ऋषिः त्रिष्टुण्छन्दः निर्द्रते
तिर्देवता निर्द्रतिस्थापने विनियोगः ॥ ॐअसुन्वन्तम० नैर्मत्यां निर्द्रति ।।।।।
ॐ तत्त्वायामीत्यस्य स्रुनःशेष ऋषिः त्रिष्टुण्डन्दः । वरुणो देवता वरुणस्थापने
विनियोगः ॥ तत्त्वायामि० प्रतीक्यां वरुणः ॥५॥ भागो नियुङ्गिरिश्वस्य प्रजापित

श्रङ्गेश्र सहिताः सर्वे कलशं तु समाश्रिताः श्चत्र गायत्री सावित्री शान्तिः पुष्टिकरी तथा ॥३॥ दुरितच्चयकारकाः श्रायान्त् यजमानस्य महोदधौ देवदानवसम्वादे मध्यमाने **उत्पन्नोऽसि तदा क्रुम्भ विधृतो विष्णुना स्वयम्** । त्वत्तीये सर्वतीर्थानि देवाः सर्वे त्विय स्थिताः ॥४॥ त्विय तिष्ठन्ति भूतानि त्विय प्राणाः प्रतिष्ठिताः । शिवः स्वयं त्वमेवासि विष्णुस्त्वं च प्रजापतिः ॥६॥ श्रादित्या वसवी रुद्रा विश्वेदेवाः सपैतृकाः। त्विय तिष्ठन्ति सर्वेऽपि यतः कामफलपदाः ॥७॥ त्वत्पसादादिमं यज्ञं कतुँमीहे जलोद्भव! सानिध्यं कुरु मे देव ! पसन्नो भव सर्वदा ॥ 🗷 ॥ इति॥ ततः फलपुष्पमालाशोभितं वितानं बृहस्पतिदैवतं सुर्यादिभ्य इदं न ममेत्युत्सुज्य प्रहवेद्युपरि बभ्नीयात्। ततश्चर्वासाद्नाद्याज्य-भागान्ते यजमानः सर्वा आवाहिताः स्यादिदेवताः अग्निवायु-सर्यंप्रजावतीं श्रोहिश्य समिदाज्यचरितलान् होतुमुत्सूजे न ममेति त्यजेत् । ततो ऋत्विजः समिदाज्यनैवेद्यशेषचरून् क्रमेणावाहित।भ्यो देवताभ्योऽष्टसहस्राद्यन्यतमसंख्यया समस्तव्याहृतिभिर्वस्यमाणत-

ऋषिः त्रिष्टुण्छंदः निर्ऋतिदेवता निर्ऋतिस्थापने विनियोगः ॥ ॐ आनो नियुद्धिक वायव्यां वायुं ।। १ ॥ वयर्ड सोमेत्यस्य बंधु ऋषि गायत्री छन्दः सोमो देवता सोम-स्थापने विनियोगः ॥ ॐ वयर्ड सोम० ॥ उदीच्यां सोमं । ॥ ॥ तमीशान इत्यस्य गीतम ऋषिः जगतीछंदः ईशानो देवता ईशानस्थापने विनियोगः ॥ ॐ तमीशानं ईशान्यां ईशानं ॥ ८ ॥ अस्मे इद्धा इत्यस्य प्रगाय ऋषिः त्रिष्टुप्छंदः ब्रह्मा देवता ब्रह्मस्थापने विनियोगः ॥ ॐ अस्मे इद्धा इत्यस्य प्रगाय ऋषिः त्रिष्टुप्छंदः ब्रह्मा देवता ब्रह्मस्थापने विनियोगः ॥ ॐ अस्मे इद्धा इत्यस्य प्रगाय ऋषिः त्रिष्टुप्छंदः ब्रह्मा देवता ब्रह्मस्थापने विनियोगः ॥ ॐ अस्मे इद्धां व्याप्यापने देवता अनम्तस्थापने विनियोगः ॥ ॐ स्योनाप्रथिवी विनियोगः श्री कह्मा विनियोगः ॥ ॐ स्योनाप्रथिवी विन्दित्वक्षणयोर्मध्ये ब्रह्मा ॥ ईशानेव्ययोर्मध्ये ब्रह्मा ॥ ईशानेव्ययोर्मध्ये ब्रह्मा ॥ ईशानेव्ययोर्मध्ये ब्रह्मा ॥ इंशानेव्ययोर्मध्ये व्याप्यामित्याहुः ॥ केविषु ब्रह्माणन्तयोः स्थापनं नेव्यविष्याहा ॥ व्या विवताः

त्तनमन्त्रवी हुत्वा घृताकतिलैः ताभ्य एव देवताभ्यः प्रत्येकं दश-दशाहतीहरवा सोमं राजानमिति स्विष्टकृतं हुत्वा व्यस्तसमस्तव्या-हृतिभिस्तिलैरयुतं लचं कोटिं वा जुहुयुः । तत्र होमे ऋग्वेदिनस्ता-वदावाहनोक्तानेव मन्त्रान्पटन्ति । यजुर्वेदिनां तूच्यन्ते । श्राक्वच्योन हिरएयस्तूपः सविता त्रिष्टुप् सूर्यप्रीतये तिलाज्यहोमे विनियोगः। 🕉 श्राकृष्णेन० पश्यन् स्वाहा इदं सूर्याय० ॥१॥ एवं सर्वत्र ॥ इमं देवा वरुणः सोमो यज्ञः ॥ ॐ इमं देवा० राजा ॥२॥ श्रक्तिर्मूर्द्धा विरूपोऽङ्गारको गायत्री ॥३॥ उदुबुध्यस्व परमेष्ठी बुधस्त्रिद्धप् ॥ ४॥ बृहस्पते गुरसमदो बृहस्पतिस्त्रिष्टुप् ॥४॥ श्रन्नात्मजापति श्रेश्विस-रस्वतीन्द्राः शुक्रो जगती ॥६॥ शन्नो दध्यङ्ङाथर्वेण शनिर्गायत्री ॥७॥ कयानो वामदेवो राहुर्गायत्री ॥८॥ केतुं मधुछन्दाः केतवो गायत्रो॥६॥ \* अथाधिदेवतानाम् \* ज्यम्बकं विशिष्ठो चद्रोऽनुष्टुप् ॥१॥ अत्र प्रणीतोदकं स्पृशेत् ॥ श्रीश्च तेत्युत्तरनारायण उमा त्रिष्टुप् ॥२॥ यदक्रन्दो भास्कर-जमदग्नि-दीर्घतमा-स्कन्दस्त्रिष्टुप् ॥३॥ विष्णो रराट-मुतथ्यो विष्णुर्यजुः॥ ॐ विष्णो रराट० वेत्वा ॥४॥ म्रा ब्रह्मन् प्रजा-पतिर्मह्मा यजुः ॥ ॐ श्रा ब्रह्मन्० कल्पतां ॥४॥ स जोषा विश्वामित्र इन्द्रस्त्रिष्टुप्॥ ॐ सजोषा इन्द्रः ॥६॥ श्रसियमो भास्करःजमद्ग्नि-दीर्घतमसो यमस्त्रिष्टुप् ॥॥ अत्र प्रणीतोदकं स्पृशेत्। कार्षिरिस दृध्यङ्ङाधर्वणः कालो ऽनुष्टुप् ॥ ८ ॥ श्रत्रापि प्रणीतोद्कं स्पृशेत् । चित्रावस्त्रभूषयिश्वत्रगुप्ता जगती ॥ ॐ चित्रावसोः शीयः॥६॥ \* श्रथ प्रत्यिधदेवतानाम् \* अग्निं दूतं विरूपोऽग्निगीयत्री ॥१॥ श्रन्स्वन्तर्बृहस्पतिरापः पुर उष्णिक् ॥ २॥ स्योना मेघातिथिः पृथिवी गायत्री ॥३॥ इदं बिष्णुमेधातिथिविष्णुगायत्री ॥४॥ त्रातारं गार्यी इन्द्रिक्षिष्टुप् ॥४॥ अदित्यै दध्यङ्ङाथर्वण इन्द्राणी यज्ञुः॥ अदित्यै राम्नासि० ॥६॥ प्रजापते वहणः प्रजापतिस्त्रिष्टुप् ॥७॥ नमोऽस्तु देवाः सर्पानुष्दुप् ॥८॥ ब्रह्मप्रजापतिब्रह्मात्रिष्दुप् ॥६॥ \* अथ विनायकादि-संस्थात्य ॥ मनोजूतिहिति सूर्याधनन्तान्तदेवताः सुप्रतिष्ठिता बस्दा भवन्ति

संस्थाप्य ॥ मनाजातारात सुयाचनन्तान्तद्वताः सुपाताष्ठता वरदा भवान्त इति प्रतिष्ठाप्य सम्पूज्य ॥ ब्रह्मासनाद्याद्यारावाज्यभागान्तं कृत्वा प्रहाहुतीं कुर्यात् पूर्ववन्मन्त्रेण इति ॥ पूजास्विष्टनवाहुत्या बिलः पूर्णाहुतिस्तथा ॥ श्रेयोदानं बाह्मणेम्यो द्यात्वर्णसुद्क्षिणाम् ॥ कारयेद्भिषेकादीम् विसर्जनमतः परम् ॥ इत्यादि कर्म कुर्योदिति ॥

पञ्चानाम् #॥ गणानां प्रजापतिर्गणपतिर्यज्ञः । ॐ गणानान्त्वा० मम ॥१॥ श्रम्बे प्रजापतिर्दुर्गाऽनुष्टुप् ॥ २॥ वातो वा गन्धर्वा वात उष्णिक् प्रमाणत श्रावाहने विनियुक्तानप्येतान् होमे पठन्ति । तत्र ग्रहाणां सप्रमाणका एव ।

श्रन्येषां तूच्यन्ते । श्रावो राजानं वामदेवो रुद्रसिष्टुप् ॥ १॥ श्रापो हिष्ठा श्राम्वरीषः सिन्धुद्रीप उमागायत्रो ॥ २ ॥ स्योना मेघा-तिथिः स्कन्दो गायत्री ॥ ३ ॥ इदं विष्णुमेंघातिथिविष्णुर्गायत्री ॥ ४ ॥ त्वमित्सप्रथा गौतमो ब्रह्मा बृहती ॥ ४ ॥ इन्द्राग्निर्देवता तय उक्तसुगिन्द्रसिष्टुप् ॥ ६ ॥ श्रायं गौः सार्पराञ्ची यमो गायत्री ॥ ७ ॥ ब्रह्म ज्ञानं गौतमो वामदेवः कालसिष्टुप् ॥ ८ ॥ यदा ज्ञातं कौशिकः चित्रगुप्तोऽज्ञुष्टुप् ॥ ६ ॥ श्राग्नंदूतं काएवो मेघातिथिरग्निर्गायत्री ॥ १ ॥ उदुत्तमं गौतमो वामदेव श्रापसिष्टुप् ॥ २ ॥ पृथिव्यान्तरित्तं विष्णुः पृथिव्युष्टिणुक् ॥ ३ ॥ सहस्रशीर्षा नारायणो विष्णुरज्ञुष्टुप् ॥ ४ ॥ इन्द्रायेन्दो मरुत्वत उत्तानपर्णे सुभगे प्रजापते हिरुप्यगर्भः प्रजापतिस्त्रिष्टुप् ॥ ४ ॥ नमोऽस्तु सर्पेभ्यो देवाः सर्वाजुष्टुप् ॥ ६ ॥ एष ब्रह्मा प्रजापतिर्विद्या द्विष्दा गायत्री ॥ ७ ॥ श्रात् न इन्द्रः कुसीदः काएवो गण्पतिर्गायत्री ॥ ८ ॥ जातवेदसे कश्यपो दुर्गा त्रिष्टुप् ॥ ६ ॥ श्रादि-द्वत्स श्राकाशो गायत्री । क्राण्वित्रतो वायुरुष्णिक् । श्राकाशादिभ्यस्तु स्थापनमन्त्रा एव ।

शेषवासुक्यादिभ्यस्तु प्रण्वाद्याः स्वाहान्तानाममन्त्रा एव । लद्य-कोटिहोमयोरिन्द्रं मित्रमित्यनेन गरुत्मद्धोमः । कोटिहोमे तु ब्रह्म-जनार्दनरुद्रस्कन्देभ्योऽपि नाममन्त्रेहोंमः । ततो यज्ञमानो मण्डप-प्राग्द्वारकलशसमीपे जातारिमन्द्रं गर्ग इन्द्रस्त्रिष्टुप् । इन्द्रप्रीत्यर्थं बलिप्रदाने विनियोगः । त्रातारिमन्द्रं इन्द्राय साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकायाऽमुं सदीपमाषभक्तबल् समर्पयामि नम इति सदीपमाषमकवल् दत्वा भो इन्द्र दिशां रच्च बल् भच्च मम सकु-दुम्बस्यायुःकर्ता चेमकर्ता ग्रुभकर्ता शान्तिकर्ता पुष्टिकर्ता तुष्टिकर्ता भवेति प्रार्थयेत्। एवमाग्नेयादिषु होमोक्ताऽग्न्यादिमन्त्रेवेलिदानं प्रार्थनं च। पवमधिदेवताप्रत्यधिदेवतासहितेभ्यः सूर्यादिग्रहेभ्योऽपिहोमोक्ते-स्तत्तन्मन्त्रैर्विनायकदुर्गा-वाय्वाकाशाश्विवास्तोक्पतिस्त्राधपतिभ्यक्ष्य तत्तन्मन्त्रैर्विनायकदुर्गा-वाय्वाकाशाश्विवास्ताक्ष्यः स्नु वि स्नुवेण द्वादशवारं नारिकेलादिफलयुक्ताज्यं मृहीत्वा पूर्णांहुतिं जुहुयात्।

तत्र मन्त्राः—समुद्राद्विमिरित तृचस्य गीतमा वामदेवोऽग्निः स्त्रिष्टुप् पूर्णाहुतौ विनियोगः। पवमग्रेऽपि विनियोगः। मूर्झानिन्दवो भरद्वाजो वैश्वानरस्त्रिष्टुप् । पुनरिन्नर्वने स्वर्ह्वाजो वैश्वानरस्त्रिष्टुप् । पुनरिन्नर्वने स्वर्ह्वाचित्यास्त्रिष्टुप् । पूर्णा दिवे विश्वेदेवाः शतक्रतुरनुष्टुप् । सप्त ते अग्ने सप्तवानिन्नर्जगती। धामं ते वामदेव आपो जगती। धामं ते स्वाहेति। यजमानस्तु इदम्मन्तये वैश्वानराय वसुरुद्रादित्येभ्यः शतक्रतवे सप्तवते अन्नयेभ्यश्च न ममेति त्यजेत्। कातीयानां तु मूर्जानं दिव इत्येव पूर्णाहुतिमन्त्रः। अन्नय इदं न ममेति त्यागः। सामगानां तु प्रजापित ऋषिर्णायत्री-छन्द इन्द्रो देवता यशस्कामस्य यजमानस्य यजनीयप्रयोगे विनियोगः। पूर्णहोमं यशसा जुहोमि योऽस्मै जुहोति वरमस्मै ददाति। वरं वृणे यशसामामि लोके स्वाहेत्यनेन स्रुवेणेव होमः। इन्द्रायेदं न ममेति त्यागः। ततो वसोर्ज्ञारया होष्यामीति सङ्कर्ण्य यजमानो वसोर्ज्ञारां जुहुयात्।

मन्त्रास्तु—श्रक्तिमी इति नवानां मधुद्धन्दा श्राग्निगायत्रीवसोद्धारायां विनियोगः। विष्णोर्नुकमिति षएणां दीर्घतमा विष्णुस्त्रिष्टुप्।
श्रा ते पितरिति पश्चदशानां गृत्समदो रुद्रस्त्रिष्टुप्। स्वादिष्ठयेति
नवानां मधुच्छन्दः पवमानसोमो गायत्री । महावैश्वानरसाम्नो
महावैश्वानर ऋषिवैश्वानरो देवता पथ्यावृहतीछन्दः। ज्येष्ठसाम्नो
भरद्वाजो ऋषिवैश्वानरो देवता त्रिष्टुष्टुन्दः वसोर्द्धारां जुहोतीत्यनुवाकमपि पठन्ति शिष्टाः। एवं वसोर्द्धारां हुत्वा पूर्णपत्रविमोकादि च
यथाशाखं समाप्याऽऽचार्यसहिता ऋत्विजः सर्वोषधीभरनुलिप्ताङ्गं
पत्नीपुत्रादिसहितं यजमानं स्वस्वशाखीयेर्मन्त्रेनेवग्रहपीठसमीपस्थकलशोदकेन सम्पातकलशोदकेन वाऽभिषिश्चेयुः पौराणेश्च।
ते च—सुरास्त्वामभिषिश्चन्तु श्रह्म-विष्णु-महेश्वराः।

वासुदेवो जगन्नाथस्तथा सङ्कुषेणो विश्वः ॥१॥ प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च भवन्तु विजयाय ते । श्चाखण्डलोऽग्निभगवान् यमो वे निश्वः तिस्तथा ॥२॥ वरुणः पवनश्चेव धनाध्यत्तस्तथा शिवः । ब्रह्मणा सहिताः सर्वे दिक्पालाः पान्तु ते सदा ॥३॥ कीर्तिर्लक्ष्मीर्धितमें धा पुष्टिः श्रद्धा क्रिया मितः ।
बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिस्तुष्टिः कान्तिश्च मातरः ॥४॥
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु देवपत्न्यः समागताः ।
श्रादित्यश्चन्द्वमा भौमो बुध-जीव-सितार्कजाः ॥४॥
ग्रहास्त्वामभिषिश्चन्तु राहुः केतुश्च तर्पिताः ।
देव-दानव-गन्धर्वा यत्त-रात्तस-पन्नगाः ॥६॥
श्रह्मयो मनवो गावो देवमातर एव च ।
देवपत्न्यो द्रुमा नागा दैत्याश्चाप्सरसां गणाः ॥७॥
श्रह्माणि सर्वशास्त्राणि राजानो वाहनानि च ।
श्रीषधानि च रत्नानि कालस्यावयवाश्च ये ॥८॥
सरितः सागराः शैलास्तीर्थान जलदा नगाः ।
एते त्वामभिषिश्चन्तु सर्वकामार्थसिद्धय इति ॥६॥

तच्छं योरावृणीमह इति । ततो यजमानः स्नात्वा शुक्कमाल्याम्ब-रघर श्राचार्यादीन् सम्पूज्य तेभ्यो दिल्लां दद्यात् । तत्राऽऽचार्याय घेनुम् । ब्रह्मणे कृष्णमनड्वाहम् । पवं सदस्यर्तिद्वारपालादिभ्यो यथाशक्ति । तथा—

धेतुः शंखस्तथाऽनड्वान् हेम वासो हयः क्रमात्। कृष्णा मौरायसं छागं एता वै दक्तिणाः क्रमात्॥

प्रहानुहिश्य देयाः। ततः शक्त्या ब्राह्मणान्मोजयेत्, सङ्कल्पयेद्वाऽ शक्ती। ततो दीनानाथेभ्यो भूयसीं दक्तिणां दत्वा मण्डपदेवतानां ब्रह्मपीठदेवतानां चोत्तरपूजां कृत्वा यान्तु देश गणाः। श्रभ्यारमिद्-द्रयो। उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पत इति ता उत्थाप्य विस्तृष्य मण्डपादीन् प्रतिमादींश्च सर्वान् सम्भारानाःचार्याय प्रतिपाद्य, यस्य स्मृत्या च नामोक्तवा, प्रमादात्कुर्वतामिति पठित्वा कर्मेश्वरापणां कृत्वा विप्राशिषो गृहीत्वा तान् नमस्कृत्य सुहृद्युतो भुञ्जीतेति सर्वे शिवम्।

इति श्रीभदृशङ्करात्मजनीलकण्ठकते शान्तिपरिभाषाप्रयोगः।

🖂 🛪 अथ प्रह्योगशान्तिः 💥

यानैक-दुर्भिचादि भयं चैव चतुर्ग्रहसमन्वये। महारोगभयं राष्ट्रतयो द्वष्टितिनाशनम् ॥१॥ एट विष्वप्रहसमा थोगे दुर्भित्तं संकरादिकम्। जनसयो नृपवैरं गभनाशस्तु जायते॥२॥ अइषट्कसमायोगे मन्त्रिणो मरणं भवेत् । परवरवादि भयं सर्वे सङ्करादि जनत्तयः ॥३॥ पद्दराज्ञीविनाशो वा महाभयमथाऽपि वा । सप्तग्रहसमायोगे जितीशमरणं ध्रुवम् ॥४॥ जगत्मलयमेवाऽपि तदा निर्मानुषं जगत्। श्रत अर्ध्व महोत्पातनानादुःखमहाकुलम् ॥४॥ 🚟 सूर्यः स्याद्व्यतिरिक्तश्चेत्तदा योगो महाद्भुतः । विना चन्द्रेश योगोऽपि जगत्वलयकारसम् ॥६॥ तदत्तजातजन्तूनां महारोगो महाभयम् । श्रर्थनाशः स्थाननाशो मानहानिर्देगीडनम् ॥७॥ 🗽 वातिपत्तादिसम्भूतमहापीडा 👤 महद्भयम् समा योगग्रहा नृणां दोषान्कुर्वन्ति सर्वेदा ॥=॥ ेषणमासाभ्यन्तरे वाऽपि आयुर्हीनः श्रियस्तथा । जन्माष्टद्वादशे राशौ चतुर्थे पश्चमेऽपि वा महा। 🖾 पूर्वीक्रफलमेवात्रः तस्माच्छान्ति । प्रयत्नतः । कुर्याद्दीषानुसारेण वित्तशार्व्य न कारयेत् ॥१०॥ 🗀 तत्त्वद्वग्रहाकृतिं कृत्वा सौवर्धेन प्रयत्नतः। मुवर्षेन तदर्देन पादेनाऽपि कनीयसीम् ॥११॥ वित्तशाट्यं न कर्त्तब्यं कर्त्तव्यं शक्तितो नरेः। पूर्वीक्तलच्योनैव ग्रहमूर्ति च कारयेत् ॥१२॥

ग्रहस्येके**ककलशं** ्रव्रह्योगप्रमाणतः । कारयेत्कुम्भमेकं वा निर्व्रणं सृदृढं नवम् ॥१३॥ ग्रहस्येशानदिग्भागे शुद्धदेशे समस्थले । कुएँडे वा स्थिएडले वाऽपि होमं कुर्योद् विधानतः ॥१४॥ तस्य पूर्वीत्तरे देशे पूजास्थानं पकन्पयेत्। चतुरसं इस्तमात्रं स्थिएडलं तएडुलेन तु ॥१४॥ लिखेइग्रहाकृति तत्र स्थापयेत्पतिमां ततः। श्राधमत्यधिदेवादीन् दित्तणोत्तरतः निपेत् ॥१६॥ उक्तगन्धेस्तथा पुष्पेस्तत्तनमान्यैः फलौरपि। तत्तद्रग्रहोक्तमन्त्रेण पूर्वोक्तेनैव पूजयेत् ॥१७॥ खस्तिवाचनपूर्वेण श्राचायं ऋत्विजैः सह । ग्रहपूजादिकं कृत्वा नैवेद्यान्तं समर्पयेत् ॥१८॥ ततो होमं पकुर्वीत स्वयहाकिविधानतः। चतुर्थ्यन्तं प्रकुर्वीत कलशस्थापनं ततः ॥१६॥ पूर्वीक्तविधानेन शुद्धतीयेन पूर्येत्। पश्चामृतं पश्चगव्यं पश्चत्वक् पश्चपन्नवम् ॥२०॥ तत्र मन्द्रैविनिचिष्य श्रीषधानि विनिचिपेत्। तत्तद्ग्रहोक्तवि धना मूल्यान्यादाय निः विपेत्।।२१॥ श्रन्तिक्षेविष्णिर्वाऽपि कलशं पूर्यदेशुहः। तत्तद्वग्रहोक्तविविधेस्तत्तन्मन्त्रेहुनेद्ये ॥२२॥ चर्वाज्ये जुहुयात्पश्चात्तिलाहुतिमथाचरेत् । अथ स्विष्टकृतं हुत्वा होमशेषं समापयेत्।।२३।। ु भद्रासनोपविष्टस्य यजगानस्य ऋ त्विजैः। कलशस्योदकेनैवमभिषेकं समाचरेत् ॥२४॥ योगग्रहोक्तमन्त्रैश्च अधिमत्यधिमन्त्रतः ]

नवग्रहोक्तमन्त्रैश्र जातवेदादिपश्चकैः ॥२५॥ त्रियम्बकेन मन्त्रेण त्तेत्रस्य पतिना श्रपि। इन्द्रद्वयेनैव लोकपालाष्ट्रकैरपि ॥२६॥ यत सुरास्त्वा इति मन्त्रेण येन देवादयः क्रमात्। अन्येश पुरायस् क्तैश्र अभिषेकं समाचरेत् ॥२७॥ श्रभिषेकासूतं वस्त्रमाचार्याय निवेदयेत । ंततः शुक्काम्बरधरः कुर्यादाज्यावलोकनम् ॥२**⊏॥** ऋत्विगभ्यो दिचणां दद्यादेनुं शङ्कादिकानिष । तदभावे यथाशक्ति हिरएयमपि दापयेत् ॥२६॥ ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्यथाविभवसारतः एवं यः कुरुते भक्त्या ग्रहदोषविवर्जितः ॥३०॥ पूर्वोक्तसवदोषेश विम्रक्तः पुत्रवान सुखी। त्रायुरैश्वर्यसम्पन्नो जीवेद्दर्षशतं नरः ॥३१॥ इह लोके सुखी भूत्वा पश्चाच्छिवपुरं व्रजेत् । इति ग्रहयोगशान्तिः॥

श्रथ ग्रहस्नानानि ।। विष्णुधर्मोत्तरे—

मजिष्ठा-मदमातङ्गे कुङ्कमं रक्तचन्दनम् ।
पूर्णकुम्भे कृतं ताम्रे सूर्यस्नानं विधीयते ॥१॥

मद्मातङ्गम् = गजमदः।

उशीरं च शिरीषं च कुडूमं रक्तचन्दनम् । शङ्कन्यस्तिमदं स्तानं चन्द्रदाषितनाशनम् ॥२॥ खदिरं देवदारं च तिलानामलकानि च । पूर्णकुम्भे कृतं रोप्ये भौमपीडाविनाशनम् ॥३॥ नदीसङ्गमतोयानि तन्मदा सहितानि च । न्यस्तानि कुम्भे माहेये बुधपीडाविनाशनम्॥४॥ माहेये = मन्मये।

श्रोदुम्बरं तथा विन्वं वटमामलकं तथा। ्र न्यस्तं तु कुम्भे सौवर्णे जीवपीडाविनाशनम् ॥४॥ गोरोचना नागमदः शतपुष्पा शतावरी। विन्यस्ता राजते कुम्भे शुक्रपीडाविनाशनम् ॥६॥ तिलान् मापान् प्रियङ्गं च गन्धपुष्पं तथैव च। न्यस्तं काष्णीयसे कुम्भे सौरिपीडाविनाशनम् ॥७॥ गुग्गुलं हिङ्गुलं तालं शुभां चैव मनःशिलाम्। श्रुक्ते च माहिषे न्यस्येद्राहुपीडाविनाशनम् ॥=॥

तालम् = हरितालम्।

ंबराहनिहर्ता राजनः । पर्वताग्रमृदं तथा । छागत्तीरं खड्मपात्रे केतुपीडाविनाशनम् ॥६॥

बराहनिहता = वराहोरखाता। खडगो = गण्डकः।

**इक्तं ग्रहस्नानमिदं सर्वे**पीडाविनाशनम् । इति ग्रहस्नानानि ॥ अथाऽऽदित्यशान्तिः। भविष्ये--

श्रादित्यवारं हस्तेन पूर्वे गृहा विचन्तरणः । मन्त्रोक्तविधिना सर्वे क्यात्पूजादिकं रवेः॥१॥ प्रत्यके सप्तनकानि कृत्वा भक्तिपरो नरः J ततस्तु सप्तमे पाप्ते कुर्योद्दबाह्मराभोजनम् ॥२॥ भास्करं शुद्धसौवर्णे छत्वा यत्नेन मानवः। ताम्रपात्रे स्नापयिसा रक्तपुष्पैः प्रपूजयेत् ॥३॥ रक्तवस्तयुगच्छनं छत्रोपानयुगान्वितम् भूतेन स्नापित्वा<del>ंच</del> लड्डकान् विनिवेच ची।४॥ होमं घृततिलैः कुर्योद्रविनाम्ना च मन्त्रवित । समिषाऽष्टोगरशतमष्टाविशतिरेव व ।।।।।।

होतव्या मधुसर्पिभ्यां दध्ना चैव घृतेन च ।

मन्त्रेणाऽनेन विदुषे ब्राह्मणाय प्रदापयेत् ॥६॥

श्रादिदेव ! नमस्तुभ्यं सप्तसप्ते ! दिवाकर ! ।

त्वं रवे ! तारयस्वाऽस्मांस्तस्मात्संसारसागरात् ॥७॥

व्रतेनाऽनेन राजेन्द्र ! भवेदारोग्यम्रचमम् ।

द्रव्य-सम्पत्मुतप्राप्तिरिति पौराणिका विदुः ॥८॥

श्रिप संवादिनी चेयं शान्तिः पुष्टिः सदा गृणाम् ।

सूर्यपीढा सुघोरास कृता शान्तिः शुभपदा ॥

इत्यादित्यशान्तिः ॥१॥

## श्रथ चन्द्रशान्तिस्तत्रैव-

तद्व चित्रासु संगृह्य से। मवारं विचल्लाः ।

श्रानेनेवोक्तविधिना कुर्यात्यू जादिकं विभेाः ॥१॥

सप्तमे त ततः प्राप्ते कुर्याद् ब्राह्मणभाजनम् ।

कांस्यपात्रेऽथ संस्थाप्य से। मंद्री जतसम्भवम् ॥२॥

श्वेतवस्त्रयुगच्छन्नं श्वेतपुष्पेः प्रपूर्णितम् ।

पादुकोपानहच्छत्रं भाजनासनसंयुतम् ॥३॥

होमं घृतित्तिः कुर्यात्से। मनाम्ना च मन्त्रावत् ।

समिधे। ऽष्टोत्तरशतम् छ। विश्वितरेव वा ॥४॥

होतव्या मधुसपिभ्यां दथ्ना चैत्र घृतेन च ।

दथ्यक्रशिखिरे कृत्वा ब्राह्मणाय निवेद्येत् ॥४॥

मन्त्रेणा ऽनेन राजेन्द्र! सम्यग्भत्त्या समन्वितः ।

महादेवजातिवद्वीपुष्पगोचीरपाण्डरः । ॥६॥

से। सीम्यो भवाऽस्माकं सर्वदा ते नमे। नमः ॥

इति चन्द्रशान्तिः ॥२॥

श्रथ मङ्गलशान्तिः--

स्वात्यामङ्गारकं गृह्य त्तमायां नक्तभाजनम्। सप्तमे त्वथ सम्प्राप्ते हैमं ताच्रे निवेश्य वै ॥१॥

त्त्रमा = भूः।

रक्तवस्त्रयुगच्छन्नं कुंकुमेनानुलेपितम् ।
निवेद्य भक्तकं सारं पुष्पभूपात्ततादिभिः ॥२॥
हेामं घृतितलैः कुर्यात्कुजनाम्ना च मन्त्रवित् ।
सिभेषोष्टात्तरशतमष्टाविंशतिरेव वा ॥३॥
हेातच्या मधुसपिंभ्यां दभ्रा चैव घृतेन च ।
मन्त्रेणाऽनेन तं दद्याद्व्वाद्यणाय कुदुम्बिने ॥४॥
कुज ! कुपभवोऽपि त्वं मङ्गलः परिपठ्यसे ।
श्रमङ्गलं निहत्याशु सर्वदा यच्छ मङ्गलम् ॥४॥
एवं कृते भौमकृतं दुष्कृतं शान्तिमामुयात् ।
कर्ताच्यं भौमपीदासु तस्मात्मयतमानसैः ॥६॥
इति भौमशान्तिः ॥३॥

अथ बुधशान्तिः—

विशाखासुः बुधं गृहा सप्तनकान् यथाऽऽचरेत् ।
बुधं हेममयं कृत्वा स्थापितं कांस्यभाजने ॥१॥
शुक्कवस्त्रयुगच्छनं शुक्कमान्यानु छेपनम् ।
गुहौदनोपसंहारं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥२॥
बुध ! त्वं बुद्धिजननो बोधवान् सर्वदा गृणाम् ।
तत्त्वावबोधं कृष् मे सोमपुत्र! नमो नमः ॥३॥
होमं घृततिलैः कुर्याद् बुधनाम्ना च मन्त्रवित् ।
समिषोऽष्टोत्तरशतमष्टाविंशतिरेव वा ॥४॥
होतव्या मधुसर्पिभ्यां दथना चैव घृतेन च ।
बुधशान्तिरियं मोक्ता बुधवैकृतनाशिनी ॥४॥

## मुधदोषेषु कर्नीच्या तथा शान्तिकपौष्टिके ।। इति मुधशान्तिः ॥

अथ गुरोः शान्तिः---

गुरुं चैतानुराधामु पूजयेद्धिततो नरः ।
पूर्वोक्तिविधियोगेन सप्तनक्तान्यथाचरेत् ॥१॥
हैमं हेममये पात्रे स्थापित्वा बृहस्पतिम् ।
पीताम्बरयुगच्छनं पीतयक्षोपवीतिनम् ॥२॥
पादुकोपानहच्छत्रकमण्डलुविभूषितम् ।
पूजयेत्पीतकुमुमैः कुङ्कुमेन विछेपितम् ॥३॥
धूपदीपादिभिर्दिच्यैः फलैश्चन्दनतण्डलैः ।
खण्डखाद्योपहारैश्च गुरोरग्रे निवेदयेत् ॥४॥
धर्मशास्त्रार्थतत्त्वक् ! ज्ञानविज्ञानपारग ! ।
विबुधार्तिहराचिन्त्य देवाचार्य ! नमोऽस्तु ते ॥४॥
होमं घृततिलैः कुर्याद्गुहनाम्ना च मन्त्रवित् ।
समिधाऽष्टोत्तरशतमष्टाविंशतिरेव वा ॥६॥

समिधोऽत्राऽश्वत्थस्य ।

होतव्या मधुसर्पिभ्यां दध्ना चैव घृतेन च ।
एतद्द्वतं महापुष्यं सर्वेषापहरं शिवम् ॥७॥
तुष्टिपुष्टिकरं नॄणां गुरुवैकृतनाशनम् ।
विषयस्थे गुरौ कार्या महाशान्तिर्यं नृभिः ॥८॥
इति बृहस्पतिशान्तिः ।

श्रथ गुरुपूजा ॥ स्कान्दे—

कन्याविवाहकाले तु शुद्धिर्यस्या न विद्यते । व्राह्मणस्योपनयने यस्य स्यादुत्थितो गतः ॥१॥ इत्थितः = प्राप्तः॥

गुडू को वा स्वपामार्ग विदर्भ शहिनी वचा िसहदेवी विष्णुकाताः सर्वीवध्यः शतावरी ॥३॥ कुष्टं मोसं इरिद्रे दे सुरा शैकेयवन्दनम् िबचा कर्चूरम्रस्तं च सर्वीषध्यः प्रकीर्तिताः ॥४॥ तथैवाऽश्वत्थमृङ्गा च पञ्चगव्यं जलं तथा। ं नतनं सोदकुम्भं च पीतवस्नसमन्वितम् ॥४॥ पश्चरत्नैः समायुक्त मोशान्यां स्थापितेऽनलात् । ्या श्राष्ठ्राति मन्त्रेण सर्वास्त्रस्मिन्दिनित्त्रियेत् ।।६।। कुम्भस्ये।परि भागे तु स्थापयिला बृहस्पतिम्। सुवर्णपात्रे सोवर्णी प्रतिमां तु सुधिष्ठिर ! ॥७॥ कारयेच् यथाशत्त्रया वित्तशाठ्यविवर्जितः। ं**पी**तवस्त्रयुगच्छन्नां पीतयज्ञोपवीतिनीम् ।।⊏।। पूजयेद्दगन्धपुष्पाद्यस्तते। होमं समाचरेत्। 💝 समिथे। ऽरवस्थर ज्ञास्य हे।तह्या उद्योऽत्तरं शतम् ।।।।। ितिलब्रीहियवोन्मिश्रं होतच्यं च यथाक्रमम् । बृहस्पतेति मन्त्रेण ऋषिकन्दः समन्त्रितः ॥१०॥ ः अन्त्रेखाऽनेन । जुहुयाद्धान्यपूर्गं च यत्नतः । तता होमावसाने तु पूजयेच बृहस्पतिम्।।११।। पीतगन्धेस्तथा पुष्पेर्धूपैदीपेश्च भक्तितः। दध्यादनं च नैवेद्यं फलताम्बूलसंयुतम् ॥१२॥ मन्त्रेणाऽनेन कौन्तेय ! समभ्यव्ये पुनः पुनः । नगस्तेऽङ्गिरसां नाथ ! वानगतेऽथ बृहस्पते ! ॥१३॥

क्र्रप्रहेः पीडितानाममृताय नमे। नमः। पूर्जियत्वा सुराचार्य्य पश्चाद्र्यं निवेद्येत् ॥१४॥ गम्भीरदृढरूपाङ्ग ! देवेज्य ! सुमते ! प्रभा !। नमस्ते वाक्पते ! शान्त ! गृहाणाऽद्यं बृहस्पते ! ।।१४।। अर्घमन्त्रः । श्रर्घ दत्वा सुरेशस्य जपहोमं समापयेत्। भक्तचाय ते सुराचार्य ! होमपूजादि संस्कृतम् ॥१६॥ तत्त्वं गृहाण शान्त्यर्थे बृहस्पते ! नमो नमः । संकरपमन्त्रः-मन्त्रेखाऽनेन संकरूप्य पश्चात्सम्प्रार्थयेन्तृव! ॥१७॥ जीवा बृहस्पतिः सुरिराचार्यो गुरुरङ्गिराः वाचस्पतिर्देवमन्त्री शुभं क्रुयीत्सदा मम ॥१८॥ प्रार्थनामन्त्र:-एवं सम्प्रार्थयेदेवमाचार्यं च प्रपूजयेत्। सर्वेषिचारसंयुक्तां प्रतिमां तां युधिष्ठिर !।।१६॥ प्रणम्य च गवा युक्तामाचार्याय निवेदयेत्। श्रथाऽऽचार्यस्तु नियतो वेदवेदाङ्गपारगः ॥२०॥ यजगानं सपत्नीकं शान्तचित्तं जितेन्द्रियम् । कुम्भादकं गृहीत्वा तु मन्त्रेरेतैः प्रसिश्चयेत् ॥२१॥ इदमापेाथमन्त्रेण जामदग्निमृचा तथा। या श्रोषधीरश्वावतीः कूष्मांडैश्वाभिषेचयेत् ॥२२॥ पश्चात्सम्भोजयेद्दिपान् यथाशक्तचा युधिष्ठिर ! एवं कृत्वा गुरोः पूजां सर्वान्कामानवाष्त्रुयात् ॥२३॥ संक्रान्ताविप कौन्तेय ! तथा स्वाभ्युद्येषु च। 🐺 कुर्वेन् बृहस्पतेः पूजामभीष्टं फलमाप्तुयात् ॥२४॥ संकान्ती = गुरुसंकान्ती।

इति गुरुपूजा । 👵 🎢

## श्रथ शुक्रशान्तिभविष्ये —

शुक्रं ज्येष्ठासु संगृह्य चमार्या नक्तभाजनम् ।

च्नमा=भूः।

गुरुक्तक्रममार्गेण द्विजसन्तर्पणेन च ॥ १ ॥
सप्तमे त्वथ सम्प्राप्ते रोप्यं शुक्रं तु कारयेत् ।
वंशपात्रे च संस्थाप्य पूजयेत्सितपंकजेः ॥ २ ॥
तदभावे सितैः पुष्पेस्ताम्बूलैश्वन्दनेन वा ।
श्रप्ते तस्य पदातव्यं पायसं घृतसंप्तुतम् ॥ ३ ॥
दद्यादनेन मन्त्रेण ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ।
भागवो भगशुक्रस्य श्रुचिः श्रुतिविशारदः ॥ ४ ॥
दित्वा ग्रहकृतान्दोषानायुरारोग्यदे।ऽस्तु सः ।
देशमं घृतित्तैलैः कुर्याच्छुक्रनामना च मन्त्रवित्॥ ४ ॥
सिमधे।ऽष्टोत्तरशतमण्टाविंशतिरेव वा ।
देशतव्या मधुसर्पिभ्यां दथा चैव घृतेन च ॥ ६ ॥

अथ प्रतिशुक्रादिशान्तिः। तत्रैव मात्स्ये---

श्रथाऽतः शृणु भूपाल ! प्रतिशुक्रपशान्तये ।
यात्रारम्भेऽवसाने च तथा शुक्रोदये सित ॥ १ ॥
शुक्रपूजा प्रकर्तव्या तां निशामय भारत !
राजते वाऽथ सौवर्णे कांस्यपात्रेऽथ वा पुनः ॥ २ ॥
शुक्रपुष्पाम्बरयुते श्वेततण्डुलपूरिते ।
निशाय राजतं शुक्रं शुचिम्रक्ताफलान्वितम् ॥ ३ ॥
महाश्वेतसमायुक्तं सामगाय निवेदयेत् ।
नमस्ते सर्वछोकेश ! नमस्ते भृगुनन्दन् ! ॥ ४ ॥
देवं ! सर्वार्थसिध्यर्थं गृहाणाद्यं नमे।ऽस्तु ते ।
दत्वेवमद्वयं कोन्तेय ! मिण्यस्य विसर्जयेत् ॥ ४ ॥

एवं शुक्रोदये कुर्याद्यात्रादिषु च भारत !। ः ,तद्रद्वाचस्पंतेः पूजां पवक्ष्यामि सुधिष्ठिर्! ॥६॥ सौवर्षापात्रे सौवर्षाममरेशं पुरेहितम् । पीतपुष्पाम्बरघरं कृत्वा स्नात्वाऽथ सर्पपैः ॥ ७ ॥ पालाशाश्वत्थभन्नेन पश्चगव्यतिलेन तु भङ्गः=पल्लवः। पीताङ्गरागवसने। घृतहोमं तु कारयेत् ॥ ८॥ भग्गम्य तां गवा सार्छं ब्राह्मणाय निवेदयेत् । नमस्तेऽङ्गिरसां नाथ! वाक्पते ते बृहस्पते!॥ ६॥ र क्रूग्रहेः पीडितानाममृताय नमा नमः । संक्रान्ताविष कौन्तेय ! यात्रास्वभ्युद्येषु च ॥१०॥ कुवेंन् बृहस्पतेः पूजां सर्वान् कामान् समश्तुते । श्रथवा मौक्तिकान्येव सुरुतानि बृहन्ति च ॥११॥ भार्गदान्निरसौ चिन्त्य तान्येव प्रतिपादयेत् । इति प्रतिशुकादिशान्तिः। श्रथ शनि-राहु-केतुशान्तयः । भविष्ये-शनैश्वरं राहु-केत् लोहपात्रेषु निन्निपेत् कुष्णाग्रुकः समृतो धृपा दिल्ला च स्वशक्तितः॥ १ ॥ प्रथाक्रमं अभीद्वीक्रशानां समिधः स्मृताः। 🛊 🕾 सप्तमे स्वथ सम्पाप्तेन वर्ष्णान वाऽथ कारयेत् ॥ २ ॥ कु ज्यावस्त्र युगच्छनामे के कार येद् बुभः। ्र मृगनाभ्या समासभ्य कुशरान्तिनिवेच च ॥ ३॥ होमानसाने तत्सर्व शास्त्रणायापपादयेत । शनैश्वर ! नमस्तेऽस्तु नमस्ते राहवे तथा ॥ ४ ॥

क्रेतवे च नमस्तुभ्यं सर्वे शान्ति प्रयच्छतु ।

ं एवं कृते भवेद्यस्तु तक्षियोध दृपे। सम ! ॥ प्र ॥

यदि भौमा रिवस्रतो भास्करे। राहुणा सह । केतृश्च मूर्त्ती तिष्ठन्ति सर्वे पीडाकरा ग्रहाः ॥ ६ ॥ श्रनेन कृतमात्रेण सर्वे शाम्यन्त्युपद्रवाः । इति शन्यादिशान्तिः ।

भविष्योत्तरे-ततो मन्दस्य दिवसे स्नानमभ्यक्रपूर्वकम्। कार्य देयं च विषाय तैलमभ्यक्रहेतवे ॥ १॥ यस्तु सम्वत्सरं यावत्माप्ते शनिदिने रतः। तैलं ददाति विपाणां स्वशक्तचाऽभ्यज्यतेऽपि वा ॥२॥ ततः सम्बत्सरस्यान्ते माप्ते तस्य दिने पुनः । लौहं घटापितं सौरिं तैलकुम्भे विनिन्निपेत् ॥ ३ ॥ लौहे वा मृन्मये वाऽथ कृष्णवस्त्रयुगान्वितम्। कृष्णगोदिचणायुक्तं कृष्णकम्बलशायितम् ॥ ४ ॥ ्रं स्वयमभ्यक्रतः स्नात्वा कृष्णपुष्पेस्तमचयेत् । सुगन्धिगन्धपुष्पैश्र कुसरान्नैस्तिलेदिनैः ॥ ५ ॥ पूजियत्वा सूर्यपुत्रं त्तमस्वेति पुनः पुनः। कृष्णाय दिजमुख्याय तदभावे नराय च ॥ ६ ॥ <sup>२</sup> देयः शनैश्वरी भक्तचा मन्त्रेणाऽनेन वै द्विज! क्ररावकाकनवशाद्भवनं नामीति या ग्रहा रुष्टा। ७॥ तुष्टी धनकनकसुर्वं ददाति सोऽस्मान् शनैश्वरः पातु । यः पुनर्नेष्टराज्यायः नरायः परितेषितः ॥ ८॥ स्वमे ददौ निजं राज्यं समे सौरिः मसीदतु। कोणं नीलाञ्जनमख्यं मन्द्चेष्टामसारिणम् ॥ ६ ॥ छायामातेग्डसम्भूतं नमस्यामि शनैश्ररम् । ममेरिक पुत्राय शर्नेश्वराय नीहारवर्णोञ्जनमेचकाय॥१०॥ अत्वा रहस्यं भव कामदस्त्वं फलप्रदे। मे भव सूर्यपुत्र! क्षेत्रमाऽस्तु प्रेतराजाय कुश्रदेहाय वै नमः॥११॥ शनैश्वराय क्रूराय शुद्धचुद्धिपदायिने । य एभिनीमभिः स्तौति तस्य तुष्टिं ददात्यसौ । १२॥ तदीयं तु भयं तस्य स्वप्नेऽपि न भविष्यति । इति शनिव्रतम् ।

स्कान्दे-श्रावणे मासि संजाते शोभने शनिवासरे ।

छोहरूपं शिनं कृत्वा स्ताप्य पश्चामृतैनेवैः॥ १ ॥

पुष्पैरष्टविधेघूँ पैः फलैश्चैव विशेषतः ।

मन्त्रैः प्रपूजयेदेतैः क्रमेण ग्रहमुत्तमम् ॥ २ ॥
कोणस्तु पिङ्गको बभ्रः कृष्णा रौद्रो यमोऽन्तकः।

सौरिः शनैश्वरे। मन्दः पिष्पलादेन संस्तुतः ॥ ३ ॥

शक्षो देवीति सर्वत्र वैदिकेन च पूजयेत् ।

पूजयित्वा च नैवेद्यं ततः कुर्यात्क्रमेण तु ॥ ४ ॥

समाषभक्तं पथमे द्वितीये पायसं शुभम् ।

तृतीये त्विन्विली कार्या चतुर्थे पूरिका शुभा॥ ४ ॥

श्रीकेली व्यक्तियुक्ति पिष्टाविनिर्मितो लेखिवशेषः।

इति शनिस्तोत्रम् ।

ततः कृ ताञ्जिलिभूत्वा स्तुति चक्रे स बालकः ।

पिष्पलादो दिलश्रेष्ठः प्रिणपत्य ग्रहुर्ग्रहुः ॥

नमस्ते कोणसंस्थाय पिङ्गलाय नमोऽस्तु ते ।

नमस्ते वश्रु ख्पाय कृष्णाय च नमोऽस्तु ते ॥

नमस्ते रोद्रदेहाय नमस्ते चान्तकाय च ।

नमस्ते यज्ञसंज्ञाय नमस्ते सौरये विभा ! ॥ ३ ॥

नमस्ते मन्द्रसंज्ञाय शनैश्रर ! नमोऽस्तु ते ।

प्रसादं कुरु देवेश ! दीनस्य प्रणतस्य च ॥ ४ ॥

श्रनेश्वरखवाच-परितृष्टोऽस्मितं वत्स ! स्तोत्रेणाऽनेन साम्पतम्।
वरं वरय भे। वत्स ! येन यच्छापि वाञ्छितम्।। ।।
पिप्पलाद खवाच-श्रद्य प्रभृति ने। पीडा बालानां रिवनन्दन !
त्वया कार्या महाभाग ! न स्वकीया कथञ्चन ।। १ ।।
यावद्वप्रीष्टकं जातं मम बान्येन सूर्यज !
स्तोत्र णाऽनेन योऽन्यस्त्वां श्र्यात्प्रातकपरियतः।। २।।
तस्य पीडा न कर्त्तेच्या देया लाभे। महाश्रुज !
श्रद्धाष्टिमकया योगे तावके संस्थिते नरः ।। ३ ।।
सार्डसप्तवर्षपर्यन्तं द्वादशजन्मद्वितीयराशिमिर्यः शनैश्वरयोगः
सोऽर्द्धाष्टमिकया योग इत्युच्यते।

तव वारे तु सम्माप्ते यस्तिलान होमसंयुतान्।
शक्तचा ददाति ने। तस्य पीडा कार्या त्वया विशे ! ।।।।।
कृष्णां गां यस्तु विशाय तवीह शेन यच्छिति ।
श्रद्धाष्ट्रमिकया पीडा तस्य कार्या त्वया न च ।।।।।
श्रमीसमिद्धियों होमं तवीह शेन निर्वपेत् ।
तथा कृष्णतिलैश्चैव कृष्णपुष्पानुलेपने ।। ६ ।।
पूजां करे।ति यस्तुभ्यं धूपं वे गुग्गुलं दहेत् ।
कृष्णवस्रेण संवेष्ट्य त्याज्या तस्य त्वया व्यथा ।।।।।
स्त स्वाच-एवम्रक्तः शनिस्तेन वादमित्यवजन्य च ।
नारदं समनुज्ञाय जगाम निजसंश्रयम् ॥ ६ ॥
इति शनैश्वरशान्तिः ॥

# अथार्कविवाहः।

प्रयोगरते **गात्स्ये**—

तृतीयां मानुषीं नैव चतुर्थीं यः समुद्रहेत्।
पुत्रपीत्रादिसम्पन्नः कुदुम्बी साऽग्निको वरः॥१॥
अद्रहेद्रतिसिद्धचर्थं तृतीयां न कदाचन ।
मोहादक्षानतो वाऽपि यदि गच्छेत्तु मानुषीम्॥२॥

नश्यत्येव न सन्देहा गर्गस्य वचनं यथेति । तत्रेव संग्रहे-सृतीयां यदि चोद्वाहेत्तर्हि सा विधवा भवेत्। चतुर्थादिविवाहार्थे तृतीयेऽर्के समुद्रहेत् ॥१॥ आदित्यदिवसे वाऽपि हस्तर्ज्ञे वा शनैश्वरे। शुभे दिने वा पूर्वाह्वे कुर्यादर्कविवाहकम्॥२॥

व्यासः स्वार्त्वाऽलंकृतवासास्तु रक्तगन्धादिभूषितम् सपुष्पफलशाखेकमकरगुन्मं समाश्रयेत् ॥१॥ सन्लक्षणेन संयुक्तमके संस्थाप्य यव्वतः। श्रक्षकन्यापदानार्थमाचार्यं कन्पयेतपुरा ॥२॥ श्रक्षसिधमागत्य तत्र स्वस्त्यादि वाचयेत्। नान्द्राश्राद्धे हिरण्येन श्रष्टवर्गान्प्रपूजयेत्॥३॥

पूजियेन्मधुपर्केण वर्र विषस्य हस्ततः । यज्ञोपकीतं वस्रं च हस्तकर्णादिभूषणम् ॥ ४॥ उप्णीषगन्धमान्यादि वरायाऽस्मै पदापयेत् । स्वशाखोक्तमकारेण मधुपर्के समाचरेत्॥ ४॥

बाह्ये-ग्रामात्माच्यामुदीच्यां वा सुपुष्पफलसंग्रुतम्। परीक्ष्य यव्वतेष्ठधस्तात्स्थिषडलादि यथाविधि॥६॥

कुर्यादिति शेषः।

क्रत्वार्के पुरतस्तिष्ठन् पार्थयेत्तद्द्विजे।त्तमः । त्रिळेकिवासिन् ! सप्तारव ! छायया सहिता रवे ! ॥७॥ तृतीयोद्वाहजं देशं निवारय सुखं कुरु । तत्राऽध्याराप्य देवेशं छायया सहितं रविम् ॥ ८॥ बस्त्रैमन्येस्तथा गन्धेस्तन्मन्त्रेराव पूजयेत् तत्रैव रवेतवस्रेण तथा कार्पासतन्तुभिः॥ ६॥ गन्धपुष्पैः समभ्यच्ये श्रब्लिङ्गैरभिषिच्य च । गुडौद्नं तु नैवेद्यं ताम्बूलं च समर्पयेत् ॥ १०॥ व्यासः-अके पदिचाणी कुर्वन् जपेन्मन्त्रमिमं बुधः। मम मीतिकरायेयं मया सृष्टा पुरातनी ॥ ११ ॥ श्रकेजा ब्रह्मणा सृष्टा श्रम्माकं प्रति रत्नतु । पुनः प्रदित्ताणीकुर्यान्मन्त्रे त्यानेन मन्त्रवित् ॥ १२ ॥ नगस्ते मङ्गले देवि ! नगः सवितुरात्मजे ! त्राहि मां कुपया देवि! पत्रीत्वं मे इहागता ॥ १३॥ श्रकत्वं ब्रह्मणा सृद्धः सर्वेषाणिहिताय च । वृत्ताणामादिभूतस्त्वं देवानां शीतिवद्धं नः ॥ १४ ॥ तृतीयोद्वाहजं पापं मृत्युं चाशु विनाशय। ततथ कन्यावरणं त्रिपुरुषं कुलग्रुद्धरेत् ॥ १६ ॥ श्रादित्यः सविता चार्कः पुत्री पौत्री च निष्त्रका । गोत्रं काश्यप इत्युक्तं लोके लौकिकमाचरेत ॥१६॥ मुमुहूर्ते निरीन्तेत स्वस्तिस्क्षमुदीरयन्। श्राशीभिः सहितैः कुर्यादाचार्येषमुखैद्विजैः॥१७॥ श्रयाचार्य समाह्य विधिना तन्मुखाच ताम्। प्रतिगृह्य ततो होमं गृह्योक्तविधिना चरेत् ॥१६॥-व्यासः च्यक्रकन्यामिमां विम ! यथाशक्तिविभूषिताम् । गोत्राय शर्मेणे तुभ्यं दत्तां विषु ! समाश्रय ॥१६॥

श्रञ्जन्यत्ततकर्माणि कृत्वा कङ्कुणपूर्वकम्। यावत्पश्चरता सूत्रं तावद्रके प्रवेष्ट्रयेत् ॥२०॥ स्वशाखोक्तेन मन्त्रेण गायत्र्या वाऽथवा जपेत्। पश्चीकृत्य पुनः सूत्रं स्कन्धे बध्नाति मन्त्रतः ॥२१॥ बृहत्सामेति मन्त्रेण सूत्ररत्तां मकन्पयेत्। श्रर्कस्य पुरतः पश्राद्दत्तिगोत्तरतस्तथा।।२२।। कुम्भांश्र निचिपेत्पश्रादाग्नेयादिचतुष्ट्ये । सवस्त्रं प्रतिकुम्भं च त्रिसूत्रेर्णैव वेष्ट्रयेत् ॥२३॥ हरिद्रा-गन्धसंयुक्तं पूरयेच्छीतलं जलम्। प्रतिक्रुम्भं महाविष्णुं सम्पूच्य परमेश्वरम् ॥२४॥ पाद्याघीदिनिवेद्यान्तं कुर्यान्नाम्नैव मन्त्रवित्। श्रत्र शौनकोक्तो होमप्रकारः-त्तीये स्त्रीविवाहे तु सम्प्राप्ते पुरुषस्य तु। श्रर्के विवाहं वक्ष्यामि शौनकोऽहं विधानतः ॥ १ ॥ अर्कसिनिधिमागत्य तत्र खस्त्यादि वाचयेत्। नान्दीश्रादं प्रकुर्वीत स्थिएडलं च प्रकल्पयेत्।। २॥ श्चर्रमभ्यच्ये सौर्या च गन्धपुष्पात्ततादिभिः। सौर्या = सूर्यदेवत्यया । श्राकृष्णेनेत्यनया । ख्यं बातं कृतस्तद्वत् वस्त्रमाल्यादिभिः शुभैः ॥ ३॥ श्रर्कस्योत्तरदेशे तु समन्वारब्ध एतया। एतया = श्रर्ककन्यया। <del>षक्</del>छेखनादिकं कुर्यादाघारान्तमतः परम् ॥ ४ ॥ श्राज्याहुतिं च जुहुयात्संगोभिरनयैकया। यस्मै त्वा कामकामायेत्येतयर्चा ततः परम्।। ५।। व्यस्ताभिश्र समस्ताभिस्ततश्र स्विष्टकुद्भवेत् । परिषेचनपर्यन्तमयाश्चेत्यादिकं क्रमात् ॥ ६॥

मार्थनामन्त्रादिविशेषमाह व्यासः-

पुनः मद्विणं कृत्वा मन्त्रमेतमुद्दारयेत् ।
मया कृतमिदं कर्म स्थावरेषु जरायुणा ॥ ७ ॥
ध्यकीपत्यानि नो देहि तत्सर्वे चन्तुमहिस ।
इत्युक्त्वा शान्तिस्कानि जप्त्वा तं विस्रजेत्पुनः ॥ ८ ॥
गोयुमं द्विणां द्वादाचार्याय च भक्तितः ।
इतरेभ्योऽपि विमेभ्यो द्विणां चाऽपि शक्तितः ॥ ६ ॥
तत्सर्वे गुरवे द्वादन्ते पुण्याहमाचरेत् ।

श्रथ प्रयोगः ॥ तृतीयोद्वाहात्प्राग्दिनचतुष्ट्याधिकव्यवहितेः रिवन्वारे शिन्वारे हस्तनच्चे श्रभिदनान्तरे वा ग्रामात्प्राच्यामुदीच्यां वा पुष्पफलयुताकाधस्तात्स्थणिडलं हत्वाऽकंपश्चिमत उपविश्य मास-पद्माद्युलिलख्य मम तृतीयमानुषीविवाह नदीषापनुत्यर्थमकीववाहं करिष्य इति सङ्करूप गणेशपूजा-स्वस्तिवाचन-मातृपूजन-वृद्धिश्राद्धाः चार्यवरणानि कुर्यात्। तत्र वृद्धिश्राद्धं हेम्ना । श्रथाचार्येण पूजितो वरः।

त्रिलोकवासिन ! सप्ताश्व ! छायया रहितो रवे ! तृतीयोद्वाहजं दोषं निवारय सुखं कुरु ॥ १॥

इत्यर्कं सप्रार्थ्यांके । ब्राहणोनेति छायासहितं रिवमाबाह्य श्वेत-वस्त्रस्त्राभ्यामावेष्ट्य सम्पूज्याऽऽपोहिष्ठेत्यादिभिरभिषिच्य गुडोद-नताम्बूलादि समर्प्यं प्रदित्तणोक्तर्वन्—

मम प्रीतिकरायेयं मया सृष्टा पुरातनी ।
श्रक्तजा ब्रह्मणा सृष्टा श्रस्माकं प्रतिरत्ततु ॥ १ ॥ इतिपठेत्
द्वितीकप्रदक्तिणायां तु—
नमस्ते मङ्गळे ! देवि ! नमः सवितुरात्मजे !
श्राहि मां कृपया देवि ! पत्नीत्वं मे इहागता ॥ २ ॥
श्रक्ते ! त्वं ब्रह्मणा सृष्टः सर्वप्रास्मिहिताय च ।

वृत्ताणामादिभूतस्त्वं देवानां मीतिवद्धनाः। शा

तृतीयोद्वाहजं पापं मृत्युं चाशुं विनाशय ।। इति तत श्राचार्येण मासपद्माद्युक्तिख्य काश्यपगोत्रामादित्यस्य पुत्रीं सिवतुः पौत्रीमर्कस्य प्रपौत्रीमिमामर्ककन्यामित्युक्ते वरः 'स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवा' इति स्कं पठन्नर्कं निरीचेत । तत श्राचार्यो विप्रेः सहाशिषो दत्वाऽमुकगोत्रामुकशर्मणे संप्रददे । इत्यर्ककन्यां दत्वा—

श्चर्ककन्यामिमां विष्र ! यथाशक्तिविभूषिताम् । गोत्राय शर्मणे तुभ्यं दत्तां विष्र ! समाश्रय ॥ १॥ इति पठेत्—

वरस्तु यशो में कामः समृद्धयतामिति प्रथमां धर्मों मे इति द्वितीयां यशोमे इति तृतीयाम् इति त्रीनक्षताञ्जलीनकोपिर चिष्त्वा गायत्र्या परित्वेत्यादिना वा पञ्चावृता स्त्रेणार्कमावेष्ट्य तत्स्त्रं पुनः पञ्चगुणं छत्वाऽर्कस्य स्कन्धे वध्वा बृहत्सामेति रच्चां परिकल्पार्कस्य दिग्विद्ववष्टी कुम्भान् संस्थाप्य वस्त्रेण त्रिस्त्रेण चावेष्ट्य हरिद्रागन्धाद्यन्तः श्लिप्त्वा तेषु नाम्ना महाविष्णुमावाद्य षोडशोपचारेः सम्पूज्य स्थिण्डलेऽग्निं प्रतिष्ठाप्य आधारावाज्येनेत्यन्तमुक्त्वाऽत्र प्रधानं बृहस्पतिमन्निं वायुं सूर्यं प्रजापितं चाज्येन शेषेणत्याद्यक्त्वाऽऽधारान्तेसंगोभिरिक्तरा बृहस्पतिस्त्रिष्टुप् अर्कविवाहहोमे विनियोगः ॥

ॐ सङ्गीभिराङ्गिरसो नज्ञमाणो भग इ वेदर्यमणं निनाय । जने मित्रो न दम्पती श्रनक्ति बृहस्पते वाजया श्रुरिवाजी स्वाहा॥१॥

बृहरूपतय इदं न ममेति त्यजेत्। यस्मै त्वा वामदेवोऽशिस्त्रिष्टुप् अर्कविवाहहोमे विनियोगः॥

ॐ यस्मै त्वा कामकामाय वयं संम्राड्यजामहे। तमस्मभ्यं कामंददस्व यथेदंत्वं घृतं पिष स्वाहा।। २।। भ्रानय इदं न सम । तता व्यस्तसमस्तव्याहृतिभिर्ह्वा स्विष्ट-कृदादि कर्मशेषं समाप्यार्के प्रदक्तिणीकृत्य।

मथा कृतमिदं कर्मे स्थावरेण जरायुणा। श्रकीपत्यानि नो देहि तत्सर्व ज्ञन्तुमहसीति॥१॥

१ 🕉 बृहस्पतेति यञ्चवेदिनाम् । २ ॐ अशिन्दूतमिति ।

प्रार्थ्या वार्याय गोयुग्ममन्येभ्यश्च विष्रेभ्यो यथाशिक दिल्लां दत्वा शान्तिस्कं जप्त्वा पूज्योपस्करानाचार्याय दत्वा दिनचतुष्टयमि कुम्भांश्च रचेत् । कुम्भेषु महाविष्णुं पूजयेच पञ्चमदिनकृत्यं ब्राह्मे-

चतुर्थे दिवसेऽतीते पूर्वेवत्तां प्रपूच्य च।। विसः इोममर्गिन च विधिना मानुषीं पराम् । नैव पुत्रपौत्रसमृद्धिमान् ॥ १ ॥ **उद्वहेदन्यथा** इति श्रीभट्टनीलकएठकृते भगवन्तभास्करे शान्तिमयूखेऽकंविवादः।

नारदः-कुलीर-दृष-चापान्त्य-तृ-युक्-कन्या- तुला-घटाः । राशयः शुभदा ज्ञेया नारीणां प्रथमार्चवे ॥१॥ कुलीरः = कर्कटः । चापम् = धनुः । श्रन्त्यः = मीनः । नृपुङ् = मिथुनम् । घटः = कुम्भः।

स्मृतिचन्द्रिकायाम्-

शुक्रपत्ते सुशीला स्यात्कृष्णे पत्ते सा कुलटा भवेत् । कृष्णस्य दशमीं यावत् मध्यमं फलमादिशेत् ॥ १ ॥ तथा तत्रैव-श्रमा-रिक्ताऽष्ट्रमी-षष्टी-द्वादशी-प्रतिपत्स्वपि । परिघस्य च पूर्वार्द्धे व्यतीपाते च वैधृतौ ॥ २ ॥ सन्ध्यास्पस्रवे विष्ट्यामशुभं प्रथमात्तेवम् रोगी पतिव्रता दुःखी पुत्रिणी भोगभागिनी !। ३ ॥ पतित्रता क्रेशयुक्ता सूर्यवारादिषु क्रमात । कश्यपस्तु-अष्टमी-षष्ट्यमा-रिक्ता-द्वादशी-सङ्क्रमेऽपि वा । वैधृतौ व्यतीपाते च प्रहणे चन्द्र-सूर्ययोः ॥ १॥ विष्टचां सन्ध्यास्र निद्रायां दुर्भेगा प्रथमार्त्तेवा । नत्तत्रफलमाइ गर्गः-सुभगा चैव दुःशीला बन्ध्या पुत्रसमन्विता । धर्मेयुक्ता व्रतव्नी च परसन्तानमोदिनी ॥१॥ मुपुत्रा चैव दुःपुत्रा पितृवेश्मरता सदा ।

दीना प्रज्ञावती चैव पुत्राढ्या चित्रकारिणी।। २ ॥

साध्वी पितवता नित्यं सुपुत्रा कष्ट्रचारिणी।
स्वकर्मनिरता हिंसा पुण्या पौत्रादिसंयुता॥३॥
नित्यं धनकथासक्ता पुत्रधान्यसमन्विता।
मुकार्थाट्या धनवती दस्रचादिः क्रमात्फलम्॥४॥
स्मृतिरत्ने-शुभं चैव तु पूर्वाह्वे मध्याह्वे मध्यमं फलम्।
स्रपराह्वे तु वैधव्यं पूर्वरात्रे शुभं भवेत्॥४॥

मध्यरात्रे तु मध्यं स्यात्पररात्रे शुभान्विता । कश्यपः-मिलाना मन्दवारे तु रात्राविप तथैव चेति । स्मृत्यन्तरे-मध्याद्वे तु भवेद्वेश्या निशीथे विधवा भवेत् ॥ तथा-स्रमा-सङ्क्रान्ति-विष्ट्यां च व्यतीपाते च वैधृतौ ।

परिघस्य तु पूर्वार्द्धे षट् षट् गएडातिगएडयोः ॥ १ ॥ व्याघाते नवशुळे तु नाड्यः पश्च चतुर्दश । वैधव्यपर्थहानि च स्नुतनाशं महद्भयम् ॥ २ ॥ वैधव्यं शत्रुष्टद्धं च दारिद्यं ज्ञोणजीवनम् । तेजोहानि समायाति सदा पुष्पवती क्रमात् ॥ ३ ॥ स्थलभेदे फलभेदमाह विशिष्टः—

ग्रामाद्वहिः परग्रामे वाचेत्स्याद्व्यभिचारिणी ।
पतिव्रता पतिस्थाने सुशीला गृहमध्यके ॥ ४॥
ग्राममध्ये तु दृद्धिश्र विधवा च दिगम्बरा ।
परागारे च दुःशीला श्रायुष्यं जलसिन्नधी ॥ ५॥
वनमध्ये तु कन्याया धनधान्यसमृद्धिदा ।

परागार इत्यनेनैव पितृभातृगृहे निषिद्धम् । तथा च शिष्टाचारः। विशेषनिषेधस्तु न दश्यते । तथा । चन्द्रे सद्गुगसंयुक्ते देवरातः मनाच्छुभम् । शाबाशीचेऽपि अशुनमिति गुरवः । वस्त्रफलमाद्व वशिष्ठः - सुभगा रवेतवस्ता स्याइटटवस्ता पतित्रता । चौमबस्ता चितीशा स्यान्नववस्ता सुखान्विता ॥ १ ॥ दुर्भगा जीर्णवस्ता स्याद्रोगिणी रक्तवाससा । नीलाम्बरधरा नारी विधवा पुष्पिता यदि ॥ २ ॥ मिलनाम्बरतो नारी दरिक्रा स्याद्रजस्वला ।

रजोबिन्दुफलमाइ स एव--

वस्त्रे स्युर्विषमा रक्तविन्द्वः पुत्रमाष्त्रुयात् । समाश्चेत्कन्यका चेति फलं स्यात्मथमार्चवे ॥ १ ॥ देवरातः-सम्मार्ज्जनी-काष्ठ-तृर्णा-ऽग्नि-सूर्णन्

इस्ते द्धाना कुलटा तदा स्यात्। तन्योपभोगे तपसि स्थिता चेद्

दृष्टं रजो भाग्यवती तदा स्यात् ॥ २ ॥

नारदः—तिथ्यृत्तवारा निन्धारचेत् शेफः कर्म निवारयेत्।
दोषाधिके ग्रणान्यत्वे तत्तथाऽपि न कारयेत् ॥ १ ॥
दोषान्यत्वे ग्रणाधिक्ये शेफः कर्म समाचरेत् ।
निन्धत्तं-तिथिवारेषु यदि पुष्पं प्रदृश्यते ॥ २ ॥
तत्र शान्ति प्रकुर्वीत घृत-दूर्वा-तिलान्ततेः ।
प्रत्येकं शतमष्टौ च गायत्र्या जुहुयात्रतः ॥ ३ ॥
स्वर्ण-गो-भूतिलान द द्यात्सर्वदोषापत्रुत्तये ।
भर्ता तत्राभिगमनं वर्ष्णयेच्छस्तदर्शनात् ॥ ४ ॥
विशिष्ठोपि-प्रभतदोषं यदि दृश्यते तत्पूष्पं ततः शान्तिक्दर्भ कार्यः

वशिष्ठोपि-प्रभूतदोषं यदि दृश्यते तत्युष्पं ततः शान्तिककर्म कार्यम् । विवर्ष्णयदेव तदैकशय्यां यावद्रजोदर्शनमन्यघस्त्रे ॥ ४ ॥ श्रातवानां तु नारीणां शान्ति वश्यामि शोनकः । तिथिवारर्त्तयोगेभ्यो लग्नेशसनवांशकात् ॥ ६ ॥ प्रदेभ्यो दुःस्थितेभ्यक्ष तत्तद्दोषस्वयाय स । श्रत्र पुत्रस्य लाभाय दम्पत्योरभिदृद्धये ॥ ७ ॥ पश्चमेऽह्मि चतुर्थे वा ग्रहयज्ञपुरःसरः । तस्मित्रहनि कत्त्वयमृतुहोमं विधानतः ॥ ८॥ श्राचार्य वर्येत्पातर्भुवनेश्वरितुष्ट्ये । 🕐 होमार्थ च जपार्थ च वस्येद्दत्विजा बहून्॥ ६ ॥ यजमाना दिजैः सार्द्धं शान्तिहोमं समाचरेत्। गृहादीशानदिग्भागे देवतापूजनाय च ॥१०॥ द्रोणमगाणधान्येन त्रीहिराशित्रयं भवेत्। कुम्भत्रयं न्यसेद्राशौ तन्तुवस्त्रादि-वेष्टितम् ॥११॥ पूरयेत्तीर्थसिललैः प्रतिक्रम्भं पृथक् पृथक्। सुक्तेनाथ नवर्चेन प्रसुव श्राप इत्यथे।।१२॥ ऋचायाः प्रवतस्तद्वद्गायत्र्या च ततः क्रमात् । मध्यक्कममे तिपेद्धान्यमौषधानि च हेम च ॥१३॥ ततश्च पश्चरत्नानि गन्धपुष्पाचतायुतान् । श्रीषधानि च वक्ष्यन्ते मुनिभिः शान्तिकारणात् ॥१४॥ श्रौदुम्बरं क्रुशा दूर्वा राजीवं चम्पविन्वकाः। विष्णुकान्ताऽथं तुलसी वहिषं शङ्खपुष्पिका ॥१५॥ शतावर्थेश्वगन्था च निगुएडी सर्पपद्वयम् । श्चपामार्गः पलाशश्च पनसो जीवनस्तथा ॥१६॥ प्रियङ्गवश्च गोंधूमा ब्रीहयोऽरवत्थ एव च । चीरान्नद्धिसपिंश्च पर्यं चैव तथोत्पतान ॥१७॥ कुरएटकश्च गुङ्जा च वचा ग्रुस्तकभद्रका इति । द्वात्रिशदौषधानीह गायत्र्या सर्वेमाहरेत् ॥१८॥ गजाश्वरथ्यावल्पीकसङ्गमाद्धदर्गोकुलात् 💎 🥼 राजद्वास्प्रदेशाच मृदमानीय नित्तिपेत् ॥१६॥

कुम्भस्थापनमित्याह तत्त्रम्भन्त्रेण कार्यत्। मृत्तिका श्रौपथादीनि मन्त्रेण पन्निपेत् क्रमात् ॥२०॥ क्रम्भोपरि न्यसेत्पात्रं कांस्यं वा ताम्रपेव वा । मृन्मयं वेग्रुपात्रं वा स्वस्ववित्तानुसारतः ॥२१॥ पान्नोपरि न्यसेद्वस्तं प्रतिमां भ्रुवनेश्वरोम्। तन्मूलं वा न्यसेत्पात्रे इन्द्राणी च पुरन्दरम् ॥२२॥ **श्राचायेः** पूजयेदेवीमङ्गाद्यावरणानि श्चन्यो वा पूजनं कुर्याद् गायत्र्या मन्त्रसारया ॥२३॥ पूजयेदेवीमिन्द्राणीमासु नारिषु । क्रमेख पूजरेदिन्द्रं इन्द्रं त्वा द्वषभं वयम्।।२४॥ श्रनेन विधिना चाथ पूजयेद्देवतात्रयम् । त्रावाहनादिसकलैरुपचारैः पृथक् पृथक् ॥२५॥ तन्मध्यमं स्पृशन् कुम्भं मन्त्रेण भ्रवनेश्वरीम्। जपेदाचार्य त्राहोपाच्छ्रोसुक्तं च जपेत्ततः ।।२६॥ स्पृशन्वे दित्ताणं कुम्भमृत्विगेको जपेद्थ। चत्वारि रुद्रमुक्तानि चतुर्भन्त्रोत्तराणि च ॥२७॥ संस्पृशन्तुत्तरं कुम्भं श्रीसूक्तं रुद्रसंख्यया। शन इन्द्राग्नीसूक्तं तत्र चैवं स्पृशन् जपेत् ॥२८॥ कुम्भस्य पश्चिमे देशे शान्तिहोमं समाच्रेत्। श्रन्वाधानं ततः कुर्याद्धोमतन्त्रं समाच्रेत्।।२६॥ पूर्णेपात्रनिधानान्तं कृत्वा कार्यं द्विजैः सह। 🦪 द्वीभिस्तिलगोधूमैः पायसेन घृतेन च ॥३०॥ पायसं श्रवयेत्तत्रे सावित्रं च इविश्व तत् 📙 🦠 कृत्वाऽऽज्यभागपर्यन्तं हविरुद्वासनादिकम् ॥३१॥ तिस्भिश्रेव दूर्वाभिरेकैकावाहुतिर्भवेत् । श्राभिमन्त्रप्रयुक्ताभिगीयत्रीं जुहुयात् क्रमात् ॥३२॥

श्रष्टोत्तरसहस्रं तु शतमष्टोत्तरं तु वा । तिलामिश्रेश्व गोधूमेद्रेव्येणाऽप्याङ्कतीहुनेत् ॥३३॥ जुहुयात्पायसेनेव श्राज्येन च दुनेत्क्रमात् । हविश्रतुष्ट्येनेव मत्येकं शतसंख्यया ॥३४॥ गायत्र्येव तु होतव्यं इविरत्न चतुष्ट्रयम् । ततः स्विष्ट्रकृतं हुत्वा रज्जुमहत्त्रणं तथा ॥३५॥ अयाश्चेत्यादिभिहुत्वा समुद्रार्-मेस्स्कृतः । सन्ततामाज्यधारां तां पूर्णोद्धृति गथाचरेत् ॥३६॥ परिषेचनपर्यन्तं होमशोषं समापयेत् सहौषधिस्थितस्तत्र प्रतिकुम्भस्थितोदकैः ॥३७॥ ऋतुमत्याः स्त्रियाः शान्ति दम्पतीभ्य । सुखाय च । अथाऽभिषेकमन्त्राश्च प्रोच्यन्ते शौनकादिभिः॥३८॥ श्रापोहिष्ठेति नवभिः सुक्तेन च ततः परम्। इन्द्रो अङ्गत्वेनैव पावमानीः क्रमेण तु ॥३६॥ उभयं शृ**णव**च नः स्वस्ति दामिकाश एकया। त्रैयम्बकेन मन्त्रेख जातवेदस एकया ॥४०॥ समुद्रज्येष्ठा इत्यादि चतुर्भिश्च मसिद्धकैः । त्रायन्तामिति मन्त्रैश्च त्रिभिश्चापि यथाऋगम् ॥४१॥ इमा त्रापस्त्रचेनीव देवस्य त्वेति मन्त्रतः । मन्त्रेणाऽथ तमीशानं त्वमग्ने हा इत्यथ ॥४२॥ तप्रुष्टुहीति मन्त्रेण भ्रुवनस्य वितुस्तथा । या ते रुद्रेति मन्त्रेण शिवसङ्कल्पमन्त्रतः ॥४३॥ इन्द्र त्वा द्वषमं वयं मन्त्रैश्चैवाभिषेवयेत् । सा च बस्नान्तरं धृत्वा पुनश्चैवेष्पवासिनी ॥४४॥ उपवासोऽत्र समीपावस्थानम् । विमानभ्यच्ये विधिवद्गन्धपुष्पातनादिभिः ।

धेतुं पयस्विनी दद्यादाचार्याय च भूषणैः ।।४५ ॥
सद्तिणमनड्वाहं भद्द्याद्रुद्रजापिने ।
ऋत्विन्भ्यश्राथ सर्वेभ्यो दद्याद्वे द्त्तिणां तत ।।४६ ॥
महाशान्ति भयच्छाऽथ विभाशिवेचनं ततः ।
ब्राह्मणन् भोजयेच्चेव भुद्धीयात्स्वजनैः सह ॥४७ ॥
स्मृतौ-ब्राह्मणान्भोजियत्वा तु दैवइं भोजयेत्ततः।
एवं यः कुछते शान्ति शौनकोक्तपकारतः॥४८॥।
तद्निष्टं तु सकत्वं सर्वे चाऽि विनश्यति॥ इति ।
इति शौनकोक्तरजोदर्शनदोषशान्तिः।

अथ प्रयोग:--कर्ता देशकाली स्पृत्वा मम परन्याः अधा-रजोदर्शनेऽमुकदुष्टमासादिस्चितारिष्टनिरस्ननार्थे शान्ति कारिषे 💵 इति सङ्कर्ण्य । गरीशपूजन-म्बस्तिवाचन-मौत्रकापूजना अयुव क्रिका-चार्यरिवग्वरणानि कुर्यात्। अथाऽऽचार्यो गृहेशान्यां प्रत्येकं अला---वृत्या पदार्थानुसमयेन कुम्भत्रयं स्यापयेत् । तद्यथा । ॐ महीि द्यी।रति मध्ये तद्दिशोत्तरश्च स्प्रप्टा । ॐ श्रोषध्य इति स्पर्श्वेकोण्ण तेषु स्थानेषु द्रोणप्रमाणान् ब्रीहीन् राशोक्तत्य तेनैव क्रमेश रा वैशायम श्राक्तेलशेष्विति कुम्भत्रयं संस्थाप्य मध्ये प्रंसुव श्राप इति नाविस्न तद्दिषुणे या प्रवत इत्युचा तदुत्तरे गायत्रया बलं चिषवा । जिषक्ति गन्धद्वीरामिति गन्धम्। या श्रोषघीरिति सर्वोषघीः। श्री पथ्या समिति यवान्तिपत्वा । मध्यम एव यव-ब्रीहि-तिल्माप-कार्गुः श्यामाक-मुद्रान ज्ञिप्त्बोदुम्बर-कुश-दूर्वा-रक्तोत्पॅल-पश्चवित्व-क्रिणु कान्ता-तुलसी-वर्हिप-शङ्खपुष्पी-शतावर्यश्वगन्या -निर्मुण्डी '-रः सर्षपा ऽपामार्ग-पलाश-पनर्स-जीवेंक प्रियङ्गु-गोधूम-बीह्यश्वरध्य-स्था दुम्ध-वृत-पद्मपत्र-नीलोत्पल-सितरर्क्तपीत-क्रेरंटक-गुञ्जा-बच्चाभ द्रासुः स्तकाख्यानि द्वात्रिशदीषघानि यथासम्भवं वा गायत्रया चिष्यः।

<sup>3&#</sup>x27;ऑजियं कळशं । २ उँ० वहणस्योत्तं । ३ स्वां गन्धर्वा । 🛎 अळ----कमळ । ५ काले फूळवाले । ६ कटहर । ७ लाउकमल । ८ विज व्यक्ता । ६ तीनरंग की भिगदी या पिया वाँस पीक्रे फूलवाले ।

त्रिषु दूर्वा पञ्चपञ्चव सप्तमृत्तिका फल-पञ्चरत्न सुवर्णानि चिप्त्वा । युवा सुवासा इति वाससा सूत्रेण वा कुम्मकण्ठान् वेष्टयित्वा गन्धादिभिरलंकृत्य पूर्णादवीति यवादिपूर्णपात्राणि निधाय तेषु साष्ट्रदलं श्वेतं वस्त्रत्रयं न्यस्य मध्यमे गायज्या विश्वामित्रो सुवनेश्वरी गायत्री भुवनेश्वर्यावाहने विनियोगः। ॐ १ तत्सिवितुरित भुवने-श्वरीम् । तद्दिचणकुम्भे इन्द्राणीं वृषाकिपरिन्द्राणी पाकः इन्द्राणयाः वाहने विनियोगः। "इन्द्राणीमास्वितीन्द्राणीम्। उत्तरकुम्भे इन्द्र त्वा विश्वामित्र इन्द्रो गायत्री इन्द्रावाहने विनियोगः । इन्द्रः त्वेतीन्द्रं प्रतिमासु स्थाप्य षोडशभिः पञ्चभिवीपचारैरभ्यच्यं मध्य-मेऽ एस इस्रम एशतं वा गायत्री श्रीस्कं च जपेत्। तत एक त्विक् दित्तगुकुम्भे <sup>१</sup>रुद्रस्कानि जपेत्। तानि च कदुद्रायेत्येकादशचम्। इमा रुद्राय तव स इत्येकादशर्चम् । इमा रुद्राय स्थिरधन्वन इति पञ्चर्चम् । त्रा ते पितरिति पञ्चदशर्चम् । तमुद्धहीत्येका । भुवनस्य पितरित्येका । श्रथान्यश्चर्तियुत्तरकुम्मे प्रकादशावृत्तिभी रुद्रं शन्त 'इन्द्राञ्चोति पञ्चदशर्चं जपेत्। अथाऽऽचार्यः कुम्भपश्चिमेऽचि प्रणीय तदोशान्यां प्रहस्थापनादिपूजान्तं कृत्वा तदीशान्यामेकं कुरभं संस्थाप्य तत्र वस्णावाहनादिपूजान्तं कृत्वाऽन्वाद्ध्यात् । तत्राऽस्मि-भन्वाहितेऽग्नावित्यादि चत्तुषी श्राज्येनेत्यन्तमुक्त्वा भुवनेश्वरीमिनद्रा-खीमिन्द्रं च प्रत्येकममुकसंख्यया दूर्वा तिलमिश्रगोधूमपायसाज्येर्प्रहां-आऽमुकसंख्यया समिचवाज्यैः शेषेण स्विष्टकृतसित्यादि यदय इत्य-न्तमुक्त्या परिस्तरणाद्याज्यभागान्तं कृत्वा यजमानेनाऽङ्गप्रधानवेवता उद्दिश्यैताभ्य इदं न ममेत्युक्ते ऋत्विग्मः सहान्वाधानोक्तक्रमेण जुहु-यात्। अन्ये तु गायन्यैव तु होतव्यं हिवरत्र चतुष्ट्यम् । ततः स्विष्टकृतं हुत्वेत्यत्रेन्द्राणीन्द्रयोहोंमानिभधानाच तयोहोंमोऽन्वाधाने चाकीर्त्तन नमित्याहुः। ततः स्विष्टकदादि बलिदानान्तं कृत्वा समुद्राद्मिरिति त्चेन पूर्णीहुति हुत्वा प्रणोताविमोकं कृत्वा ऋत्विग्मः सह सभार्थः यजमानं कुम्भोदकरिमिषिञ्चेत् । तत्र मन्त्राः । आपो हि छेति ध ऋचः य एक इद्विषं यत इति त्रिभिष्ट्वं देवेति ॥॥ ऋचः-उभयं श्वराष्ट्रभावित स्वस्ति द्विशो यमिति। ज्यम्बकमिति। जातवेद्स इति।

१ अम्बेडिन्बके । २ अदित्ये रास्ताः । ३ त्रालारसिद्धः । ४ नमस्ते १५ मंत्राः । वा नमस्ते ६६ सन्त्राः । ५ इद्देशव्शानी । ६ ऋतं वा यस् ।

समुद्र ज्येष्ठा इति ॥४॥ ऋचः । त्रायन्तामिति ३ऋचः । इमा स्राप इति ३ ऋचः । देवस्य त्वेति ३ मन्त्रैः । तमीशानं जगतः । त्वमग्ने रुद्र इत्येकं यजुः। तमुद्धहीति भुवनस्य पितरम्। या ते रुद्रेति। यज्ञात्रत इति ६॥ एते याजुषाः । इन्द्र त्या वृषमं वयमिति ४ऋचः। सुरास्त्वामभिषिञ्चन्त्वित्याद्याः ६पौराणाः । पवमभिषिकः सुस्नातो धृतग्रुक्कवासाः सपत्नीको यजमानोऽग्निमाचार्यादीश्च सद्त्रिणमनड्वाहं भूयसीं च दत्वा प्रहृपीठदेवतानां भुवनेश्वर्यादीनां चोत्तरपूजां कृत्वा । यान्तु देवगणा इति विस्तुज्याऽऽचार्याय प्रतिपाद्य गच्छ गच्छेत्यन्नि विसर्जयेत् । ततो ब्राह्मणाः शान्ति परेयुः । तत्र म-न्त्राः। श्रानो भद्रा इति १० ऋचः। स्वस्ति नोमिमीतामिति १४ ऋचः। त्यमूष्टिवति ३ ऋचः। तच्छं योरिति च। ततो यजमानो द्वादशबाह्य णान् भोजयित्वा सङ्करूप्य वा विप्राशिषोगृहीत्वा सुहृद्युतो भुञ्जीत ॥ श्रथ चन्द्राकीपरागकालीनाद्यरजादर्शने विशेषः! कत्तींककाले मासपत्ताद्युक्तिख्य मम पत्न्याश्चन्द्रस्य सूर्यस्य वा उपरागे प्रथमरजो-दर्शनसूचितानिष्टनिरासार्थे शान्ति करिष्ये। इति सङ्करूप्य प्राग्वत् ऋत्विक्पूजान्तं कुर्यात् । अथाचार्यो गोमयोपलिसे देशे पश्चवर्णैर-इदलं कृत्वा तत्र श्वेतबस्त्रमुदग्दशं प्रसार्थ्य तत्र चन्द्रोपरागे आप्या-यस्वेति राजत्यां प्रतिमायां चन्द्रं सूर्योपरागे तु श्राकृष्णेनेति सीवण्यां षा सूर्यं प्रतिमायामावाह्य तदुत्तरतः स्वर्भानो इति सैक्यां प्रतिमायां राहुमावाह्य यस्मिन् नक्त्रे अहणं तम्नक्त्रवेवतायां सीवर्णप्रतिमायां तत्त्वन्मन्त्रः प्रवावादिनमोन्तैर्नाममन्त्रैर्वाऽऽयाह्य काण्डानुसमयेन षोडशोपचारैः पूजयेत् । तत्र चन्द्राय नत्त्रत्रदेवताभ्यश्च श्वेतानि गन्धादीनि । सूर्याय रकानि । राहवे छुज्णानि । ततः पश्चिमतोऽप्ति प्रतिष्ठाप्य पत्ते ग्रहाबाहनादि-पूजान्तं कृत्बाऽन्वादध्यात्। तत्र चलुषी श्राज्येनेत्यन्तमुक्त्वा चन्द्रं सूर्यं था राहुं नत्तत्रदेवतां पत्ते प्रहांश्रामु-कसंख्यया समिदाञ्यचर्गतलाहुतिभिः शेषेणेत्यादिसमित्स विशेषः। चन्द्रचीदेवतयोः पालाशः, सूर्यस्यार्कः, राहोर्दूर्वा, ताश्च तिस्न एका ssहुतिः। श्रथाज्यभागान्तं कृत्वा यज्ञमानेन द्रव्ये त्यक्तेsन्वाधानक्रमेण त्विग्मिः सह हुत्वा स्विष्टकदादिपूर्णाहुत्यन्तं प्राग्वत्कृत्वैकस्मिन्कुम्मे जल-पड्यग्र्य-रत्न-त्त्रक्-पञ्चन-सर्वीवधी-क्रक्ष्कदूर्वी-क्रुशान् निर्विद्य

सर्त्विक् दम्पती पूर्वदिभिषिञ्चेत्। तत्र मन्त्राः। श्रापो हिष्ठेति ३ ऋचः। इमं मे गङ्गेत्येका। तत्त्वायामीत्येका। श्र•येऽपि समुद्रज्येष्ठा सुरास्त्वामित्यादयश्च शेषं पूर्ववत्। इति दुष्टरजादिशेनशान्तिः प्रयोगः।

#### त्रथ गोमुखप्रसवविधिः ।

गर्गः — पितिरिष्टे सुतारिष्टे मात्रिरिष्टे तथैव च ।
पायिश्वत्तं तदा कुर्यात्तस्य देगपस्य शान्तये ॥
ताद्दशनक्षत्रोत्पत्या सूचिते पित्राद्यरिष्टे प्रायश्चित्तमित्यत्रापि
तत्तिदित्यन्वेति देहलीदीपवत् । तत्तदोषशान्त्यै तत्तत्वायश्चित्तं

कुर्यादित्यर्थः ।

पूषाश्विनोर्गुरौ सर्पमघाचित्रेन्द्रमूलभे एषु ऋदोषु जातस्य कुर्याद्गोजननं तथा ॥ १ ॥ जन्मर्चे वा त्रिजन्मर्चे शुभवारे शुभे दिने। कृत्वाऽभ्यङ्गादिकं सर्वे गृहालङ्कारपूर्वकम् ॥ २ ॥ गामयेने।पलिप्याऽथ गृहस्येशानभागके पङ्कर्ज कर्षिकायुक्तं रजेाभिः श्वेतवर्एकैः॥३॥ वीहींस्तत्र विनित्तिष्य यथाविशानुसारतः नवसूर्पे तु तन्मध्ये रक्तवस्त्रं मसारयेत् ॥ ४॥ स्थापयित्वा शिशुं तत्र प्रुनः सूत्रेण वेष्टयेत्। प्राङ्गुखं तमवाक्पादं तिलगर्भ गतं शिशुम् ॥ ५ ॥ गामुखं दशियत्वाऽथ पुनर्जातं तु गामुखात्। विष्णुर्योनिमिति सुक्तेन गन्येन स्नपयेच्छिशुम् ॥ ६ ॥ गवामङ्गेति मन्त्रेण गवामङ्गेषु संस्पृशीत् । विष्णाः श्रेष्टेन मन्त्रेण गामस्तं तु बालकम् ॥ ७ ॥ श्राचार्यस्तु समादाय पश्चान्मात्रे ददेत्तथा । माता जघन्यभागस्था शिशुमानीय ते मुखात् ॥ 🛎 ॥

ततः पित्रे तदा दद्यात्रातो मात्रे पदापयेत् । वस्त्रे स्थाप्य विताऽस्याऽथ पुत्रस्य मुखमीत्त्रयेत् ॥ ६ ॥ गामत्रं गामयं चीरं दिध सर्पिश्च संयुतस् त्रापे हिष्ठादिभिर्मन्त्रैरभिषिञ्चेत्तः शिशुम् ॥१०॥ मूर्धिन चाघाय तत्पुत्रं तन्मन्त्रेण तदा पिता। त्र्यङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदयादभि जायसे ॥११॥ श्रात्मा वै पुत्रनामाऽसि सङ्घीव शरदः शतम्। मूर्द्धनि त्रिरवघाय तं शिशुं स्थापयेशतः ॥१२॥ पुरवाहं वाचयेत्पश्चाद्त्राह्मणैर्वेदपारगैः दरिद्रायाऽथ विपाय तां गामभ्यच्ये दाव्येत ॥१३॥ गी-वस्त्र-स्वर्ण-धान्यानि दद्यादकीदितः क्रमात् । यथाशक्ति धनं दद्याइब्राह्मणेभ्यस्तदा पिता ।।१४॥ ततो होमं पकुर्वीत स्वस्वशाखोक्तमार्गतः उन्छेखनादिकं कृत्वा चाज्यभागान्तमाचरेत् ॥१४॥ होमस्यैशानदिग्भागे धान्यापरि शुभं घटम् । पश्चगव्यं घटे स्थाप्य तिलाँस्तत्र विनित्तिपेत् ॥१६॥ त्तीरिद्वमकषायांश्व पश्चरत्नानि नित्तिपेत् वस्रयुग्मेन संच्छाद्य गन्धादिभिरथाचेयेत् ॥१७॥ विष्णुं बरुणमभ्यच्ये प्रतिमां च विधानतः प्रतिमां यक्ष्महणः अग्रे तहेवत्यहोमविधानात् ॥१८॥ चकाराच-यत इन्द्रादिभिमेन्त्रैः कुम्भं स्पृष्ट्वाऽभिमन्त्रयेत् । द्धि-मध्वाज्ययुक्तेन होमं कुर्योद्विधानतः ॥१६॥ श्रापे। हि ष्ठेति तिस्भिरप्स में साम इत्यथ । तद्विष्णाः परमं पदमत्तीभ्यां तेऽथ सुक्ततः ॥२०॥

ऋग्भिराभिः पत्यृचं वाऽष्टाविंशतिसंख्यया । श्रशक्तश्राष्ट्रसंख्यं वा दधि-मध्वाज्यसंयुतम् ॥२१॥ श्रादित्यादिग्रहाणां च होमं क्रुयीत्समन्त्रकम् । इति गोस्रुखनसवविधिः ।

श्रथ प्रयोगः-मासपंज्ञाद्युहिलख्यास्य शिशोरमुकर्ज्ञोत्पिस्रूचिता-ऽरिष्टशान्त्यर्थं गोमुखप्रसर्वं करिष्ये। इत्युक्त्वा गरीशपू जनाच।र्यवररी कुर्यात् । अथाचार्यः श्वेताष्टदले वीधिस्थगूर्पे रक्तवस्त्रं विन्यस्य तिला-न्विकीर्य तत्र प्राङ्मुखं शिशुं संस्थाप्य सूत्रेगाऽऽवेष्ट्य गोमुखात् प्रसवं विविन्त्य विब्धुयौनिमिति सुक्तेन पञ्चगव्येन शिशुं संस्नाप्य गवामङ्गेष्विति गां स्षुष्ट्वा विष्णोः श्रेष्ठेनेति शिशुं गृहीत्वा मात्रे दद्यात्। माता पित्रे दद्यात्। पिता च मात्रे दत्वा तन्मुखं समीद्य पञ्चगव्ये-नाऽऽपो हि छेति तिस्मिरमिषिच्याङ्गादिति मूर्धिन त्रिरवद्याय मात्रे दत्वा पुर्याहं वाचयित्वा गामाचार्याय दत्वा प्रहपीत्यर्थं गोवस्त्र-स्वर्ण-घान्यादि दत्वा भूयसी दद्यात्। अथाऽऽचार्योऽप्ति प्रतिष्ठाप्य चक्षुषी ब्राज्येनेत्यन्ते अप श्रापो हि ष्ठेति तृचेन श्रप्सु म इत्यचा च विब्लुं तद्विष्णोरित्यूचा यदमहण्याचीभ्यामिति स्केन प्रहाश्च प्रत्येकमष्टादिसंख्यया द्धिमध्याज्यैः शेषेण स्विष्टकृतमित्याद्युक्त्वा-ऽऽज्यभागान्तं कृत्वाऽग्नेरीशान्यां कुम्भं संस्थाप्य तत्र पञ्चगव्य-तिल-बीहि-श्रीर-द्रुम-कषायान् ज्ञिष्ट्या वस्त्रयुग्मेनाऽऽवेष्ट्य पूर्णपात्रं न्यस्य पूर्णपात्रोपरि तद्विब्लोरिति विब्लास्तन्त्रायामीति वरुणस्याचीभ्या-विति यदमहराश्च प्रतिमा श्रभ्यच्ये इन्द्रेति षड्चो जण्डाऽन्वाधा-नक्रमेश हत्वा कर्मशेषं समापयेदिति गोमुखप्रस्वप्रयोगः।

## श्रथ सदस्तोत्त्पत्तिशान्तिः।

विष्णुधर्मीचारे-

उपरि पथमं यस्य जायन्ते च शिशोद्विजाः। दन्तेर्वा सह यस्य स्याज्जन्म भागवसत्तम!॥१॥ द्विजाः=दन्ताः।

मातरं पितरं वाऽथ खादेदात्मानमेव वा । तत्र शान्ति पवक्ष्यामि तां मे निगद्तः शृखु ॥ २ ॥ गजपृष्ठगतं वालं नौस्थं वा स्नापयेइद्विज! तद्भावे च सर्वे । काश्चने च वरासने ॥ ३॥ सर्वीषधैः सर्ववीजैः सर्वपुष्पैः फलैस्तथा। पश्चगव्येन रत्नेश्च मृत्तिकाभिश्च भागव !।। ४।। सर्वौषधानि सर्वगन्धाश्च विनायकस्नपनविधौ दर्शिताः। स्थालीपाकेन धातारं पूजयेत्तदनन्तरम्। सप्ताहं चात्र कर्तव्यं तता ब्राह्मणभाजनम्।। ५।। श्रष्टमेऽहिन विपाणां तथा देया च दिचाणा। काश्वनं रजतं गाश्व भुवमागारमेव तु ॥ ६॥ दन्तजन्मनि सामान्ये शृखु स्नानमतः परम्। भद्रासने निवेश्यैनं मृद्धिन मृलैः फलैस्तथा ॥ ७॥ सर्वीषधेः सवगन्धेः सर्वबीजैस्तथैव च। स्नापयेत्पूजयेचाऽत्र वहिं सेामं समीर्णम् ॥ ८॥ पर्वतांश्च तथा ख्यातान् देवदेवं च केशवम् । एतेषामेव जुहुयाद्घृतम्यौ यथाविधि ॥ ६ ॥ ब्राह्मणानान्तु दातन्या यथाशक्तया तु दिच्चणा । ततस्त्वलङ्कृतं बालमासने चेापवेशयेत् ॥१०॥ श्रासीनं सूर्यसन्तानवीजैः सुस्नापयेत्ततः। स्रविपबालकानां च तैथ कार्यं च पूजनम् ॥११॥ पूज्यश्च विधिनाऽऽचार्यो ब्राह्मणाः सुहृदस्तथा । इति सदन्तोत्त्विशान्तिः।

अथ कृष्णचतुर्दशीजननशान्तिः। गर्गः-कृष्णपत्ते चतुर्दश्यां प्रस्तेः षड्विधं फलम् चतुर्दशीं च षड्भागां कुर्यादाद्यं शुभं समृतम् ॥ १ ॥ द्वितीये पितरं हन्ति तृतीये मातरं सपृतम्। चतुर्थे मातुर्लं हन्ति पश्चमे वंशनाशनम् ॥ २ ॥ षष्ठे तु धनद्दानिः स्यादात्मनो वंशनाशनम् । तस्मात्सवेषयत्नेन शान्ति कुर्याद्विधानतः ॥३॥ श्राचार्य वरयेद्धीमान पुत्रदारसमन्वितम् स्वकर्मनिरतं शान्तं श्रोत्रियं वेदपारगम् ॥ ४॥ सर्वालङ्कारसंयुक्तं सर्वलत्तणसंयुतम् वृषभे ेेच समासीनं वरदाभयपाणिनम् ।। प्रा शुद्धस्फटिकसङ्काशं श्वेतमान्याम्बरान्वितम् । ज्यम्बकेन च मन्त्रेण पूर्जा कुर्याद्विधानतः ॥ ६ ॥ स्थापयेचतुरः कुम्भांश्रतुर्दित्तु यथाक्रमम् पुरवतीर्थजलोपेतान् धान्यस्योपरि विन्यसेत्। ७॥ स्थापयेत्कुम्भं शतछिद्रसमन्वितम् । पञ्चमृत्पञ्चरत्नानि पञ्च त्वक् पञ्च पन्लवान।। = ।। पश्चधान्यं सुवर्णे च तत्तनमन्त्रैर्विनित्तिपेत् । 🦈 सर्वोषधानि निचित्य स्वेतवस्त्रेण वेष्ट्रयेत् ॥ ६॥ सुरभीषा च पुष्पाणि श्वेतानि परिवेष्टयेत्। सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः ॥१०॥ श्रायान्तु यजमानस्य दुरितत्त्वयकारकाः । त्रावाह्य वारुएँमेन्त्रेरनेन च विधानतः ॥११॥ इमम्मे वरुणेत्यनया तत्त्वायामि ऋचा तथा। त्वन्नो श्रम इत्यनया सत्वन्न इति मन्त्रतः ॥१२॥ श्राग्नेयकुम्भमारभ्य पूजां कुर्याद्यशक्रमम् ।

श्रानो भद्राख्यसूक्तं च भद्रा श्रग्नेश्च स्कतः ॥१३॥ जप्त्वा तु पौरुषं सक्तं कट्ट-द्रं तु क्रमाज्जपेत्। ईश्वरस्याऽभिषेकं च ग्रहपूजां च कारयेत् ॥१४॥ पूजाकमेसु निर्वत्य होमं कुर्याद्विधानतः । गृहादीशानदिग्भागे कुण्डं कार्य विधानतः ॥१४॥ विस्तारायामखातं च श्ररित्रद्वयसम्मितम् समिदाज्य-चरुश्रैव तिल-माषांश्च सर्पपैः ॥१६॥ श्रवत्थ प्रज्ञ-पालाश-समिद्धिः खादिरैः शुभैः। **अष्टोत्तरसद्दर्भ वा अष्टोत्तरशतं तु वा ॥१७॥** अष्टाविंशतिमेतेश्व होमं क्वर्यात्पृथक् पृथक् । त्रैयम्बकेन मन्त्रेण तिलान् व्याहृतिभिः क्रमात् ॥१८॥ कृत्वा होमाश्र कर्त्तव्या श्रस्पदुक्तविधानतः एवं क्रमेण कर्चाव्यं होमशेषं समापयेत् ॥१६॥ सर्वालङ्कारयुक्तानां त्रयाणामभिषेचनम् चतुर्भिः कलशैरिद्धर्बृहत्कुम्भसमन्वितम् ॥२०॥ त्रयाणाम् = माता-पित्-शिश्र्नाम्। घौताम्बराणि धृत्वाऽथ क्वर्यादाज्याऽवलोकनम् । पूर्णाहुति च जुहुयाद्यजमानः समाहितः ॥२१॥ तत्सर्व परया भक्त्या ईश्वराय निवेदयेत् सर्वालङ्कारसंयुक्तां सवत्सां गां पयस्विनीम् ॥२२॥ मतिमां वस्तुयुग्मं च श्राचार्याय निवेदयेत् ॥ श्रन्येषां चैव सर्वेषां कुर्याद्वाह्मणवाचनम् ॥२३॥ तस्मादेतेन विधिना वित्तशाठ्यविवर्जितः । एवं यः कुरुते शान्ति सर्वेपापैः प्रमुच्यते ॥२४॥ सर्वान्कामानवामोति स्थिरजीवी सुखी भवेत्। इति कृष्णचतुर्दशीशानितः।

# श्रथ सिनीवालीकुहूशान्तिः।

गार्ग्यः-सिनीवान्यां प्रस्ता स्याद्यस्य भार्या पशुस्तथा । गजाऽश्वा महिषी चैव शक्रस्यापि श्रियं हरेत् ॥ १ ॥ ये सन्ति सकताः पश्चात्तत्प्रसादोपजीविनः। वर्ज्जयेत्तानशेषांसतु पशु-पत्ति-मृगादिकान् ॥ २ ॥ कुहूमस्तिरत्यर्थे सर्वदेशपकरी स्मृता। यस्य प्रस्तिरेतेषां तस्यायुर्धननाशनम् ॥ ३॥ सर्वगण्डसमस्तत्र देाषस्तु प्रबक्ता भवेत्। तत्र शान्तिविशेषेण परित्यागी विधीयते ॥ ४ ॥ परित्यागात्तत्र शान्ति कुर्याद्वीमान् विचत्ताणः। 👫 परित्यागादिति ल्यप्लोपे पश्चमी। परित्यागं कृत्वेत्यर्थः । तत्कालं तत्त्वणार्द्धेन पुनरेवाऽनुक्रेपनम् ॥ ५ ॥ न त्यजेत्पिएडतो मोहाद्यीद्ज्ञानते।ऽपि वा। तद्योगं नाशयेत्किञ्चित्स्वयं वा नाशमश्तुते ॥ ६ ॥ कल्पोक्तशान्तिः कर्त्तच्या शीघ्रं दे।पापनुत्तये। रुद्रः शक्रश्च पितरः पूज्याः स्युर्देवताः क्रमात् ॥ ७॥ कर्षमात्रस्रवर्णेन तदद्धिंन वा पुनः। श्रयंवा शक्तितः कुर्याद्वित्तशाट्यविवर्जितः॥ =॥ प्रतिमां कारयेच्छम्भेश्रयदुर्भुजसमन्विताम् । त्रिशुलखड्गवरदाभयहस्तां यथाक्रमम् ॥ ६॥ रवेतपुष्पाम्बरधरां रवेताम्बरष्टपस्थिताम्। त्रियम्बकेन मन्त्रेण पूजां क्रुयांचथाविधि ॥१०॥ इन्द्रश्रत्भेता वज्राङ्कशचापः स-सायकः। रक्तवर्णी गजारूढो यत इन्द्रेति मन्त्रतः ॥११॥

पितरः कृष्णवर्णाश्च चत्रहेस्ता विमानगाः। गदाऽत्तसूत्र-कमएडन्वभयस्यैव धारिणः ॥१२॥ ये सत्या इति मन्त्रेण पूजां कुर्यादनन्तरम् । श्राग्नेयीं दिशमारभ्य कुम्भान् कोरोषु विन्यसेत् ॥१३॥ ये सत्यासो हविरद इत्यादिमन्त्र ऋग्वेदे प्रसिद्धः। तन्मध्ये स्थापयेत्कुम्भं शतच्छिद्रसमन्वितम्। निन्तिपेत्पश्चगन्यादींस्तत्तन्यन्त्रैश्च निन्तिपेत् ॥१४॥ कन्पोक्तशान्तिः कर्तेव्या क्वर्याच्छीघं स्वशक्तितः। गोदानं वस्रदानं च सुवर्णं वार्वरां शुभाग ॥१४॥ दशदानानि चे।क्तानि चीरमाज्यं गुडं तथा। श्राज्यावेच्राणपात्राणि तत्तन्मन्त्रेश्च कारयेत् ॥१६॥ समिदाक्यं च होमं च तिलाहोमं च सर्पपैः। श्रश्वतथ-प्लच्च-पालाशसमिद्धिः खादिरैः शुभैः ॥१७॥ श्रष्टोत्तरशतं ग्रुख्यं पत्येकं जुहुयाद्द्विजैः। त्रेयम्बकेन मन्त्रेण तिलान् व्याहृतिभिः पुनः ॥१८॥ चत्रभिः कलशेयुक्तं बहत्कुम्भस्मन्वितम् । शान्तिवत् सकलं कार्यमभिषेकं च कारयेत् ॥१६॥ शान्तिवत् = पूर्वोक्तशान्तिवत् । माता-पित-शिश्ननां च श्राभिषिश्चेतु चारुगौः। श्रङ्करस्याऽभिषेकं च कुर्योद्ज्ञाह्मणभोजनम् ॥२०॥ अन्येषां चैव सर्वेषां ब्राह्मणानां च तपणम् द्विजवाचनपूर्वेकम् यथाशक्तयनुसारेण भ्रथ प्रयोगः -- तत्र चतुर्दश्याः षड्शेषु द्वितीय-वृतीय-षष्टांशेषु जन्म चेहुगोमुखप्रसद्योऽपि कार्यः। कर्ता मासपद्माद्यहिल्ख्याऽस्य शिशोश्चतुर्दर्श्याचभागाविषु सिनीवास्यां कुह्नां वोत्पत्त्या सूचितस्याः ऽनिद्वस्य निरासार्थं ग्रान्ति करिष्यं इति सङ्ग्रहण्य गर्भेश्यपूत्रा-स्व

स्तिवाचनमातृपूजा-वृद्धिश्राद्धाऽऽचार्यादिवरणानि कुर्यात् । तत श्रा-चार्यः सर्षपविकिरणादि कृत्वा पीठादी वरदाभयहस्तां वृषस्थां हैमीं रुद्रप्रतिमां ज्यम्बकमन्त्रेण सम्पूज्य जपेत्। सिनीवालोकुह्वोस्तु रुद्रेन्द्र-पितरः। तत्र रुद्ध ईशानोर्ध्वकरकमात्। त्रिश्लखड्यवरदाभयहस्ता वृषस्थः ज्यम्बकमन्त्रेण । इन्द्रो वज्रांकुश्रधनुःशरकरो रको गजस्थो यत । इन्द्रेति मन्त्रेण पितरः कृष्णवर्णा गदाऽच्च-सूत्र-कमण्डस्वभय-करा विमानस्था ये सत्या इति मन्त्रेण पूज्या इति विशेषः। तत-स्तत्प्राच्यामीशान्यामुदीच्यां वाऽऽग्नेयादिशु चतुरः कुम्भान् मध्ये च शर्ताह्य संस्थाप्य तेषु पञ्चमृत्-पञ्चरत्न-पञ्चरवक्-पल्लव-घान्यानि सुवर्षे सर्वोषधीश्च द्विष्वा श्वेतवस्त्रमालाभिरावेष्ट्य सर्वे समुद्रा इत्यभिमृश्य इमम्मे वरुण तत्त्वायामि त्वन्नो श्रग्ने सत्वन्नो श्रग्न इति क्रमेश वरुशमाबाह्य सम्पूज्य क्रमेश श्रानो भद्रा भद्रा श्रग्ने सहस्राधीर्षां कद्रु दायेति स्कानि क्रमाज्ञप्त्रा महादेवं यथाशकि रुद्राध्यायादिनाऽभिषिच्य प्रहानावाह्य सम्पूज्य गृहेशान्यामित्र संस्थाप्याऽन्वाद्ध्यात्। तत्र चत्तुषी श्राज्येनेत्यन्ते चतुर्दशीशान्तौ रुद्रमश्वतथ सक्ष-पलाश-खदिर-समिद्धिराज्य-चरु-तिल-माष सर्पपैः प्रत्येकममुक्सं ब्यया व्यस्तसमस्तव्याद्वतिभिस्ति लैश्चामुकसं ब्यया यच्य इत्यादि सिनीवाल्यां कुह्यां च रुद्रमिन्द्रं पितरश्च प्रधानदेवताः इयम्बकमन्त्रेण च शक्तितस्तिलहोमोऽधिक इति विशेषः । श्राज्यभागान्तेऽन्वाधानोक्तकमेण होमः । सिनोवाली-कुह्वोस्तु गो-वस्त्र-सुवर्ण-भू-क्षीराऽऽज्य-गुड।न् दत्वा गो-भू-तिल-हिरण्या-ऽऽज्य-वस्त्र-धान्य-गुड-रूप्य-लवणदानानि च दश कृत्वा होमः कार्य इति ततो बित्रदानान्ते कलशोदकैः शतछिद्रेगाऽदेवत्य-मन्त्रैः पत्नी शिशु सहितो अभिषिको पत्रमान आज्यमधेन्य पूर्णा-हति हुत्वा गुरवे घेतुं बासोयुग्मं ऋत्विग्भ्यश्च दक्षिणां दत्वा स्वस्तिवाच्यक्रमेंश्यरापेषं कुर्यादिति कृष्णचतुर्दशीसिनीवालीकुद्व-शान्तिप्रयोगः।

<sup>.</sup> व त्रीतारमिन्द्रः १ २ पितृस्थः स्वभायिस्यः । ३ कन्युत्तीव वसस्ति १६ मन्त्राः । ४ येज १

### अथ दर्शजननशान्तिः।

नारदः-श्रथाऽतो दर्शनातानां मातापित्रोद्दिता । तहोषपरिहारार्थे शान्ति वक्ष्यामि नारदः ॥ १ ॥ पुरायाहं वाचित्वाऽऽदौ क्रतुसङ्कन्पपूर्वकम् । कुराहं वा मराहलं कुर्यात्तदेशे स्थापयेत् घटम् ॥ २ ॥ मण्डलम् = स्थरिडलम् ।

तत्कुम्भे नित्तिपेद्गव्यं द्धि-त्तीर-घृतादिकम्। न्यग्रोधोदुम्बराऽश्वत्थाः स-चूताः प्लत्तकस्तथा ॥ ३ ॥ एतेषां दृत्तमूलानां त्वचादीन पल्लवांस्तथा। पश्चरत्नानि नित्तिप्य वस्त्रयुग्मेन वेष्ट्येत् ॥ ४॥ सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः। श्रायान्तु यजमानस्य दुरितत्त्वयकारकाः ॥ ५ ॥ श्रापो हि ष्ठेति तुचेनाऽथ कयानश्चित्र इत्यचा । यत्किञ्चेदुमृचा चैव समुद्रज्येष्ठ इत्यृचा॥६॥ श्रभिमन्त्रयोदकं पश्चाद्गनेः पूर्वभदेशके। हारिद्रं रक्तकं चैव कृष्णं श्वेतं च जीरकम्।। ७।। एतेषां तएडुलैश्रेव सर्वताभद्रमुद्धरेत्। देवतायाश्र सोम-सूर्यस्वरूपकम् ॥ ८॥ प्रतिमां स्वर्णेजां नित्यं राजतीं ताम्रजां तथा। सर्वताभद्रमध्ये तु स्थापयेद्दर्शदेवताः ॥ ६ ॥ ग्रहवर्षी वस्रयुग्मं तद्वर्षी गन्धपुष्पकम् । श्राप्यायस्वेति मन्त्रेण सविता यत्तर्थेव च ॥१०॥ उपचारैः समाराध्य ततो होमं समाचरेत्। कृत्वा विक्तं मित्रष्ट्राप्य क्रतुसङ्कल्पमीदशम् ॥११॥ **भाषुरारोग्यसिद्धचर्थ** सर्वारिष्टमशान्तये ।

पुत्रस्य दर्शजननदोषनिईरणाय च ॥१२॥ कुमारस्य सर्वारिष्टप्रशान्तये। मातापित्रो: तेषामायुः श्रियं चैव शान्तिहोमं करोम्यहम्।।१३।। समिधश्र चरुद्रव्यं क्रमेण जुहुयात्कृती। हुनेत्सवितृपन्त्रेण सोमो धेतुं च मन्त्रतः ॥१४॥ प्रत्येकं हुनेदष्टोत्तरं शतम्। **ए**तेर्मन्त्रेश्च दर्शस्य देवताहोम श्रष्टाविंशतिसंख्यया ॥१५॥ होममेवं तु क्रत्वाऽथ कुर्याद्धाराऽभिषेचनम्। श्रीस्क्रमायुस्कं च समुद्रज्येष्ठ इत्यृचा ॥१६॥ एतैर्पन्त्रैरभिषेकं मातापित्रोः शिशोस्तथा। ततः स्त्रिष्टकृतं द्याद्धोमशेषं समापयेत्।।१७॥ हिरएयं रजतं चैव कृष्णां धेतुं सदन्तिणाम्। श्चन्येभ्योऽपि यथाश्चन्त्या दातव्या दत्तिणास्तथा।।१८।। ब्राह्मणान् भोजयेदत्र कारयेत्खस्तिवाचनम्। इति दशंजननशान्तिः।

श्चत्र सिनीवालीकुढोर्दशें चोक्तयोः शान्त्योर्घ्यवस्थोक्ता छन्द्रोगपरिशिष्टभाष्ये—

चतुर्द्दश्य अन्त्योऽमायाश्चाऽष्टाविति नवप्रहराश्चनद्रचयकालः। चतुर्द्दश्यष्टमे यामे चीणो भवति चन्द्रमाः।

श्रमावास्याऽष्टमे यामे पुनः किल भवेदगुः।। इति वाक्यात्।

श्रत्रेन्दुराद्ये प्रहरेव तिष्ठते चतुर्थभागेन कलावशिष्टः। तदन्त एव त्त्रयमेति कत्स्ना ज्योतिर्विदश्चक्रविदो वदन्तीति च वाक्यात्। श्रत्र चतुर्देश्यन्त्याऽमाद्ययामयोरणुश्चन्द्रः शास्त्रस्य चश्चषोर्वा गोचरो भवति, स कालो दृष्टचन्द्रत्वात् सिनीवाली। श्रमान्त्योपान्त्यया-मयोः शास्त्रचतुषोरगोचर इति चीणश्चन्द्रः स कालः कुहुर्मध्यमाः पञ्चयामादर्शे इति व्यवस्थया शान्तिव्यवस्थेति। परे तु चतुर्दशीमा-त्रयुक्तेऽहोरात्रे वर्तिग्यमा सिनीवाली प्रतिपन्मात्रयुतेति कुहुः। वार- त्रयस्पश्चिमध्यमाऽहोरात्रवर्तिन्यमा दर्शः । तस्मिन् चतुर्दशीप्रति-पदोरभावेनोभयलज्ञणानाकान्तत्वात् । तथाऽवमवती चामा दर्शः । केवलचतुर्दशी-केवलप्रतिपद्युक्तवाभावात् । श्रतिस्रस्पर्शिन्यामबमत्यां वा सिनीवाली कुद्धशान्तिपाण्त्यभावाद्दर्शशान्तिपातिरितियुक्तमाहुः ।

श्रथ द्रश्रजननशान्तिपयोगः—कत्तांऽस्य कुमारस्य कुमार्या वा दर्शजनमस्चितानिष्टनिवृत्त्यर्थं शान्ति करिष्य इति सङ्कल्य गणेशपूजा-स्वस्तिवाचनाऽऽचार्यादिवरणानि कुर्यात्। श्रथाऽऽचार्यः सर्वपविकिरणं प्रोक्तणादि कृत्वा ग्रुद्धभूमौ जल्लपूर्णं पञ्चगद्ध-पल्लव-त्वक्-रत्नयुतं वासोयुग्मवेष्ट्रितं कुम्मं धान्योपिर संस्थाप्य सर्वे समुद्रा इति तीर्थान्यावाद्याऽऽपो हि ष्टेति त्चेन क्यानश्चित्र इत्युवा यिकञ्चेदमित्युचा समुद्रज्येष्टा इति त्चेन चामि-मन्त्र्य तन्नैऋत्यदेशे पञ्चरक्ररिक्षतैस्तर्युक्तैः सर्वतोभद्धं कृत्वा स्वर्णप्रतिमयोर्थे सत्यास इति पितृन् तद्वित्ये कुर्यप्रतिमायामा-प्यायस्वेति सामे तदुत्तरे ताम्नप्रतिमायां सविता प्रधातादिति सूर्यं चावाद्य सम्पूज्य—

त्रायुरारोग्यसिद्धचर्थं सर्वारिष्टप्रशान्तये । तेषामायुः श्रिये चैव शान्तिहोमं करोम्यहम्॥

इत्युक्त्वा तत्पश्चिमे कुण्डे स्थण्डिले वार्डामं प्रतिष्ठाण्य तदीशान्यां प्रहान् सम्पूज्याऽन्वाधान आधारावाज्येनेत्युक्त्वा पितृन् समिच-रूपामष्टाविशितवारं सोमं सूर्यं वाऽष्ट्र)त्तरशत्वारं स्रेषेणोत्पाद्यज्य-भागान्तेऽन्वाधानक्रमेण पूजामन्त्रेईत्वा माता-पितः सिश्चत्र द्विरण्यव-णामिति पश्चदशर्चेनायुष्यं वर्चस्यमिति दश्चेन समुद्रज्येष्टा इत्युचा च जलधारसाऽभिषिच्य स्विष्टकृत्वादि समापयेत् । यजमानो बलि-दानपूर्णाद्वत्यन्ते हेम-रूप्य-कृष्ण्येनुराचार्याय ऋत्विगम्यश्च यथाशिक दिच्णां दत्त्वा विप्रान् संभोज्य स्वस्तिवाचनं कुर्यादिति दर्शशान्तिः।

#### अथ ज्येष्ठाशानितः।

घटिकैका च मैत्रान्ते ज्येष्ठादौ घटिकाद्वयम् । तयोः सन्धिरिति क्रेयं शिशुगयदं समीरितम् ॥ १ ॥

🏿 मथमे च द्वितीये च ज्येष्ठर्चे च तृतीयके । 🗦 पादत्रये जातनरो ज्येष्ठोऽप्यत्र प्रजायते ॥२॥ ष्येष्ठान्त्यपादजातस्तु पितुः स्वस्य विनाशकः। जायते नात्र सन्देहो दशाहाभ्यन्तरे तथा ॥ ३॥ क्र्येष्ठर्त्ते कन्यका जाता हन्ति शीघं धवाग्रजम्। तच्छान्ति तस्य वक्ष्यामि गएडदोषमशान्तये ॥ ४ ॥ सुदिने शुभनत्तत्रे चन्द्रतारावलान्विते । स्रुतकान्ते तथा कुर्याङ्क्येष्ठाशान्ति विधानतः ॥ ५ ॥ वज्राङ्कशघरं देवं ऐरावतगजान्त्रितम् कुर्याच्छचीपति रम्यं देवेन्द्रं सुरनायकम् ॥ ६ ॥ कर्षमात्रसुवर्णेन कर्षार्द्धेनाथ पादतः । तिद्वधानं प्रक्ववीत वित्तशाट्यं न कारयेत् ॥ ७॥ शालि-तण्डलसम्पूर्णं कुम्भस्योपरि पूजयेत् । इन्द्रायेन्द्रो मरुत्वत इति मन्त्रेण वाग्यतः ॥ = ॥ गन्धपुष्पैर्घूपदीपैर्नानाभक्ष्यनिवेदनैः पूजयेद्विधिना विष ! लोकपालगणान्वितम् ॥ ६ ॥ रक्तवस्त्रद्वयोपेतं पूजयेत् सुरनायकम् । तत्र संस्थापयेत् कुम्भांश्चतुर्दित्तु विशेषतः ॥१०॥ तन्मध्ये स्थापयेत् कुम्भं शतबिद्रसमन्वितम्। पुरायोदकसमायुक्तान् वस्रयुग्मेन वेष्टितान् ॥११॥ कुम्भेषु विन्यसेद्धीमान पश्चगव्यं समन्त्रकम् । पश्चामृतं पश्चरत्नं सृत्तिकाः पञ्चसंख्यकाः ॥१२॥ पञ्चरुत्तकषायांश्च पञ्चपंन्तवकांस्तथा सुवर्ण-कुश-द्वीश्र शतौषधि विनित्तिपेत् ॥१३॥ पुजयेद्वारुरोर्भन्त्रैः कुम्भान् धीमान् पयन्नतः ।

त्वन्ना अग्ने जपेदादौ सत्वन्नोऽपि द्वितीयकम् ॥१४॥ समुद्रज्येष्ठा इति च इमं मे गङ्गे चतुर्थकम्। पूजयेद्वस्रयुग्माट्येश्रतुरःकलशानिप जपं कुर्युः प्रयत्नेन मन्त्रैरेभिद्विंजात्तमाः । श्राना भद्रा अपं चादौ भद्रा श्रग्ने द्वितीयकम् ॥१६॥ इन्द्रसक्तं रुद्रजाप्यं जपं मृत्युञ्जयं ततः । इत्थं सम्पूज्य देवेशं वरुएां कुम्भसंस्थितम् ॥१७॥ म्रुसङ्कल्पविधानेन होमकर्म ततश्ररेत समिद्धित्रह्मरुचस्य शतमध्टोचरं तथा ॥१८॥ सर्विषा चरुणा चैव मूलमन्त्रेण वाग्यतः। हुनेज्जाप्यं च तेनैव यत इन्द्रभयेति च ॥१८॥ तिलान् व्याहृतिभिहुत्वा शतमष्टोत्तरं पृथक्। भार्या-शिशु-ंसमेापेतं यजमानं विशेषतः ॥२०॥ श्रभिषेकं पकुर्वीत सुक्तैर्वारुणसंज्ञितै: । समुद्रज्येष्ठादिभिर्मन्त्रैरिमं मे वरुणस्तथा ॥२१॥ द्यौः शान्त्येत्यादिभिर्मन्त्रैरभिषेकं समाचरेत्। श्रभिषेकनिष्टत्तौ तु यजमानः समाहितः॥२२॥ शुक्राम्बराणि घृत्वाऽथ कुर्यादाज्यावळेकिनम्। रूपं रूपेति मन्त्रेण चित्रं तचत्तुरेव च ॥२३॥ देवतापुरतः स्थित्वा धूपदीपनिवेदनम्। दद्याचाचमनं सम्यक् ताम्बूलाऽध्यं तथैव च ॥२४॥ नमस्ते सुरनाथाय नमस्तुभ्यं शचीपते! यहाणार्घ्यं मया दत्तं गएडदोषप्रशान्तये ॥२४॥ कार्यं तत्पूजकादीनां कारितं यत्फलं शुभम्। लब्ध्वा तु तत्फलं सर्व देवेन्द्राय सम्पेयेत् ॥२६॥

श्राचार्याय च गां दद्यात् सुशोलां च पयस्विनीम् ।

यत्त-गन्धर्व-सिद्धैश्र पूजितोऽसि शचीपतं ! ॥२८॥

रक्तवर्णी

वस्रयुग्माभिधानां 👚

वस्त्रयुतां सर्वालङ्कारभूषिताम् ॥२७॥

च यथाविभवसारतः।

दानेनाऽनेन देवेश ! गएडदोषं विनाशय। श्रष्टोत्तरशतं संख्यां कुर्याद्वब्राह्मणभोजनम् ॥२८॥ तेभ्योऽपि दिच्छां दत्वा मिणपत्य चमापयेत्। इमां कृत्वा ज्येष्ठाशान्ति यथाविध्युक्तमार्गेतः ॥३०॥ गग्डदोषं विनिर्जित्य श्रायुष्मान् जायते नरः। दृद्धगार्ग्येण शौनकाय विशेषतः ॥३१॥ ज्येष्ठानत्तत्रसम्भृतगएडदे।षप्रशान्तये श्रज्ञानाद्वाऽथवा ज्ञानाद्वेकल्पाद्वा धनस्य च ॥३२॥ वा तत्सर्वे यन्न्युनमतिरिक्तं चन्तुमहिसा। अथ प्रयोगः —गोमुखप्रसर्वं कृत्वा श्रस्य शिशोज्येष्टाजनन-सूचितसकलारिष्टनिरसनद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थे शान्ति करिष्य इति सङ्गरूष । गणपतिपूजन-पुरायाहवाचन-नान्दीश्राद्धाचार्यऋत्विक्-चतुष्टयवरणानि कुर्यात् । तत श्राचार्यः सर्वपविकिरणभूमिप्रोत्तर्णे फ्रत्वा महीद्यौरित्यादि-विधिना शालितण्डुलपूर्णे कुम्मं संस्थाप्य पूर्णपात्रोपरि हैमीमिन्द्रपतिमां 'इन्द्रायेन्दा महत्वत इति मन्त्रेण रक्तवस्त्रद्वयेन गन्धादिभिश्च वाग्यतः पूजयेत् । तत इन्द्रभिन्नान् लोकपालान् समन्तादावाह्य पूजयेत् । ततः पूर्वादिदिन्नु चतुरः कुम्भान्मध्ये शतिञ्चद्रं पुण्योदकवस्त्रमाल्ययुतं संस्थाप्य दिक्कुम्मेषु पञ्चगब्य-पञ्चामृत-पञ्चरत्न-पञ्चमृत्तिका- पञ्चवृत्तकषाय-पञ्चपत्तव-सुवर्ण-कुश-दूर्वा-शतीषधीश्च दत्वा पूर्वकलशे त्वन्नो अग्न इति स त्वन्नो श्रग्न इति दिल्लो इमं मे वरुण इति पश्चिमे तस्वायामीत्युत्तर च वरुगमावाह्य वस्त्रपुष्पाद्यैः पृजयेत् । ततश्चत्वारः ऋत्विजः। म्रानो भद्रान्ते म्रग्ने पुरुषसूक्तं 'कद्भुद्रायेति स्कानि जपेयुः।

<sup>(</sup>१) त्रातारमिन्द्र । (१) वन्नसूक्तम् ।

श्राचार्यो मूलमन्त्रं 'इन्द्रं विश्वा श्रवीवृधमित्यष्टर्चे इन्द्रसूकं रुद्रं मृत्युक्षयं च जपेत्। ततोऽश्लि श्रहांश्च प्रतिष्ठाप्याऽन्वादध्यात्।

श्रत्र प्रधानिमन्द्रं पलाशसिमदाज्यचरुद्रज्यैरष्टशतसंख्ययाऽष्ट-सहस्रसंख्यया वा प्रजापितं तिलद्र्व्येणाऽष्टशतसंख्यया व्याहृतिभिः शेषेण स्विष्टस्रतिमत्यादिबल्यन्ते पूर्णाहृति पूर्णपात्रविमोकं च स्तवा सभार्यं सिशशुं यजमानं वास्णैः स्तकः समुद्रज्येष्टा इमं मे वस्ण द्यौः शान्त्येत्यादिभिरभिषिञ्चेत्। ततो रूपं रूपमित्याज्यमवलोक्य तत्वात्रं सद्त्तिणं ब्राह्मणाय दत्वा इन्द्रं सम्पूज्य नमस्ते सुरनाथाय नमस्तुभ्यं शचीपते!। गृहाणाद्यं मया दत्तं गण्डदोषपशान्तये। इत्यर्घ दत्वाऽऽचार्य्यत्विगादिभ्यः श्रेयो गृहीत्वा इन्द्राय समर्प्या-ऽऽचार्य्याय पर्यास्वनः गां रक्तवस्त्रद्वयं च दत्वोत्तरपूजान्ते इन्द्रं विस्त्रय प्रतिमाम्—

यत्त-गन्धर्व-सिद्धेश्च पूजितोऽसि श्वीपते !
दानेनाऽनेन देवेश ! गण्डदोषं विनाशय ॥१॥
प्रज्ञानाद्वाऽथवा ज्ञानाद्वैकल्पाद्वा धनस्य च ।
यन्न्यूनमितिरक्तं वा तत्सर्वे त्तन्तुमहसि ॥२॥ इति मन्त्रेण
प्राचार्यायैव दत्वा ऋत्विग्भ्योऽपि यथाशक्ति दित्तणां दत्वाऽद्धिः
विस्तृत्याऽष्टशतं ब्राह्मणान् भोजयेत्।

# अथ मूलशान्तिः।

शौनकः—ग्रथाऽतः सम्प्रवक्ष्यामि मृत्तजातहिताय वै।

माता-पित्रोधनस्यापि कुलज्ञातिहिताय च ॥१॥

त्यागो वा मृत्तजातस्य स्यादष्टाब्दात्प्रदर्शनम्।

ग्राम् त्रजातानां परित्यागो विधीयते ॥२॥

ग्रदर्शनाद्वाऽपि पितुः स तु तिष्ठेत्समाष्टकम् ।

पवं दुहितरि मोक्तं मृत्तजायां फलां बुधैः ॥३॥

<sup>(</sup>१) सयोषा इन्द्र० । (२) व्यम्बकम् ४ ।

#### कन्यायां तु विशेषः--

न वाला इन्ति मूलर्चे पितरं मातरं तथा । 🧢 मृतजा श्वशुरं हन्ति व्यालेजा च तदब्रनाम् ॥ ४॥ मोहेन्द्रैजाऽग्रजं हन्ति देवरं च द्विदैवैजा। शान्तिर्वा पुष्कला चेत्स्यात्तिहिं दोषो न कश्चन ॥ ४ ॥ मुख्यकालं प्रवक्ष्यामि शान्तिहोमजपं ततः । जातस्य द्वादशाहे च जन्मर्चे वा शुभे दिने ॥६॥ समाष्ट्रके द्वादशाब्दे कुर्याच्छान्तिकमादरात् । यदैव शान्तिकं कुर्यात् कर्म तत्र प्रचक्ष्महे ॥ ७॥ संस्कृते पुण्यदेशे तु मण्डपं कारयेद्बुधः । प्रायमिर्भर्मिन्त्रतेस्तायैः प्रोत्तितायां नितौ ततः ॥ = ॥ तत्रोदकुम्भं सुरलक्ष्यं रक्तं व्रखविवर्जितम् । सुवर्जु लं च निर्णिक्तं पूरयेन्निर्मलाम्भसा ॥ ६॥ वस्नावग्रापटतं कुर्यात्पूरयेत्तीर्थवारिणा कूर्चे हेमसमायुक्तं चूतपन्तवसंयुतम् ॥१०॥ स्वस्तिकोपरि विन्यस्य सत्तीरद्वमपन्लवैः द्रोणं वीहींश्र निन्निष्य ईशाने च निधापयेत् ॥११॥ पञ्चरत्नानि निद्धिप्य सर्वौपधिसमन्वितम्। प्रचितं पुष्पगन्धाद्यैः श्रीरुद्रं च पृथक् जपेत्।।१२।। सम्यक् जपेद्वे रुद्रसंख्यया । षडक्स हितं रुद्रस्वतैर्वा बन्दे।गारुद्रसामभिः ॥१३॥ बेहबुचा स्कानि सामानि च त्रीएयेव। कपिञ्जलन्यायात्। एकादशाध-त्रिद्धं क्संख्यया शकितो जपेत्।

१ व्याङजा=म्राश्केषायामुत्पसा । २ माहेन्द्रजां = ज्येष्ठायाँ जाता । १ द्विदै-वजा के विशासायां समुत्पसा ।

तत्राऽपितरथं स्वतं शतरुद्रानुवाककम् ।
रुद्रानुवाकं तथा पुण्यं रचोध्नं च स्पृशञ्जपेत् ॥१४॥
त्रैयम्बकं जपेत्सम्यक् श्रष्टोत्तरसहस्रकम् ।
एकवारं तथा चाऽपि पात्रमानीं स्पृशञ्जपेत् ॥१४॥
जपस्य पञ्चकुम्भाः स्युद्धं यं वा तदलाभतः ।
श्रीरुद्रस्यैककुम्भश्च सर्वस्रकानि तत्र तु ॥१६॥
तथाऽन्यं च शुभं कुम्भं पूर्वोक्तैलक्षाणीयुतम् ।
चतुःमस्रवणां कुर्यात्पञ्चवक्त्रं तु तद्भवेत् ॥१७॥

श्रत्राऽयं साम्प्रदायिकोऽर्थः । श्राद्यपत्ते षट्कुम्भाः । एको रुद्रस्य तस्मिन् शतरुद्रियं रुद्रस्कानि सामानि वा जण्यानि । श्रभि-वेकार्थं पञ्चकुम्भाः । तत्र पूर्वादिकुम्भचतुष्टे तत्राऽप्रतिरथमित्यादिना कमात्स्कचतुष्टयविधिः । मध्ये च ज्यम्बकमन्त्रपावमानीजपविधिः । पवं पञ्चकुम्भाशकौ चतुःप्रस्रवण एक एव । द्वयमिति द्वित्वं तु रुद्रकुम्भमादाय । श्रत एव श्रीरुद्रस्येति न्छोकार्ज्ञेन रुद्रकुम्भ एव पूर्वोको द्वित्वसंख्या पूरणायाऽनूद्यते । चतुःप्रस्रवण एव तु पञ्चकुम्भस्थाने विधीयते । एवं पञ्चवक्त्रं तु तद्भवेदिति पञ्चवक्त्रतो । किरिप पञ्चकुम्भस्थानापत्या सङ्गच्छते ।

वस्नावगुणिवतं कुर्यात् पूरयेत्तीर्थवारिणा ।
पश्चरतं समादाय ताम्रपन्तवसंगुतम् ॥१॥
गजाश्वरथ्यावन्मीकात् सङ्गमाद्ध्यदगोकुलात् ।
राजद्वारप्रदेशाच्च मृद्मानीय नित्तिपेत् ॥२॥
कुम्भस्य नैर्ऋते देशे होमदेशं प्रकन्पयेत् ।
गोमयाकेपिते देशे कुर्यात् स्थिणिडलम्रुत्तमम् ॥३॥
कुत्वाऽभिम्रुखपर्यन्तमुन्छेखादि स्वशक्तितः ।
पूर्णपात्रनिधानान्तं कृत्वा पूजां समाचरेत् ॥४॥
नक्षत्रदेवतारूपं सुवर्णेन प्रयत्नतः ।
भिष्कमात्रेण वाद्भदेन पादेनाद्ध्य स्वद्यक्तितः ॥ ४॥

प्रतिमां लक्षाणोपेतां कारियत्वा विचत्तरणः । 🥕 यद्रा मूलं सुवर्णस्य स्थापयित्वा प्रपूजयेत् ॥ ६ ॥ मूलं मृलाकारं मूल्यमिति कचित्पाठः। तदाप्रतिमामूल्यमित्यर्थः। सुवर्षो सर्वदैवत्यं सर्वदेवात्मकोऽनत्तः । सर्वदेवात्मको विभः सर्वदेवमयो हरिः॥७॥ संस्मरेशिऋतिं श्यामं सुमुखं नरवाहनम्। रत्तोधिपं खड्गहस्तं दिव्याभरराभूषितम् ॥ ८ ॥ प्रतिमापूजनार्थाय वस्त्रयुग्मं प्रकल्पयेत् । पङ्कुजं कारयेद्भूमौ रक्ताभैत्रीहितएडुलैः ॥ ६ ॥ चतुर्विशहले।पेतं शुक्लीवा कर्णिकान्वितम्। तस्यापरि न्यसेत्पात्रं स्वर्धी वा रौप्यमृन्मयम् ॥१०॥ शुद्धवस्त्रेण सञ्ज्ञाच तत्र मृतानि निचिपेत्। मूलानि शतमूलानि तानि सर्वे च वक्ष्यते।।११॥ स्वयमुत्पादयेत्पाज्ञो मूलानां च शतं पिता। मङ्गल्यारच पवित्रारच त्रोषध्यः कथयाम्यहम् ॥१२॥ लक्ष्मणा शतमूला च शिरीषो वेतसस्तथा। सहाका श्वेतमृता च विष्णुक्रान्ताऽथ शह्विनी ॥१३॥ सर्वाची मीननेत्रा च पुत्रपारी कृताञ्जली । पालाशो विन्वकश्चैव रोचना चन्दनद्वयम् ॥१४॥ कृष्णामांसी मुरोशीरं बालकं च तथाऽऽमली। गोजिहा तुलसी ईर्घा शतपुष्पी सलाङ्गली ॥१५॥ ब्रह्मद्रपडी द्रोणपुष्पी वियद्गुः सितसपपाः। पिप्पत्ती काकजङ्घा च त्रायमाणा हुहूस्तथा।।१६॥ ज्योतिष्मती च गन्धारी निर्मन्धा पूर्णकोशिका । मगत्तमा सुभद्रा च गुहूची सेन्द्रवारुणी ॥१७॥

त्रलम्बुकाऽरुदन्ती च कदली केतकी तथा । गोच्चरं शतपर्वा च श्ररिष्टिकाऽपराजिता ।।१⊄।। 📨 बिन्नरुद्धा शतपर्वा निकुम्भा च सुवर्चेला । श्रश्वगन्धा हस्तिकर्णा हरिद्राद्वित्यं तथा ॥१६॥ उष्ट्रवो मधुकारश्र श्रश्वत्थो वकुलस्तथा । सपैत्तीरा ह्यपामार्गी मन्दारश्चाऽतिग्रुक्तकः ॥२०॥ मालती स्वर्णपुष्पा च श्रीपणी श्रीफलं तथा। दर्भमूलं करवीरं मदयन्ती विकङ्कतः ॥२१॥ च्रद्धंसूदनिकस्तथा । पाटला सुरदारुश्र फलं मन्मथरुचस्य पलाशस्य च पन्तवाः ॥२२॥ रास्ना नदीवृत्तमूलं सुरदारुविंदारिका । श्वेतवीर्या श्वेतपाका नीलोत्पलं तथैव च ॥२३॥ नागकेशरमिन्दीरी कुमारी चैव निचिपेत्। तीर्थीम्बु पश्चगव्यं च सर्वीपध्यश्च काञ्चनम् ॥२४॥ यथासम्भवता वाऽपि ग्राह्मं मूलं शतं शुभम् । वीरत्वचा समेतं च शतिबद्धे घटे न्यसेत्।।२४।।

शतमूला=शतावरो । वेतस्य वञ्जुलः । सहका=सहदेवो । श्वेतमूला=पुननेवा । मीननेत्रा=मत्स्याद्यो । पुत्रपारा=पुत्रजीवा । छताञ्जली
=श्रञ्जलिनी 'हाथा होडा' इति प्रसिद्धा । विख्यः । चन्दनद्वयम्=श्वेतं
पीतं च । श्रामला=भूम्यामलको । गोजिह्ना=गंजलिभीति प्रसिद्धा ।
लाङ्गली=कलिहारीति प्रसिद्धा । ब्रह्मदग्डी = श्रधःपुष्पो । करम्बुकः ।
काकजङ्गा=काकाङ्गो । ज्योतिष्मती = कङ्गका । गान्धारी=देवगान्धारी ।
पूर्णकोशिका=कौशातको । भगद्यमा=शिग्रुः । सुभद्रा=सारिवा ।
श्रलम्बुका=तुम्बी । विशाखपर्वा=बचा । श्ररिष्टिका = नागवला । ख्रिञ्चकहा=पिण्डगुङ्कची । शतपत्रा=कमलिनी । निकुम्भा=दन्तीमेदः । सुवचला=सूर्यभका । हस्तिकर्णा=परण्डः । उष्ट्रवः=पीलुः । मधुकारः=
मधुका । सर्जरा=वीजका । श्रतिमुक्तकः=मध्वी । मालती=जाती ।

स्वर्णपुष्पा=कुशली । श्रोफलम्=विस्वम् । मदयन्ती=यूथिका । विकक्कतः=स्नुववृत्तः। श्रर्द्धसूदिनका=पालव्या । मन्मथवृत्तः=श्राम्तः । सुरदारुः = देवदारुः । विदारिका = भूकूष्माएडी । श्वेतवीर्यां = गिरिकर्णी । श्वेतपाका = गुञ्जा । श्रेषाणि स्पष्टानि ।

विष्णुकान्ता सहदेवी तुलसी तु शतावरी । मृलानीमानि गृह्णीयाच्छताऽलाभे विशेषतः ॥१॥ स्थापयेत्कणिकामध्ये वस्रगन्धाद्यलङ्कृतम् कुङ्कुमौषधिसंयुतम् ॥ २॥ कूर्म हेमजलोपेतं कुम्भोपरि न्यसेद्विद्वान् मूर्लं नत्तत्रदैवतम् श्रिध-प्रत्यधिदेवी च दित्तणोत्तरदेशयोः ॥ ३॥ यजेदादौ ज्येष्ठानच्चत्रदेवतम् श्रिधिदेवं **उत्तराषादऋ**चादि श्रनुराधान्तमर्चयेत् ।। ४ ॥ ऐन्द्रादीशानपर्यन्तं पूजयेत् स्व-स्वनामतः स्वलिङ्गोक्तेश्व मन्त्रेश्व मधानादीन प्रपूज्येत् ॥ ४ ॥ पञ्चामृतेन संस्थाप्य श्रावाह्याऽथ समर्चयेत् । उपचारैः षोडशभिर्यद्वा पश्चोपचारकैः ॥६॥ रक्तचन्दनगन्धाढ्यैः पुष्पैः कृष्णसितादिभिः। घृतदी<del>पेस्</del>तथैव मेषशृङ्गादि-धूपैश्र च सुरापोलिकमांसाद्यै-नैं वेद्यै रेादनादिभिः मत्स्य-मांस सुरादीनि ब्राह्मणानां विवर्जयेत् ॥ ८ ॥ सुरास्थाने प्रदातव्यं चीरं सैन्धवमिश्रितम्। पायसं लवणापेतं मांसस्थाने पकन्पयेत् ॥ ६॥ उक्तं गन्धाद्यलाभे तु यथालाभं समर्चयेत् पुष्पान्तं तु समभ्यच्ये होमं कुर्याद्यथोदितम्।।१०।। निर्वापपोत्तणादीनि चरोः कुर्याद्यथाविधि । इविर्षे हीत्वा विधिवन्नैऋत्यैव ऋचा हुनेत् ॥११॥

मेाषुणः परापरेति यसे देवीति वा पुनः । पाचसं घृतसंमिश्रं हुनेदेष्टोत्तरं शतम् ॥१२॥ समिदाज्य चरून् पश्चाच्छान्तितः संख्यया हुनेत् । श्रिधदेवतयाश्रापि जुहुयात् स्व-स्वपन्त्रतः ॥१३॥ चतुर्थ्यन्तेर्नमाऽन्तेश्व स्वाहान्तेः स्व-स्वमन्त्रकेः। नचेत्रदेवताभ्यश्र पायसेन तु होमयेत् ॥१४॥ कृगुष्वेति पश्चदशर्गिभर्जुहुयात्कृशरं ततः । गायत्र्या जातवेदसे त्रैयम्बकमिति क्रमात् ॥१५॥ सीरा युद्धनित तामग्नि वास्ते। ष्पत्यग्निमेव च। नेत्रस्य पतिना गृणानागरिन दृतं तथैव च ॥१६॥ श्रीसक्तेन तथा विद्वान समिदाज्यचरून क्रमात्। ब्राष्ट्रोत्तरशतैर्वाऽपि ब्राष्ट्राविंशतिभिः क्रमात् ॥१७॥ अष्टाष्टसंख्यया वाऽपि जुहुयाच्छक्तितो बुधेः। त्वनः सोमेन पायसं जुहुयानु त्रयोदश ॥१८॥ चतुर्यहीतमाज्यं च यातेरुद्रेति मन्त्रतः । सुवेण जुहुयादाज्यं महाच्याहृतिभिः क्रमात् ॥१६॥ हुत्वा स्वष्टकृतं पश्चात्पायश्चित्ताहुतिर्हुनेत् । अरचार्यो यजमाना वा अग्नौ पूर्णाहुति हुनेत् ॥२०॥ समुद्रादिति सुक्तेन पाजापत्यऋचा तथा । पूर्णीदिव सप्त ते एतैः पूर्णाहुति हुनेत् ॥२१॥ होमशेषं समाप्याऽथ विद्वमारोपयेद्बुधः । 🧈 कुम्भाऽभियन्त्रणं कुर्याद्दिचिर्णनाऽभिवर्शयेत् ॥२२॥ मृत्युप्रशमनार्थीय जपेत्त्रैयम्बकं शतम् । रुद्रकुम्भाक्तमार्गेण रुद्रमन्त्रं स्पृशन जपेत् ॥२३॥ धूपं दीपं च नैवेद्यं कुम्भयुग्मे निवेदयेत् । मुसाद्येत्तते। देवमभिषेकार्थमादरात् . ॥२३॥

तस्मिन् काळे गृहातिथ्यं कर्राव्यं भृतिमिच्छता। पृथक् प्रशस्तं तेनैव नत्तत्रेष्ट्या सहैव च ॥२५॥ श्रभिषेकविधि वक्ष्ये पूर्वाचार्येस्दाहृतम् । भद्रासने।पविष्टस्य यजमानस्य ऋत्विजः ॥२६॥ दारपुत्रसमेतस्य कुर्युः सर्वेऽभिषेचनम् । श्रवीभ्यामिति सुक्तेन पावमानीभिरेव च ॥२७॥ श्रापा हि छेति नवभिर्यत इन्द्रद्वयेन च। सहस्राचतुचेनाऽपि देवस्य त्वेति मन्त्रकैः ॥२८॥ शिवसङ्करपमन्त्रेश्च वस्यमाराध्य मन्त्रकैः। योऽसौ वज्रधरो देवो महेन्द्रो गजवाहनः ॥ मुलजातशिशोदींषं माता-पित्रोव्येपोहतु ॥२६॥ योऽसौ शक्तिथरो देवो हुतभुद्धाेषवाहनः । सप्तजिहः स देवोऽग्निम् लदोषं व्यपोहतु ॥३०॥ योऽसौ दग्डधरो देवो धर्मी महिषवाहनः । मृत्तजातशिशोदींषं व्यपोद्दतु यमस्तथा ॥३१॥ योऽसौ खद्गधरो देवो निर्ऋती राचसाधिपः। वशामयतु मूलोत्थं दोषं बालस्य शान्तिदः ॥३२॥ योऽसौ पाशघरो देवो वरुणश्र जलेश्वरः । नक्रवाहः प्रचेताहो मूलोत्थायं व्यपोहतु ॥३३॥ योऽसौ देवो जगत्पाया मास्तो मृगवाहनः। प्रशामयतु मूलोत्थं दोषं गएडान्तसम्भवम् ॥३४॥ योऽसौ निधिपतिर्देवों गदाभृत्रस्वाहनः । माता-वित्रोः शिशोश्चैव मूलदोषं व्यपोहतु ॥ १४॥ योऽसौ पशुपतिर्देवः पिनाकी दृषवाहनः । अवश्लेषा-मूल-गयहान्तं दोषमाशु व्यपोद्द ।।३६॥ विघ्नेशः चेत्रपो देवो पिनाकी द्यवाहनः।
ग्रारकेषा-मूल-गण्डान्तं दोषमाशु व्यपोहतु ॥३०॥
सर्वदोषमश्मनं सर्वे कुर्वन्तु शान्तिदाः ।
तच्छं योरिषभेकं तु सर्वदोषोपशान्तिदम् ॥३८॥
सर्वकामप्रदं दिव्यं मङ्गलानां च मङ्गलम् ।
वस्नान्तरितकुम्भाभ्यां पश्चाचु तपयेद्वुधः ॥३८॥
ततः शुक्काम्बर्धरः शुक्कमान्यानुकेपनः ।
यजमानो दिचाणाभिस्तोषयेद्दिवगादिकान् ॥४०॥
धेनुं पयस्विनीं दद्यादाचार्याय सवत्सकाम् ।
निऋतिप्रतिमां वस्तं कुम्भं हेम च दापयेत् ॥४१॥
ग्रहार्थे वस्नप्रतिमां तत्तद्गी-भूश्च दापयेत् ।
ग्रहहोत्रष्ठ कापयेदिति किचित्पाठः।

श्रीरुद्रजापिने देयः कृष्णोऽनड्वान प्रयत्नतः ॥४२॥
तत्कुम्भवस्त्रप्रितमां तस्मै द्यात्प्रयत्नतः ।
इतरेभ्योऽपि विष्रेभ्यः शक्त्या द्याच दिल्लाम्॥४३॥
छक्ताऽलाभे ततो द्यादाचार्य-ब्रह्म-ऋत्विजाम् ।
तत्तन्मून्यं प्रदात्व्यं शक्त्या वाऽथ प्रदापयेत् ॥४४॥
श्राचार्याय च यद्दं तदर्दं ब्रह्मणे भवेत् ।
सदस्याय ब्रह्मणोऽर्द्धे ऋत्विग्भ्यश्च तदर्देकम् ॥४४॥
गृह्णीयादाशिषस्तेभ्यः प्रणम्याऽथ स्नमापयेत् ।
द्यादनं पायसादि ब्राह्मणान्भोजयेच्छतम् ॥४६॥
श्राताभे सति पश्चाशदशकं तदभावतः ।
सर्वशान्तेश्च पठनं ब्राह्मणौराशिषस्तथा ॥४७॥
गृह्ण स्नमापयेदिमान् निर्श्वतः पीयतामिति ।
विधाने चरितेऽस्मिस्तु ततो शान्तिभवेद्ध्ववम् ॥४८॥

गगडान्तेष्वेवमेवं स्यात्पुष्पाद्येष्वेवमेव तु । समाष्टके द्वादशाहे कुर्याद्वे शान्तिमादरात् ॥४६॥ म्राथ मलाश्लेषाशान्त्योः प्रयोगः—तत्र कत्तोंककाले म

श्रथ मृलाश्लेषाशान्त्योः प्रयोगः—तत्र कत्तोंककाले मास-पत्ताद्युक्षिक्य ममाऽस्य शिशोः कुमार्या वा मूलाद्यपादादिष्वाश्ले-षायां वा जन्मना सुचितिपत्राद्यरिष्टशान्त्यर्थे शान्ति करिष्य, इत्युक्त्वा गर्णेशपूजन-स्वस्तिवाचन-मातृकापूजनाभ्युद्यिकानि कृत्वाऽऽचार्य-ब्रह्मसदस्यान् ऋत्विजश्चाष्टौ षट् चतुरो वा वृत्वा यथाविभव-मर्चयेत् । तथाऽऽचार्यं श्राचार्यकर्म करिष्य, इत्युक्तवा । यदत्र संस्थितमिति सर्पपान्विकीर्याऽऽपो हि ष्ठेत्यादिभिभु वं प्रोद्येशान्यां महोद्यीरिति स्पृष्ट्वोषधयः समिति द्रोणपरिमितं वीह्यादि क्षिप्त्वा कलशेष्विति रुद्रकुम्मं संस्थाप्येमं गङ्गेत्युदकेनापूर्य्यं गन्यद्वारा-मिति गन्धं या श्रोषधीरित्यौषधीरोषधयः समिति यवान् काण्डा-दिति दूर्वा श्रश्वत्थे व इति पञ्च पञ्चवान् रुवती भीम इति पञ्च त्वचः स्योना पृथिवीति सप्त मृदो याः फलिनीरिति फलं स हि रह्नानी-ति पञ्चरत्नानि हिरएयरूप इति हिरण्यं गायत्र्येति गोमूत्रं पुनर्मनेति गोमयमाप्यायस्वेति पयः दिधकाव्ण इति दिध तेजोसीत्याज्यं देवस्य त्वेति कौशं कुर्चं मधुवातेति मधु स्वादुरिति शर्करां चिष्त्वा युवा सु-वासा इति वस्त्रेण स्त्रेण वा कुम्भकण्ठमावेष्ट्य पूर्णादविरिति पूर्ण-पात्रेण पिधाय ततः प्रागुद्ग्वा चतुर्दित्तु चतुरः कुम्भान् मध्ये चैकं कुम्भां प्रत्येकं मन्त्रावृत्या पदार्थानुसमयेन जपार्थ संस्थाप्य स्द्र-कुरमे सीवर्णप्रतिमायां ज्यम्बकं विशिष्ठो रुद्रोऽनुष्टुप् रुद्रावाहने विनियोगः। ज्यम्बकमिति रुद्रमावाह्य पूत्रयेत्। ततो रुद्रकुम्भं स्पृ-ध्वे कर्त्विक् याज्यश्चेदुद्वैकाद्शिनीं वह्चुवश्चेत् त्रीणि रुद्रस्कानि छ्र-न्दोगश्चेदुद्रसामानि जपेत्। स्कसाम्नामेकद्विज्येकादशावृत्तिः शकितो क्षेया। कदुद्राय घोरः करावो रुद्रो गायत्री इमा रुद्राय कुत्स रुद्र श्राद्या नव जगत्योऽन्तेऽनुष्द्वभी श्राते पितगृत्तमदो रद्धास्त्रिष्टुप् जपे विनियोगः। सामानिति श्रावो राजानं वामदेवो रुद्रस्त्रिष्डुप् तमु ण्डुहि भीमो त्री रुद्रस्त्रिण्डुप् भुवनस्य पितरमृजिश्चारुद्रस्त्रिण्डुप् जपे विनियोगः। ततोऽन्य ऋत्विक् जपार्थकुम्भपञ्चके प्राक् क्रमेण श्राद्यः शिशानेति त्रयोदेशर्चस्येन्द्रोऽप्रतिरथ ऋषिरिन्द्रो देवता चतुश्या वृहस्पतिस्त्रिष्द्वप् जपे विनियोगः। त्वमग्ने यह इत्य-

नुवाकस्य हब्यवाट् रुद्रो जगती जपे विनियोगः। त्वमग्ने वामदेवो-ऽग्निस्त्रिष्टुप् जपे विनियोगः। रत्तोहणमिति पञ्चविद्यार्जस्याङ्गिरसः वायुरिनांस्त्रिष्टुप् जपे विनियोगः। ततो मध्यकुम्भे जपेत्। ज्यम्बकं वसिष्ठोऽनुष्टुप् जपे विनियोगः॥ ११॥ श्रत्रैय पवमानमपि सरुज्ञपेत् । एवं षट्कुम्भाशकौ रुद्रकुम्भं चतुःप्रस्रवर्ण चेति कुम्मद्वयं संस्थाप्य रेद्रैकादशिन्यादि रुद्रकुम्भे जप्त्वाऽप्रतिरथा-दोनि चत्वारि प्रस्नवरोषु ज्यम्बकमन्त्रं पावमानीश्च मध्यमुखे जपेत् । श्रथाचार्यो रुद्रकुम्भान्नैऋत्ये स्थिएडलेऽग्नि प्रतिष्ठाप्य तदीशान्यां नवप्रहस्थापनं कृत्वाऽन्वादध्यात्। तद्यथा। समिद्द्रय-मादायाऽस्थां मूलशान्तौ देवतापरिष्रहाथमन्वाधास्येऽस्मिन्नन्वा-हितेऽग्नावित्यादि चक्षुषी श्राज्येनेत्यन्तमुक्त्वा नवग्रहानधिदेवता-प्रत्यधिदेवता-लोकपालान् विनायकादीश्च प्रत्येकममुकसंख्यया समि-चर्वाज्यैनिऋति प्रतिद्रव्यमष्टोत्तरशतसंख्यया इन्द्रमपश्च प्रत्येकमन ष्टाविशतिसंख्यया घृताक्तपायस-समिदाज्यचरिमविश्वेदेवाद्याश्चतु-विंशति ऋच्देवता अष्टाष्टसंख्यया पायसेन रच्चोहरां कुगुस्वेति पञ्चदश्मिः क्रशरान्नेन सवितारं दुर्गा जातवेद मि रुद्दं ऋत्विक् श्रुति दुर्गा वास्तोष्पतिमग्नि चेत्राधिपति मित्रावरुणौ श्रश्निमेताश्चाऽ ष्टा अष्टसंख्यया कुसरान्नेन श्रियन्तामित्रवर्णामिति पञ्चदशिमः प्रत्यूचमष्टसंख्यया समिदाल्यचहिमः सोमं त्रयोदशवारं पायसेन रुद्रं चतुर्रं हीतेनाज्येन श्रश्नि वायुं सूर्यं प्रजापति बृहस्पतिमिन्द्रं विश्वान्देवान्महाब्याह्मतिभिराज्येन शेषेण स्विष्टकतमित्यादि सद्यो यस्य इत्यन्तमुक्त्वा समस्तव्याहृतिभिः समिदुद्धयमग्रावाद्य्यात्। श्राश्लेषाशान्तो तु सर्पप्रधानदेवतामधिदेवतां बृहस्पति प्रत्यधि-देवतान, पितृन् भगाद्यदित्यचेदिवताश्चेति विशेषः। ततः परिसम् हनादिपूर्णपात्रिनिधानान्तं कत्वाऽग्नेः प्रागुद्ग्वा रक्तैः शुक्केवी तण्डुलै-श्चतुर्वि शहलं पद्मं कृत्वा तत्र प्राग्वत्कुम्भं संस्थाप्य तस्मिन् या म्रावधारिति शतमूलानि तदलामे विष्णुकान्ता सहदेवी-तुलसी-शतावरी कुशमूलानि चिल्वा पूर्णपार्त्र निधाय तत्र साधदलं वासो बितत्य तत्किष्कायां निष्कं तद्दीमतां निम्नतिप्रतिमामन्युकारण् पूर्वकं पत्रचासूतस्नापितां मोष्ठुणा वादः करवे। निम्नतिर्गायकी मेखिया इति संस्थावय —

# संस्मरेतिऋति श्यामं स्रमुखं नरवाहनम् । स्त्रीधिपं खड्गहस्तं दिव्याभरणभूषितम् ॥

—इति ध्यात्वा। तद्द चिण्यत इन्द्रं वो मधुछन्दा इन्द्रो गायत्रीतीन्द्रस्य तदुत्तरतश्चाऽण्डु मे मेघातिथिरापोऽजुल्डुबित्यपां च सौवर्णमितेमे संस्थाण्य पदार्थानुसमयेन स्वस्वमन्त्रेस्ताः पूजयेत्। तत्र वस्त्रयुग्मम् । रक्तचन्दनम् । इन्ल्णपुल्पाणि । मेषश्चङ्गस्य धूपः। आज्यस्य दीपः । पोलिकोदनादि नैवेद्यं ब्राह्मणानां सुरास्थाने सैन्धविमश्चं द्वीरं मांसस्थाने लवण्युक्तं पायसम् । च्रित्रयादीनां तु सुख्यमेव ततः । चतुर्विंशहलेषु प्रागादितो विश्वेदेवाः। विल्णुः। वस्त्यः। वर्षाः। श्रजैकपात् । श्रहिर्वुंधन्यः। पूषा। श्रश्विनौ । यमः। श्रद्धिः। प्रजापतिः। सोमः। रुद्धः। श्रदितिः। वृहस्पतिः। सर्पाः। श्रद्धिः। प्रजापतिः। सोमः। रुद्धः। श्रदितिः। वृहस्पतिः। सर्पाः। पितरः। भगः। श्रर्थमा। सविता। त्वष्टा । वायुः। इन्द्राञ्ची मित्र इत्येताश्चतुर्थन्तनमोऽन्तैनांमिः क्रमेणाऽऽवाद्य पूजयेत्। श्राश्वेषाः शान्तौ तु सर्पप्रतिमां नमोऽस्तु सर्पेभ्य इत्यावाद्य—

सर्पो रक्तस्त्रिनेत्रश्च द्विग्रुजः पीतवस्त्रकः । फलकासिधरस्तीक्ष्णो दिव्याभरणभूषितः ॥ इति ध्यात्वा ।

तद्क्षिणते वृहस्पते गृत्समदो वृहस्पतिस्त्रिष्टुविति वृहस्पतिम्।
ततुत्तरतश्चोदीरतां शङ्कः स्वधा त्रिष्टुविति पितृनावाद्य चतुर्विंशितिदत्तेषु प्रागादितो भगाद्यदित्यन्तर्ज्ञदेवता श्चावाद्य पूजयेत्। ततोऽन्वाधानक्रमेण पायस-चरु-क्रसरान् श्रपयित्वाऽऽज्यभागान्तं कृत्वा
यजमानेन सर्वदेवतोद्देशेन द्रव्ये त्यक्ते सर्त्विगन्वाधानोक्तक्रमेण्ज्ञदेवतां
तत्त्ममन्त्रेर्द्धत्वा रच्चोहाद्यान् वस्यमाण्गिर्भर्जुहुयात्। ताश्च। कृत्युष्विति
पञ्चदश्चस्य वामदेवो रच्चोहा त्रिष्दुप् कृसरहोमे विनियोगः। एवं
सर्वत्र। गायत्र्या विश्वामित्रः सविता गायत्री। जातवेदसे कश्यपो
दुर्गा त्रिष्दुप्। त्रयम्बक् विसष्ठो रद्धोऽनुष्दुप्। सीरा युञ्जन्ती बुध
ऋत्विक् श्रुतिर्गायत्री। तामग्निवर्णां सौभरिदुर्गा त्रिष्दुप्। वास्तोष्पते वसिष्ठो वास्तोष्पतिस्त्रिष्दुप्। ग्रगने नयानस्त्योऽग्निस्त्रिष्दुप्।
चेत्रस्य वामदेवः चेत्रपालोऽनुष्दुप्। ग्रणाना जमदग्निमित्रावरुणी
गायत्री। श्रग्नि दूतं काण्वो मेधातिथिरग्निर्गायत्री। हिरणयवर्णामिति पञ्चदश्चेस्य कर्द्मानंदिचिक्तितेन्दरासुता ज्रप्रथः श्रीदेवता

म्राद्यास्तिस्रोऽनुष्टुभः तुर्यो प्रस्तारपङ्किः पश्चमी-षष्ट्यौ त्रिष्टुभी ततोऽष्टावनुष्ट्रभावन्त्या प्रस्तारपंक्तिः प्रत्यृचं समिदाज्यचरुहोमे विनि-योगः। त्वन्नः सोमेति त्रयोदशर्चस्य प्रगाथः सोमस्त्रिष्टुप् पायसहोमे विनियोगः। या ते रुद्रेति कश्यपो रुद्रस्वराडनुष्टुप् चतुर्रे हीताज्य-होमे विनियोगः। सप्तमहान्याहृतीनां विश्वामित्राह्ये ऋषयोऽग्न्याः दयो देवताः गायत्र्यादीनि छन्दांसि श्राज्यहोमे विनियोगः । एवं हुत्वा स्विष्टकृदादिवायश्चित्ताहुत्यन्तं कृत्वा लोकपाल-नवप्रह-विना-यकादिभ्यो निऋतीन्द्राञ्ज्यो रुद्वचेत्रपालयोश्च बलीन् दत्वा पूर्णा-हुति जुहुयात्। तत्र मन्त्राः । समुद्रादुर्मिरित्येकादशर्चस्य वामदेव थ्रापस्त्रिष्टुप्। श्रन्त्याजगती प्रजापते हिरुएयगर्भः प्रजापतिस्त्रिष्टुप्। पूर्णाद्वि विश्वेदेवाः शतकतुरनुद्धप्। सप्त ते श्रग्ने सप्तवानग्निर्जगती पूर्णाहुतिहोमे विनियोगः । एवं सर्वत्र । ततो होमशेषं समाप्य दिज्ञिणतः प्रधानकुम्भं स्पृष्ट्वा श्तवारं त्र्यम्बकमन्त्रं जप्त्वा तथैव रुद्रकुम्भं च स्पृष्ट्वोक्तरीत्या रुद्रैकादिश्वन्यादि जप्त्वा गन्धा-दिभिः कुम्मद्वयगतनिऋतिरुद्रावभ्यच्यं सर्त्विगाचार्यः सर्वकुम्भो-दकैर्भद्रासनोपविष्टं सापत्यकलत्रं यजमानमभिषिञ्चेत्। तत्र मन्त्राः। श्रचीभ्यामिति षर्गां कश्यपो यदमहाऽनुष्टुप् श्रमिषेके विनियोगः। एवमुत्तरत्र । पवस्वविश्वचर्षण् इति त्रिंशचेंस्य शतं वैखानसाः पव-मानसोमो गायत्री। श्रापो हि ष्ठेति नवर्चस्याम्बरीषः सिन्धुद्वीप मापो गायत्र्यंत्ये द्वेऽनुषुभौ पञ्चमीवर्द्धमाना सप्तमीप्रतिष्ठा। यत इन्द्रेति द्वयोः सप्तर्षयो विश्वेदेवा श्रनुष्टुप् सहस्राचेगेति त्चस्य प्राजापत्यो यदमनाशनो यदमहा त्रिष्टुप् द्वयोरन्त्या तुष्टुप्। देवस्य त्वेति त्रिभिर्यज्ञिभिश्च यज्जात्रतेति षराणां शिवसङ्करपमन्त्राणां प्रजापति-र्मनस्त्रिष्टुप्। तत्तत्पुराणे।कमन्त्राः-

योऽसौ वज्रधरो देवो महेन्द्रो गुजवाहनः ।
मूजजातशिशोहींषं माता-पित्रोव्यपोहतु ॥१॥
योऽसौ शक्तिधरो देवो हुतश्रक् मेषवाहनः ।
सप्तजिहश्च देवोऽग्निम् लदोषं व्यपोहतु ॥२॥
योऽसौ दण्डधरो देवो धर्मी महिषवाहनः ।
मूजजातशिशोहींषं माता-पित्रोक्यपोहतु ॥३॥

योऽसी खड्गधरो देवी निऋती राचसाधियः।
प्रशामयतु मूलोत्थं देाषं गण्डान्तसम्भवम् ॥ ४॥
योऽसी पाश्रधरे। देवी वरुणश्च जलेश्वरः।
नक्रवाद्यः प्रचेताख्या मूलेत्थाघं व्यपादृतु ॥ ४॥
योऽसी देवी जगत्प्राणा माख्ता मृगवादृनः।
प्रशामयतु मूलेत्थं देाषं वालस्य शान्तिदः॥६॥
योऽसी निधिपतिर्देवः खड्गभृद्धाजिवादृनः।
माता-पित्रोः शिशोशचैव मृलदेाषं व्यपादृतु ॥ ७॥
योऽसी पशुपतिर्देवः पिनाकी दृषवादृनः।
श्राश्लेषा-मूल-गण्डान्तं देषमाशु व्यपादृतु ॥ ८॥
विद्वेशः चेत्रपा दुर्गा लेक्षपाला नवग्रद्दाः।
सर्वदेषप्रशमनं सर्वे कुर्वन्तु शान्तिदाः॥ ६॥

श्राश्लेषाशान्तौ तु—

भ्रातृज्ञातिकुलस्थानां देषं सर्वं व्यपेहितु ॥१०॥
योऽसौ वागीश्वरेत नाम श्रिधदेवेत बृहस्पतिः।
माता-पित्रोः शिशोशचैव गण्डान्तस्य व्यपेहितु ॥११॥
पितरः सर्वभूतानां रत्तन्तु पितरं सदा।
सपनत्तत्रत्रातस्य वित्तं च ज्ञातिबान्धवान्॥१२॥ इति विशेषः
ततः तच्छं योः शंयुर्विश्वेदेवाः शकरी श्रिभिषेके विनियोगः।
ततो वस्त्रान्तरितनिम्नृतिष्द्रकुम्भोदकेन स्नापितो यजमानो धृतधौतवासाः साऽपत्यकलत्रः कांस्यपात्रस्थाऽऽज्यं रूपं रूपमित्यवेद्यः
विश्राय दत्वाऽऽचार्यादीनभ्यच्यांचार्याय गां ब्रह्मणे वृषं सदस्यायाऽश्वं
सद्भापिने कृष्णवृषं धेन्वाद्यलामे तत्तन्मूल्यं वा दत्वा स्वशक्त्या
भृत्वग्भ्यो भूयसीं च दत्त्वोत्तरपूजां कृत्वा यान्त्विति विस्तृत्याऽऽचार्याय निम्नृतिश्रहप्रतिमाकुम्भादिष्द्रजापिने स्द्रमितमाकुम्भादि
सङ्गलपपूर्वकं दत्वाऽिम्नभ्यच्यं गच्छ गच्छेति विस्तृत्य शतं तद्रई

श्रारलेपाऋचजातस्य माता-पित्रोर्धनस्य च ।

दश वा ब्राह्मणान्भोजयित्वा शान्त्याशीर्वाचयित्वा यस्य समृत्येत्या स्वन्दा सन्दवजनो भुञ्जीत ।

इति श्रीभद्दनीलकण्डकृते भगवन्तभास्करे शान्तिमयु खे । मूलाश्लेषाशान्तिपयोगः ।

अथ वैधृति-व्यतीपात-सङ्क्रान्तिशान्तिः।

शौनकः-क्रमारजन्मकाले तु व्यतीपातश्च वैधृतिः। सङ्क्रमञ्ज रवेस्तत्र जाता दारिद्यकारकः ॥१॥ दरिद्राणां महादुःखं व्याधिवीडासमुद्भवम् । श्रिश्रेया मृत्युपाप्नाति नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ २ ॥ स्रीणां च शोकं दुःखं च सर्वनाशकरे। भवेत्। शान्तिर्वी पुष्कला कार्या तस्य दोषा न कश्चन ॥ ३॥ गामुखनसर्वं कुर्याच्छान्ति कुर्यात्मयत्नतः। जपाऽभिषेकदानैश्व होमादपि विशेषतः ॥ ४॥ नवग्रहमखं कुर्यात्तस्य देशेषापशान्तये। प्रथमं गामुखं जन्म ततः शान्ति समाचरेत्॥ ५॥ गृहस्य पूर्वदिग्भागे गोामयेनाऽनु लिप्य च। श्रतङ्कृते सुदेशे त बीहिराशि पकन्पयेत् ॥ ६ ॥ पश्चद्रोणिमतं घान्यं तदर्दे तएडुळेन च। तदर्द्धे तु तिलैः कुर्यादन्याऽन्या परिकल्पयेत् ॥ ७॥ द्रव्यत्रितयराशौ तु अष्टपत्रं लिखेद्बुधः। पुरुषाहं वाचियत्वा तु श्राचार्य दृणुयात्पुरा ॥ ८॥ श्राचारवन्तं धर्मज्ञं कुलीनं च कुटुम्बिनम्। मन्त्रतत्त्वार्थतत्त्वज्ञं शान्तिकमिणि केविदम्।। १।। पञ्चाक्रभूषणं दद्यात्पद्दवस्नाक्रुतीयकम् अतिष्ठितं क्रमभमवर्षं सम्बोहरम् ॥१०॥

तीर्थोदकेन सङ्गृह्य समृदौषिषञ्चवम् । सगब्य-गन्ध-रत्नं च बस्नयुग्मेन बेष्ट्रयेत्।।११॥ ्तस्यापरि न्यसेत्पात्रं स्क्ष्ममत्रण्संयुतम्। प्रतिमां स्थापयेद्धीमान्साधि-प्रत्यधिदैवताम् ॥१२॥ चन्द्राऽऽदित्याऽऽकृती पार्श्वे मध्ये वैधृतिमर्चयेत् । एवमेव व्यतीपाते शान्ती सङ्क्रमणस्य तु ।।१३॥ यजेत्। भानोरुत्तरता रुद्रमग्नि दन्निणता निष्कमात्रेण वारुद्धेन पादेनाऽपि स्वशक्तितः ॥१४॥ प्रतिमां कारयेद्धीमान तत्तल्लचणलचिताम्। प्रतिमां पूजनार्थीय वस्त्रयुग्मं निवेदयेत् ॥१५॥ भवेत्स्यंश्रन्द्रः प्रत्यधिदेवतम् । श्रिधदेवा तता व्याहृतिपूर्वेण तत्तन्मन्त्रेण पूजयेत्।।१६॥ त्रैयम्बकेन मन्त्रेण प्रधानप्रतिमां यजेत्। तत्सूर्य इति मन्त्रेण सूर्यपूजां समाचरेत् ॥१७॥ श्चाप्यायस्वेति भन्त्रेण सोमपूजां समाचरेत्। **उपचारैः पाडशभिर्यद्वा पश्चोपचारकैः** । श्रचित्वा गन्धपुष्पाद्यैः फलं नैवेद्यम<sup>प्</sup>येत् ॥१८॥ मृत्युद्धयेन मन्त्रेण मधानमतिमां स्पृशेत्। , ब्राष्ट्रोत्तरसहस्रं वा श्रष्टोत्तरशतं तु वा।।१६।। श्रष्टाविंशति वा चाऽथ पूजायां च खशक्तितः। सर्वसौरं प्रजप्याध्य सोमोऽथ सोमपन्त्रतः ॥२०॥ श्राना भद्रेति स्कंच भद्रा अग्नेश्र स्क्रम्। ्रजपेतु पौरुषं सक्तं त्रैयम्बकमतः परम् ॥२१॥ कुम्भं स्पृष्टा चतुहित्तु जपं क्रुर्युस्त्वथर्तिवजः। कुम्भस्य पश्चिमे देशे स्थिएडलेऽग्नि पकन्पयेत् ॥२२॥ स्यग्रह्मोक्तविधानेन कारयेत्संस्कृताञ्चलम् ।

त्रैयम्बकेन मन्त्रेण समिदाज्यचरून् हुनेत् ॥२३॥ श्रष्टोत्तरसहस्रं वा श्रष्टोत्तरशतं तु वा। श्रष्टाविंशति वा क्रुयोत्स्वस्य शक्त्यनुसारतः ॥२४॥ मृत्युञ्जयेन मन्त्रेण तिलहोमं समाचरेत् । ततः स्विष्टकृतं हुत्वा श्रभिषेकं च कारयेत् ॥२५॥ समुद्रज्येष्ठासक्तेन श्रापो हि ष्ठेत्यृचेन च । श्रद्धाभ्यामिति सक्तेन पावमानीभिरेव च ॥२६॥ त्रैयम्बकेन तत्सूर्य श्राप्यायस्वेति मन्त्रतः । सुरास्त्वामिति मन्त्रेण श्रभिषेकं समाचरेत् ॥२७॥ सुरास्त्वामिति मन्त्रेण श्रभिषेकं समाचरेत् ॥२७॥ सुरास्त्वामिति मन्त्रेण श्रभिषेकं समाचरेत् ॥२७॥ सुरास्त्वामिति भन्त्रेण श्रभिषेकं समाचरेत् ॥२७॥ सुरास्त्वामितिश्र्वन्त्वत्यादिकोऽभिषेकमन्त्रसमुदायोऽयुतहोम-

श्रभिषेका प्लुतं वस्त्रमाचार्याय निवेदयेत् ।
श्वेतवस्त्रधरो भूत्वा भूषणाद्येरलङ्कतः ॥१॥
यजमानः स्त्रिया युक्त श्राज्याऽवेच्चणमाचरेत् ।
श्राचार्य पूजयेत्पश्चाद्वस्त्रहेमाङ्गुलीयकैः ॥२॥
गोदानं वस्त्रदानं च स्वर्णदानं विशेषतः ।
तद्दोषश्मनार्थाय श्राचार्याय प्रदापयेत् ॥३॥
प्रच्छादनपटं दद्यात्ततः शान्तिभवेदिति ।
जापकेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो दिच्चणाः प्रतिपादयेत् ॥४॥
दीनान्धकुपणेभ्यश्च पद्याद्भृरिदिच्चणाम् ।
ब्राह्मणान् शतसंख्याकान् मिष्ठाक्षेभीजयेच तान्॥५॥
बन्धुभिः सह भुञ्जीत यथाविभवसारतः ।
एवं यः कुरुते मन्त्रों नैव दुःखमवाप्नुयात् ॥६॥
श्रायुरारोग्यमैश्वर्ये माता पित्रोः शिशोरि ।
श्रायुरारोग्यमैश्वर्ये माता पित्रोः शिशोरि ।
श्रायुरारोग्यमैश्वर्ये माता पत्रीः शिशोरि ।

ष्टस्य निरासार्थे शानित करिष्य इति सङ्कल्प्य गणेशपुजा-स्वस्ति वाचन-मातृपूजा-वृद्धिश्राद्धाचार्यादि वरणानि कुर्यात् । श्रथाचार्यः सर्षपात्रिकरणादि कत्वा प्राच्यां गोमयोपलित्रभुवि पश्चद्रोणतदर्द्ध-मितन्नीहि-तगडुल-तिलानन्योन्योपरि राशीकृत्य तत्राऽष्टदलं विरच्य तःकर्णिकायां कुम्मं संस्थाप्य तीर्थोदकेनाऽऽपूर्य्य तत्र सप्तमृत्-पञ्च-पर्लव-रत्न-गञ्याष्ट्रगन्ध-सर्वौषधीः चिप्तवा वस्त्रयुग्मेनाऽऽवेष्ट्य पूर्ण-पात्रं निधाय तत्र वैधृतिशान्ती मध्ये ज्यम्बकमिति रुद्रं तद्दिणत उत्सूर्य इति सूर्यमुत्तरतश्चाण्यायस्वेति सोमं व्यतीपात-सङ्क्रान्तिशा-न्त्योस्तु मध्ये सूर्यं तद्दत्तितोऽग्निं दूतमित्यग्निमुत्तरतो रुद्रं तत्तत्प्रति-मास्वावाह्य षोडशभिः पञ्चभिर्वोपचारैः सम्पूज्य रुद्र-सूर्य-सोमप्रतिमाः स्पृष्ट्वाऽष्टसहस्राष्टशताष्ट्राविंशत्यन्यतरसंख्यया मृत्युअयमन्त्रमुद्यन्न-द्येत्यादिसर्वसौरमन्त्रानाप्यायस्वेति च क्रमाजपत् । सङ्क्रान्तिशान्त्योस्तु पूर्वे सौरजपस्ततो मृत्युञ्जयजपः।ततो ऋत्विजः प्रागादि दिक्वतुर्षु क्रमेण श्रानो भद्रा भद्रा श्रग्ने सहस्रशीर्षा कदु-द्रायेति स्कानि जप्त्वा श्राचार्यस्तु कुम्भात्पश्चिमेऽग्निं प्रतिष्ठाप्य ग्रहा-बाह्नादि पूजनान्तं कृत्वाऽन्वादध्यात्। तत्र चचुषी आज्येनेत्यन्ते रुद्र-सूर्यसोमान् समिचर्वाज्येस्तत्तनमन्त्रेम् त्युअयमन्त्रेण च तिलाहुति-भिरष्टसहस्राऽष्टशताष्टाविंशति श्रन्यतरसङ्ख्ययाऽशेषेण सिष्टहत-मित्यादिब्यतीपातसङ्कान्तिशान्त्योस्तु सूर्योग्निरुद्रानिति विशेषः। तत ब्राज्यभागान्तेऽन्वाधानोकक्रमेण हुत्वा बलिदानान्ते कलशोद्कैः समुद्रज्येष्ठा इति स्केन श्रापो हि ष्ठेति त्चेनाऽचीभ्यामिति स्केन पावमानीभिः प्रधानाधिप्रत्यधिदेवतामन्त्रैः सुरास्त्वेत्यादिपौराण-मन्त्रेश्चाभिषिको यजमानोऽभिषेकवस्त्रमाचार्याय निवेद्याऽऽज्यमवेदय पूर्णीहुति हुत्वाऽऽचार्याय घेनुं वस्त्रयुग्माऽङ्गुलीयकादि ऋत्विग्भ्यश्च दित्तिणां दत्वाऽन्येभ्यश्च भूरिदित्तिणां दत्वा शतं शक्त्या वा बाह्यणान् मोजियत्वा बन्धुभिः सह मुश्रीत इति वैधृति व्यतीपात-सङ्क्रान्ति शान्तयः।

#### श्रथैकनचत्रजन्मशान्तिः।

गर्गः-एकस्मिन्नेव नत्तत्रे भ्रात्रोर्वा पितृ-पुत्रयोः । शस्तिरचेत्तयोर्मृत्युभेवेदेकस्य निश्चयः ॥१॥

तद्दोषनाशाय तदा प्रशस्तां शानित च क्रुर्यादभिषेचनं च। सम्पूच्य ऋचपतिमां तद्ये दानं च क्योद्विभवानुरूपम्।।२॥ तत्र शान्ति प्रवक्ष्यामि सर्वाचार्यमतेन तु। शुभवारे च चन्द्र-तारावलान्विते ॥ ३ ॥ रिक्ता-विष्टी विवर्ण्ये तु प्रारभेद्विभवे सुधीः। वरयेत्पूर्व चतुरश्च द्विजोत्तमान् ॥ ४॥ श्राचार्य पुरायाइं वाचियत्वा तु शान्तिकर्म समाचरेत्। श्चरनेरीशानदिरभागे नत्तत्रप्रतिमां ततः ॥ ५ ॥ तन्ननत्रोक्तमार्गेख अर्चयेत्कलशापिर रक्तवस्रेण सञ्छाद्य वस्त्रयुग्मेन वेष्ट्येत् ॥ ६ ॥ स्वशाखे केन मार्गेण कुर्यादिग्नमुखं ततः। मन्त्रेण हुनेदष्टोत्तरं शतम् ॥ ७॥ मत्येकं समिद्नाज्यैः पायश्चित्रांतमेव श्रभिषेकं ततः कुर्यादाचार्यः पितृपुत्रयाः ॥ = ॥ वस्रालङ्कारगोदानैराचार्यं **पू**जयेत्पुनः ऋत्विजां दत्तिणां दद्यान्माषत्रयसुवर्णकम् ॥ ६॥ देवताप्रतिमादानं धान्यवस्त्रादिभिः सह । यान-शय्या-ऽऽसनादीनि दद्यात्तद्वानतये ॥१०॥ भाजयेद बाधणानसर्वान् विराशाठ्यविवर्जितः।

मथ प्रयोगः — कर्ता मास-पन्नाद्यक्तिरयाऽस्य कुमारस्य वि-भारोकस्तिरपत्तिस्चितारिष्धशान्त्यर्थमेकनन्त्रशान्ति करिष्य इति सङ्गल्य गणेशपूजन-स्वस्तिवाचनाऽऽभ्युद्यिकाऽऽचार्यत्विवरणानि कुर्यात् । अथाऽऽवार्योऽग्नेरीशान्यां कुम्मं संस्थाप्य रक्तवस्त्रयुग्मेना-ऽऽच्छाद्य तस्मिन् पूर्णपात्रोपरि तत्तन्नन्त्रशोक्तमन्त्रेण प्रतिमायां तन्न-न्नात्रं तद्देवतां साऽऽवाद्य सम्पूज्य अग्नि प्रतिष्ठाष्ट्राऽन्वाभाग्न भाज्य-भागान्तं कृत्या तत्त्रज्ञवात्रमन्त्रेण समिन्नव्याज्याति प्रत्येक मञ्जोत्तरशतं हुत्वा होमशेषं समाप्य शिशुं तित्वित्रादींश्चाऽभिषिश्चेत् । ततः कर्ती-त्तरपूजां कृत्वा विस्तृत्य प्रतिमादिकं गवादि चाऽऽचार्याय दत्वा ऋत्विग्भ्यश्च प्रत्येकं सौवर्णमाषत्रयात्मिकां यथाशक्ति दिवाणां दत्वा यथाविभवं यान-शय्या-ऽऽसनादीनि च दत्वा ब्राह्मणान्मोजयित्वा स्वयं भुञ्जोत । इत्येकनवात्रशान्तिप्रयोगः ।

#### अथ ग्रहणोत्पत्तौ शान्तिः।

शौनकः - ग्रहणे चन्द्र-सूर्यस्य प्रस्तिर्यद जायते। व्याधिपीडा तदा स्त्रीणामादौ तु ऋतुदर्शनात् ॥ १ ॥ इत्थं सञ्जायते यस्तु तस्य मृत्युर्न संशयः व्याधिपीडा च दारिष्टं शोकश्च कलहो भवेत् ॥२॥ शान्तिं तेषां पवक्ष्यामि नराणां हितकाम्यया 📗 यस्मिन ऋसे विशेषेण ग्रहणं संप्रजायते ॥३॥ तद्याधिपते रूपं सुवर्णेन विशेषतः चन्द्रं चन्द्रग्रहे धीमान् रजतेन विशेषतः ॥ ४ ॥ राहुरूपं पकुर्वीत नागेनैव विचन्नराः शुची देशे प्रयत्नेन गोमयेन प्रलेपयेत् नागेन = सीसेन । तस्योपरि न्यसेद्धीमात्रववस्तं सुशोभनम् त्रयाणां चैकरूपाणां स्थापनं तप्र कारयेत रक्ताचं तं रक्तगन्धं रक्तपुष्पाम्बराणि च । स्र्यंग्रहे पदातव्यं सूर्यंभीतिकराय च रैश्वेतवस्त्रं श्वेतमाल्यं श्वेतगन्धात्ततादिभिः चन्द्रग्रहे पदातव्यं चन्द्रमीतिकराय च राहवे चैव दातव्यं कृष्णपुष्पाम्बराणि द्यान्यत्रनाथाय स्वेतगन्धानुलेपने 11811 सूर्य सम्पूजयेद्धीमात्राकुष्णेनेति मन्त्रतः । चन्द्रग्रहे च पालाशैः समिद्धिर्जुहुयात्ररः ॥१०॥ द्वीभिर्ज्जेद्वयाद्धीमान् राहोः सम्भीणनाय च । समिद्धिर्जलह्नोत्थैभेशाय जुहुयाद्बुधः ॥११॥ भेशाय = नदात्राधिपतये। श्राज्येन चरुणा चैव तिलैश्र जुहुयात्तरः। पश्चगव्यैः पश्चरत्नैः पश्चलक् पश्चपन्नवैः ॥१२॥ जलैरीपधकन्केश सहितेः कलशादकैः भौषधकरकैः = सर्वोषधिकरकैः। श्रभिषेकं प्रकुर्वीत यजमाने प्रयत्नतः ॥१३॥ मन्त्रैर्वेरुणदेवत्यैरापो हि ष्टादिभिस्त्रिभिः इमं मे गङ्गे पितरस्तलायामीति मन्त्रकैः ॥१४॥ श्रभिषेके निवृत्ते तु यजमानः समाहितः श्राचार्यं पूजयेत्पश्चात् सुशान्ता नियतेन्द्रिय ॥१४॥ तस्मै दद्यात्मयत्रेन भक्तचा प्रतिकृतित्रयम् । द्त्तिणाभिश्र संयुक्तं यथाशक्तयनुसारतः ॥१६॥ ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु प्रणिपत्य चपापयेत्। तेभ्योऽपि दिचाणां दद्यायजमानः समाहितः ॥१७॥ श्रनेन विधिना शान्ति कृत्वा सम्यग्विशेषतः। श्रकालमृत्युशोकं च व्याघिपीडा न चाप्तुयात् ॥१८॥ सौंख्यं सौमनसं नित्यं सौभाग्यं लभते नरः। इत्थं ग्रहणजातानां सर्वारिष्टविनाशनम् ॥१६॥ कथितं भागवेषोदं शौनकाय महात्मने । इति चन्द्र-सूर्यग्रहणपस्तिशान्तिः।

rail being <del>make t</del>o a security.

### अथ विषघटिकाशान्तिविधिः।

तत्र दुद्गाग्यः—

विषनाडीषु सञ्जातः पितृ-भ्रातृ-धनात्मनाम् । नाशकु द्विषशस्त्राचैः ऋरत्तरनेऽष्ट मेऽपि वा ॥ १ ॥ तद्दोषपरिहाराय शानितकर्म समारभेत् । रुद्रो यमे।ऽग्निम् त्युश्च देवताः परिकीर्तिताः ॥ २ ॥ यथाशक्तचा तत्तन्त्वस्रणसंयुताः 🕕 सुवर्णेन प्रतिमाः कारियत्वा तु श्राहकत्रोहिभिः स्थले ॥ ३ ॥ स्थिएडलं परिकल्प्याऽथ कुम्भमौषिधसंयुतम् । जलैः सम्पूर्यं संस्थाप्य मृदादि प्रिचेत्रातः ॥ ४ ॥ वस्नद्वयेन संवेष्ट्य पश्चरत्नानि नित्तिपेत् । कुम्भोपरि तु संस्थाप्य चतस्रः प्रतिमास्तथा ॥ ५ ॥ तत्तन्पन्त्रीश्च सम्पूज्य गन्धपुष्पे।पहारकैः कदुद्रायेति मन्त्रेण यमाय सामित्यथ ॥६॥ श्रमिर्मूर्द्धेति मन्त्रेण परं मृत्ये। इति त्वथ। एतेश्चतुर्भिर्मन्त्रेस्तु क्रमादर्चेद्धुनेराथा ॥ ७॥ समिच्चरुघृतद्रव्यैः प्रत्येकं च यथाक्रपम् । ऋत्विग्भिश्च सहाचार्यो हुनेदष्टसहस्रकम् ॥ ८॥ श्रष्टोत्तरशतं वाऽथ श्रष्टाविंशतिमेव वा । ततस्तिलेहुनेदेवांस्तरान्मन्त्रेश्च कल्पवित् ॥ ९ ॥ तते।ऽभिषिञ्चयेदेनं मन्त्रैः पौराणिकैः क्रमात् । प्रार्थ्यतां भगवानीशः पिनाकी सर्वतामुखः ॥१०॥ तव मृतिंपदानेन समस्ताऽभीष्टदो भव । ईषत्पीना यमः काले। दगडहस्तः प्रशान्तधीः ॥११॥ रक्तद्दक् पाशभृत्कुष्णे। महिषस्थः शिवं कुरुँ।

पिङ्गलरमश्रुकेशाचाः पिङ्गाचनतुरेक्षाः ॥१२॥ व्यागस्थः साचसूत्रश्च सप्ताचिः शक्तिधारकः ।
तव मूर्तिपदानेन मम पापं विनाशय ॥१३॥ दंष्ट्राकराजनदना नीलाञ्जनसमाकृतिः ।
हक खड्ग-गदापाणिर्मृत्युमी पातु सर्वदा ॥१४॥ इत्थमेवं विधेमन्त्रैयथाविधिसमाहितः ।
गी-भू-हिरएय-वस्त्रश्च श्राचार्य पूज्येत्सुधोः ॥१४॥ एवं क्रुयीत्पदानेन विषदोषः प्रशाम्यति ।
हति विषघटीशान्तिः ।

## श्रथ भ-गएडान्तशान्तिः।

गर्गः—श्रिष्वनी-मघ मृलादो त्रि वेद-नत्रनाहिका ।
रेवती सर्प-शक्रान्ते मास छद्र-रसाः क्रमात् ॥ १ ॥
श्रिष्वनी-मघ मृलादो नाहिका द्वितयं तथा ।
श्रिष्वनी-मघ-मृलानां पूर्वार्द्धे नाध्यते पिता ॥ २ ॥
पृषादिसपपश्रार्द्धे जननी नाध्यते शिशोः ॥
पितृश्रश्र दिवाजाता रात्रिजातस्तु - मातृहा ॥ ३ ॥
श्रात्महा सन्ध्ययोजीता नास्ति गएडे निरामयः ॥
सर्वेषां गएडजातानां परित्यागो विधीयते ॥ ३ ॥
वज्जयेदर्शनं यावद्वर्षे षायमासिकं भवेत् ॥
तस्य शान्ति पत्रक्ष्यामि सेममन्त्रेण भक्तिमान् ॥ ॥
कांस्यपात्रं पत्रव्यामि सेममन्त्रेण भक्तिमान् ॥ ॥
कांस्यपात्रं पत्रव्यामि सेममन्त्रेण भक्तिमान् ॥ ॥
श्रिष्यात्रं पत्रव्यामि सेममन्त्रेण भक्तिमान् ॥ ॥
श्रिष्यात्रविक्रम् द्वाभ्यां ना श्रीभनं तथा ॥ ६ ॥
तन्मध्ये पायसं श्रुश्यं नवनीतेन प्रित्म् ॥
राजते चन्द्रमर्चेत सित्युष्यसहस्रकेः ॥ ७ ॥

देवज्ञः चौमवासाश्च शुक्रमान्याम्बरावितः।
सोमोऽहमिति सिश्चिन्त्य पूजां कुर्यादतिन्द्रतः॥ ८॥
जपैत्साहस्रकं मन्त्रं श्रद्धानः समाहितः।
श्राप्यायस्वेति मन्त्रेण पूजां कुर्यात्समाहितः॥ ६॥
दद्याद्वे दिचाणामिष्टां गण्डदेषप्रशान्तये।
शुक्कं वागीश्वरं चैव ताम्रपात्रसमन्वितम्॥१०॥
गण्डदेषिपशान्त्यर्थे दद्याद्वेदविदे श्रुचिः।

इति भ-गएडान्तशान्तिः।

#### अथ दिनच्यादिशान्तिः।

गर्गः-दिनच्ये व्यतीपाते व्याघाते विष्टि-वैधृतौ ।

मूळे गएडेऽतिगएडे च पिष्ये यमघएटके ॥ १ ॥

कालदएडे मृत्युयोगे दुष्ट्योगे सुद्राक्ष्णे ।

तिस्मन गएडदिने माप्ते मस्तियदि जायते ॥ २ ॥

श्रतिदेषकरी पोक्ता तत्र पापयुते सितः ।

विचार्य तत्र दैवइं शान्ति कृत्वा यथाविधि ॥ ३ ॥

यजमाना देवताना ग्रहाणां चैव पूजनम् ।

दीपं शिवालये भक्त्या धृतेन परिदापयेत् ॥ ४ ॥

श्रमिषक शङ्करस्य श्रश्वत्थस्य पदिचाणम् ॥ ४ ॥

श्रायुद्धिकरं जाप्यं सर्वारिष्टविनाशनम् ॥ ४ ॥

गुरु दैवत-विभाणां पूजनं गोश्र वद्धनम् ।

पुरु यायुस्तुष्टिशान्त्यर्थमभीष्ठपत्वसिद्धये ॥ ६ ॥

सर्वारिष्टहरायीय ग्रहयशं समाचरेत् ।

श्रिवाय विश्ववद्धक्त्या दीपदानं करोति यः ॥ ७ ॥

श्रावएडे गोष्टतनेव स वे मृत्युं जयेक्ररः ।

विष्णुमूर्ति महापुण्यमश्वत्थं श्रीकरं सदा ॥ = ॥
पदिचणं नरे। भक्त्या कृत्वा मृत्युं जयेक्ररः ।
सर्वसम्पत्समृध्यर्थं नित्यं कल्याणदृद्धये ॥ ६ ॥
श्रमीष्टफलसिध्यर्थं कुर्याद्रब्राह्मणभाजनम् ।
श्रमिषेकं शिवे शान्ति कृत्वा भक्त्या नरे।त्तमः ॥१०॥
श्रकालमृत्युं निर्ज्जित्य दीर्घायुर्जायते नरः ।
गाणपत्यं पुरुषसूक्तं सौरं मृत्युञ्जयं श्रमम् ॥११॥
शान्तिजाण्यं रुद्रजाप्यं कृत्वा मृत्युञ्जयं भवेत् ।
मूले वा सर्पगण्डे वा कुर्यादेतानि यत्नतः ॥१२॥
श्रायुद्दिकरार्थायं गण्डदे।षप्रशान्तये ।

इति गर्गोक्तगएडजननशान्तिः।

#### अथ त्रिकशान्तिः।

शान्तिसर्वस्वे-

सुतत्रये सुता चेत्स्यात्तत्रये वा सुते। यदि ।

माता-पित्रोः कुलस्यापि तदाऽनिष्टं महद्भवेत् ॥ १ ॥

उयेष्ठनाशो धने हानिर्दुःखं वा सुमहद्भवेत् ।

तत्र शान्ति पक्करीत वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ २ ॥

जातस्यैकादशाहे वा द्वादशाहे शुभे दिने ।

श्राचार्यमृत्विजो दृत्वा ग्रहयज्ञपुरःसरम् ॥ ३ ॥

सह वा ग्रहयज्ञः स्यात्स्वस्य वित्तानुसारतः ।

ब्रह्म-विष्णु-महेशेन्द्रमितमाः स्वर्णतः कृताः ॥ ४ ॥

पूजयेद्धान्यराशिस्थ – कलशोपरि शक्तितः ।

पृत्रयेद्धान्यराशिस्थ – कलशोपरि शक्तितः ।

द्विज एको जपेद्धोमकाले शुन्तः समाहितः॥६॥
श्राचार्यो जुहुयात्तत्र सिवदाज्यितलांश्रहम्।
श्रष्टोत्तरसहस्रं वा शतं वा विशति तु वा॥७॥
देवताभ्यश्रत्वेकत्रादिभ्यो ग्रहपुरःसरम्।
श्रह्मादि-मन्त्रेरिन्द्रस्य यत इन्द्रभजामहे॥ द॥
ततः स्वष्टकृतं हुत्वा विल पूर्णाहुति ततः।
श्रिभषेकं कुटुम्बस्य कृत्वाऽऽचार्थ प्रपूजयेत्॥६॥
हिरएयं धेनुरेका च त्रदृत्विजां दिच्चणा ततः।
प्रतिमा गुरवे देया अपस्कारसमन्विताः॥१०॥
कांस्यास्य वीच्चणं दत्वा शान्तिपाठं तु कारयेत्।
श्राह्मणान् भोजयेच्छक्त्या दीनानाथांश्र तपयेत्॥११॥
एषं शान्तिविधानेन सर्वारिष्टं विलीयते।

इति त्रिकशान्तिः।

## श्रथ प्रसववैकृतशान्तिविधिरुच्यते ।

श्रकालपसवा नार्यः कालातीतपनास्तथा । विकृतपसवारचैव युग्मपसवनास्तथा ॥१॥ श्रमातुषा श्रखण्डाश्च श्रजातव्यं जनास्तथा । श्रीनाङ्गा श्रधिकाङ्गाश्च जायन्ते यदि वा स्त्रियः ॥२॥ पश्चः पत्तिणश्चैव तथैव च सरीस्रपाः । विनासं तस्य देहस्य कुलस्य च विनिर्दिशेत ॥३॥ विचासयेत्तां तृपतिः स्वराष्ट्रात्स्त्रयश्च पूज्याश्च ततो द्विजेन्द्राः। चिकित्सनैर्द्राह्मणातप्रीश्च ततोऽस्य शान्ति सस्रपैति पापम्॥४॥

## अथ यमलशान्तिविधिः।

श्रत्र ब्राह्मणं तदाहुर्य श्राहिताग्निर्यस्य भार्या गौर्वा यमौ जन-येत्का तत्र प्रायश्चित्तिरिति ? सोऽग्नये महत्वते त्रयोदशक्षपालं पुरो-डाशं निर्वपेत्तस्य याज्यानुवाक्ये महतो यस्य हि त्त्येरा इ वेद चरमा श्रहे वेत्याहुतिं वाऽऽहवनीये ज्ञुहुयादग्नये महत्वते स्वाहेति सा तत्र प्रायश्चित्तिरिति ।

कारिका-श्रथ यस्य वधुर्गी वा जनयेच्चेद्यमी ततः। समरुद्भ्यश्ररं कुर्पात् पूर्णाहुतिमथापि वा ॥ १ ॥ इति श्रथ प्रथमदिनादिषु देवीगृहीतवालकरच्लाम्।

मदनरत्ने योगसागरे —

प्रथमेऽहिन गृह्णाति बालकं बालिनी ग्रही । बालिनीस्थाने पाथिनीग्रहीति नारायणीये पाठः। गन्धिनीति गुणोत्तरे।

तया गृहीतमात्रस्य चेष्टितान्युपलच्चयेत् ।
गात्रो द्वे गोनिराहारो लालाग्रीवानिवर्तनम् ।
लिम्पेत धातकी-लेष्ट्र-मञ्जिष्ठा-ताल-चन्दनैः ॥१॥
धूपयेन्महिषाचेण ततो ग्रुश्चित सा ग्रही ।
लेपनधूपने बालस्य नारायणीये बलिदानानुवृत्ती—
मतस्य-मांस-ग्रुरामक्ष्य-गन्धा-उग्रक्-धूप-दीपकैः ।
बलि दद्यादिति शेषः ।

बिलमन्त्रः प्रयोगसारे—ॐ नमश्चामुएडे भगवति विद्युक्तिके हाँ २ हीँ २ श्रपसरन्तु दुष्टमहा हुँ। तद्यथा—गच्छन्तु यातान्यतः स्थाने छहो बापयति स्वाहा विद्युक्तिते हाँ हीँ हुं हु सुने हुन्न स्वाहित ।

そうちょうで 自然の かんかの おりをめ かんけいしき

वालग्रहाणां विध्येयं शस्ता बलिनिवेदने । षित्रभ्र रवेरवयेऽस्ते विनार्के वा वेयः।

#### बिलस्थानानि प्रयोगसारे-

कद्म्बश्च कर्राञ्चश्च विनीता निम्ब एव च ।

ग्राश्वत्थोद्भुम्बरश्चेव श्लेष्मान्तक वदौ तथा ॥ १ ॥

मात्रुष्ट्रचाः क्रमेणाक्ताः पूर्वादीशान्तदिग्गताः ।

तेषामेकं समाश्चित्य बलिं द्याद्यथादितम् ॥ २ ॥

मतिस्थूलं मत्युदकं मतिष्ट्रचमथाऽपि वा ।

स्थूलम् = तटम् । क्वचित्तु कूलमित्येव पाठः ।

श्रत्राशायाम् कृतायां पाक्षोक्तात्रा सुसारतः ॥ ३ ॥ यत्र वा राचते तत्र मातृणां बलिमाहरेत् । कृत्वा नीराजनान्तं बलिमिति विधिवद्वालमाहूय संस्पृश्या-

्रिद्धस्तत्सर्वगात्रं शिरसि सक्कसुमैरस्नतैस्त्रीमयित्वा । िम्निप्त्वाऽग्रे देवताया विधिवदुपहितैस्तत्र गीतैः सुमन्त्रैः

क्रयींद्रचां समीक्ष्य चणमित्र विलयं याति दुष्टग्रहार्तिः॥ नीराजनमन्त्रोद्धारो नारायणीये—

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च स्कन्दो वैश्रवणस्तथा। रचन्तु त्वरितं वालं मुश्च मुश्च कुपारकम्॥१॥ कालगुणात्तरे—

पत्ताशा-ऽस्वत्थ-किष्त्थ-विज्वोदुम्बर्-पन्तवाः । प्रविभक्षाः स्मृता होते बालानां हितकारकाः ॥ २ ॥ स्तापितं भूषितं बालं तता सुरुचित सा ग्रही । प्रयोगसारेऽपि-

पताशोदुम्बरा-ऽश्वत्थ-विन्व-न्यग्रोध-पन्तवाः । इथितेन कषायेन परिषिञ्चेत्पशान्तये ॥ परिषिञ्चेत् = स्नावग्रेदिति मदनः । अधु मन्त्रः - ॐ नमञ्ज्ञामुख्डे इत्यादिवैलिखने पूर्वमुकः । रज्ञामन्त्रः प्रयोगसारे-

रच रच महादेव ! नीलग्रीव ! जटाधर ! ग्रहैस्तु सहितो रच मुश्च मुश्च कुमारकम् ॥ १॥

श्रमुं मन्त्रं भूर्जपत्रे विलिख्य तत्पत्रं भुजे बध्नीयादिति मदनः। बालकशिखास्पर्शपूर्वकं जपे मन्त्र उक्तः प्रयोगसारे— के सर्वमातर इमं ग्रहं संहरन्तु हुरोदय २ स्फोटय २ स्वाहा २ गर्ज २ सर यह २ श्रामह्य २ हिम २ हन । एवं सिद्धि रुद्रो क्वापयित स्वाहा । श्रत्र होमोऽपि प्रयोगसारे—ॐ कूल्मागिड भगवति ! सुरागिणि ! संमुरिहते ! मुश्च २ दह २ एच सर २ गच्छ स्वाहा २ ।

कृत्वा चतुष्पथे कुएडं मन्त्रेणाऽनेन मन्त्रविष् । त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा सहस्रं जुहुयात्तिलैः ॥१॥ यान्ति दुष्टग्रहाः शान्ति बलिना चाऽनुमोदिताः।

बालरोदनपरिहारार्थं यन्त्रमुक्तं प्रयोगसारे—षड्सं मध्ये हीं-कारस्तनमध्ये शिशोनीम विलिख्य षट्सु श्रस्नेषु ॐ लुलुव स्वाहेति मन्त्रस्य षडक्तराणि विलिख्य तद्वहिनीमव द्वितयं विलिख्य तद्वि-हिरधोमुखैरईचनद्वरावेष्ट्य पञ्चोपचारैः सम्पूज्य बालहस्ते बध्नी-यादिति॥

#### अथ बालग्रहस्तवः।

प्रयोगसारे-प्रणम्य शिरसा शान्तं गणेशाऽनन्तमीरवरम्।
बालग्रहस्तवं वक्ष्ये समस्ताऽभ्युदयपदम् ॥१॥
तपसा यशसा दोप्त्या वपुषा विक्रमेण च।
निर्दिष्ठो यः सदा स्कन्दः स ना देवः प्रसीदतुः॥२॥
रक्तमान्याम्बरधरेा रक्तगन्धानुलेपनः ।
रक्तादित्योष्डच्वलः शान्तिः स ना देवः प्रसीदतु॥३॥
यो नन्दनः पश्चपतेर्मातृष्णां पावकस्य च।
गङ्गोमाकृत्तिकानां च स ना देवः प्रसीदतु॥४॥

देवसेनाऽर्चितः देवसेनापरिवृते। सदा । देवसेनापतिः श्रीमान् स ना देवः पसीदतु ॥ ५ ॥ शक्तिः शक्तिधरापूरः कुमारः शिखिवाहनः। सुरारिहा महासेनः स ना देवः प्रसीद्तु ॥ ६॥ मकुत्या सुन्दरे। दान्ता देवैशवर्योदयान्वितः। नानाविनोदसम्पन्नः स ने। देवः पसीदत् ॥ ७॥ प्रबोधा सुप्रबोधा च बोधना सुप्रबोधना। प्रबुद्धा च प्रवेशा च सुपीता सुपनास्तथा।। द्धा। मनान्मनीति विख्याता योगिन्यः पानतु बालकम् । सुव्रता रुक्मिणी चैव मन्दवेगा विभीषणा ॥ ६॥ विद्यज्जिहा महानासा शतानन्दा तथाऽपरा । बालदा प्रमदा चेति योगिन्यः पानतु बालकम् ॥१०॥ हरिंगी चाऽथ वाराही वानरी क्रोब्हकी तथा। कुवेरी केाटराची च कुम्भकर्णा च चिषडनी ॥११॥ बलाद्विकारिणी चेति योगिन्यः पानतु बालकम्। शुद्धा विशुद्धा श्रद्धा च योगासिद्धा मितम्बदा ॥१२॥ सुभगा शुभदा गौरी बलाविकरिणीति च। नानाविज्ञानविख्याताः योगिन्यः पान्तु बालकम् ॥१३॥ लम्बा प्रलम्बाच तथा लम्बकर्णाच लम्बिका। ज्वालाकराली कालिन्दी कालिकेति यथोदिताः ॥१४॥ स्वज्ञन्दाऽऽचारसम्पना योगिन्यः पानतु बालक्रम् । पर्णोता सुपर्णोता च पालिनी विश्वपालिनी ॥१५॥ विमला कमला माली छाला रौद्री च विश्वदा। विचरन्त्यो यथा कामं येशिन्यः पान्तु बालकम् ॥१६॥ ्वायुवेगा महावेगा सुवेगा वेगवाहिनी।

で書きるとなるなどのは、日本のののでは、日本ののでは、日本

शशिनी हंसिनी हृष्टिः पुष्टिः पौष्टिकसिद्धिदा ॥१७॥ ' दिन्यानुभावाबाहिन्यां योगिन्यः पानतु बालकम्। भ्रमिनी भामिनी नित्या निर्भिन्ना सुभगा गुहा ॥१८॥ क्रीदिनी द्राविणी वामा योगिन्यः पानतु बालकम् । रुद्रशक्तिविनिष्क्रान्तमेकाशीति-क्रमोदितम् ॥१६॥ ं योगिनीष्टन्दमेतद्धि सिद्धविद्याधराऽचितम्। स्कन्दग्रहाधिदैवं तद्बालकं पातु सर्वदा ॥२०॥ ं शङ्कनी रेवती देवी शिखा च मुखमण्डिका। प्रलम्बा पूतनाख्या च कटपूतनिका पुनः ॥२१॥ विजया गामुखी धूम्रा मुण्डमाला तथाऽपरा। श्रधेालम्बा च पद्मा च कुमुद्दाऽप्यथ चाऽम्बिका ॥२२॥ भानिनी चैत्र काली च देवी पेतंग्रुखी तथा। ऐन्द्री मार्जीरेका भूयः कुरुणी च शुभाक्रशा ॥२३॥ क्रालरात्रिश्च माया च छोहिता पिलिपिञ्चिका । भोतारणी चक्रवादा भीषणा दुर्ज्जवापरा ॥ २४ ॥ तापनी कटकोली च मुक्तकेशी महाबला । श्रहङ्कारी जया तद्वदजमेषा त्रिदण्डिका ॥२४॥ रें(दनो मुकुटाभिष्या ललाटा पिङ्गला तथा। शीतला बालिनी चैव तापसी पापराचसी ॥२६॥ ्रमानसा धनदा देवी बलानावर्त्तिनी तथा। 🞾 यग्रुना जातवेदा च मानिनी कलहंसिनी ॥२७॥ बालिका देवद्ती च वायसी यक्तिणी तथा। स्वचंद्रस्दा पालिका चैव वासिनी चाम्बिकेति चगरदा। पश्चाशत् कुळेात्पन्नाश्चतुष्पष्ठि समीरिताः । ये।गिन्या नित्यसन्तुष्टाः स्कन्दाऽवस्मारदेवताः ॥३६॥

, नानारचाधिकारस्था बालकं पान्तु सर्वदा । महालक्ष्मीमेहातङ्गा महासेना महाबला ॥३०॥ ं भहाकम्पा महाभीमा महातेजा महोत्सवा । महासेना महाचएडा मोहिनी वीरनायका ॥३१॥ . एकवीरा विशालाची सुकेशी सुमनास्तथा । मुकेशिनी च सन्तुष्टा दण्डिनी च विलम्बिनी ॥३२॥ भामिनी चाऽथ सौवर्णी सिंहवक्त्रा कटङ्किनी । भ्रमरा चश्चला चम्पा सिद्धिदा च तथाऽपरा ॥३३॥ ्रशातादरी धृतिः स्वाहा स्वधाख्या च सनातनी । शम्बरा च तथा देवी नीलग्रीवा तथाऽम्बिका ॥३४॥ वितला गन्धिनी वामा क्रीडन्ती चैव वाहिनी। कर्षिणी मालती फुन्ला कालकर्णी च चिएडका ॥३५॥ चित्रानना गुहा चेति पार्वती सङ्गतिर्गता पश्चाशत्रवसम्पन्ना शकुनी दैवतिषया ॥३६॥ यागिन्यः कामरूपिएया बालकं पान्तु सर्वदा। विश्वन्तवा प्रभावज्ञा सर्वज्ञा सर्वगा गुहा ॥३७॥ ं दुर्गा सरस्वती ज्येष्ठा श्रेष्ठा पद्मा पराऽपरा प्रमदा रोहिणी शीता पद्धी पहादिनी विभा ॥३८॥ विभृतिर्विततिः शीतिः प्रकृतिप्रमृतियेथा । एता भगवता सृष्टा योगिन्यो योगसिद्धिदाः ॥३६॥ पश्चविंशतिराख्याता रेवती शक्तिगोदरा। जगदाप्यायनकरा बालकं पान्तु सर्वदा ॥४०॥ ्नन्दश्चैवेापनन्दश्च गामितः सुमित्स्तथा। विद्युजिहो महाकालः करालस्तिमिळे।चनः ॥४१॥ विरूपाची गामुखा वडवामुखः। ं तेजहाडा

कालाननः करालश्र शङ्कुकर्णो विभीषणः॥४२॥ एते शकुन्दनोत्पन्ना चीराः षेाडश रास्त्रसाः। पूतना देवता ग्रष्टा बालकं पान्तु सर्वेदा ॥४३॥ विजिणो शक्तिनो चाठ्या दिखडनी खिन्ननी तथा । पाशिनी ध्वजिनी देवी गदिनी शृलिनी परा ॥४४॥ पविनी चक्रिणी चेति सर्वाकारा भयपदाः। एता दिङ्निर्मिता देव्या यागिन्या देवकीत्तिताः ॥४४॥ अधिभूतप्रधाना या पायात्सा शान्तपूत्रना। प्रसन्ना मातरः सर्वी बालकं पान्तु सर्वेदा ॥४६॥ . ध्यथंको जलको भूमा उग्रः स्कन्दश्र कीर्त्तितः। वीरेशाः पितृभिः सृष्टा नैजमेषाधिदेवताः ॥४७॥ पश्चशक्तिमधानास्ते बालकं पान्तु सर्वदा। श्रादित्या वसवा रुद्राः पितरो मरुतस्तथा।।४८॥ मुनया मनवः काला ग्रहयागाः सनातनाः। सिद्धाः साध्याश्च गन्धर्वा देव्यश्चा उप्सरसां वराः ॥४६॥ विद्याधरा महादैत्या बालकं पान्तु सर्वदा। सहजा योगजा चैव वीरजा मन्त्रजा तथा ॥५०॥ योगिन्यो योगवनिता नानाविभवगोचराः। भवानी नाम सन्दृष्टा बालकं पान्तु सर्वदा ॥४१॥ भूलोंके च भुवलोंके स्वलोंके याश्र मातरः। श्राधश्चीर्ध्व च तिर्यक् च क्रीडन्त्योऽनन्तमूर्त्तयः ॥४२॥ भसभयागसम्बना दिन्येश्वर्यसमन्विताः। स्वच्छन्दपदसम्भूतेभेरवैः परिवारिताः ॥५३॥ ्रवानतु बालकं मीताः शान्तिर्भयतु चेतसा । दिव्यं स्तोत्रिमिदं पुर्यं वालरक्ताधिकारकम् अधिका।

#### जपेत्सन्तानरत्तार्थं बालद्रोहापशान्तिदम् ॥ इति बालस्तवः ।

इदं च स्तवान्तं कृत्यमाद्यमासवर्षयोद्धितीयादि दिन-मास-वर्षेष्वपि कार्यं विशेषस्त्च्यते — कुमारतन्त्रे-प्रथमे दिवसे मासे वर्षे वा योगिनी तदा। द्यथवा नन्दिनी नाम्ना पूतनाऽऽक्रमते शिशुम्॥१॥

> तद्ग्रहीतस्य बालस्य ज्वरः स्यात्मथमं ततः। गात्रशोषश्च वैवर्ण्यं नाऽऽहारेच्छा भृशं भवेत्।। २।।

वर्दि-मूच्की च कम्पश्च हीनज्वरयुतस्तथा ।
विधानं तत्र वक्ष्यामि येन मुश्चिति पूतना ॥ ३ ॥
नदी मृत्तिकया कुर्याच्छोभनां पुत्रिकां ततः ।
शुक्कोदनं शुक्कगन्धस्तथा शुक्काऽनुकेपनम् ॥ ४ ॥
शुक्कपुरुपाणि वै पञ्च ध्वजाः पञ्च पदीपिकाः ।

स्वस्तिकाः पश्चपूर्वाह्वे पूर्वस्यां दिशि संयतः ॥ ५॥ बिलं दद्यादया श्वेतसर्पपाशीरमेव वा ।

बाल द्याद्या रक्तसप्पाशारमव वा । शिवनिमीन्य-मार्जार-नृकेशान्त्रिम्बपत्रकम् ॥ ६॥

गृंध्यं घृतं चेत्येतेन धूपयेच्चैव बालकम् । एवं दिनत्रयं कृत्वा चतुर्थे शान्तिवारिणा ॥ ७॥

स्नापयेद्वालकं पथाद्वीजयेचापि भिज्ञकम् ।

न्तीरेण भोजयेदेव ग्रुस्था भवति बालकः ((८॥

शासितवारिणेति शन इन्द्राप्ती शनो वात इत्यादिकैः स्व-स्वश्रासापिढितैमैन्त्रैरिममन्त्रितं वारि शान्तिवारि। श्रथवा वस्यमाण्मनेत्रेण शतकृत्वोऽभिमन्त्रितं वारि शान्तिवारि॥ १॥

द्वितीयदिवसे सासे हायने वा सनन्दना ।
 गृह्णाति पूतना चालं ये।गिनी स्वस्तनाऽपि वा ॥ १॥
 तते। भवेज्यवरः पूर्व सङ्कोचे। हस्त पादयोः।

दन्तान्त्रखाद्रत्यनिशं निमीलयति चचुपी ॥२॥ श्राहारं च न गृह्वाति दिवारात्रं च रोदिति। श्रिचिरागं छर्दनं च भवेद्गीतिः पुनः पुनः ॥ ३॥ क्रशत्वं च प्रजायेत इत्येतिच्छश्चलत्त्रणम् । तग्डुलप्रस्थिपष्टेन विनिर्मायाऽथ पुत्रिकाम् ॥ ४॥ त्रयोदशध्वजा दोषाः स्वस्तिकाय बल्लोदना । प्रस्थप्रमारापिष्टेन सिद्धापूषाश्च मत्स्यकाः ॥ ५ ॥ मांसं चेत्येतदखिलं पश्चिमायां दिशि चिपेत्। पश्चिमार्यां च सन्ध्यायामेतद्दद्याद्दिनत्रयम् ॥६॥ धूपशान्ति-स्नान-ब्राह्मणभोजनानि च पूर्ववत् ॥ २ ॥ तृतीये दिवसे मासे वर्षे वा पूतनाऽभिधा । गृह्वीयाद्योगिनी बालं ततः पूर्व ज्वरा भवेत्।। १।। प्रस्थप्रमारापिष्टेन पुत्रिकां कारयेत्ततः रक्तीद्नं ध्वजा रक्तः स्वस्तिका रक्त एव च ॥२॥ रक्तपुष्पं रक्तगन्धस्तथा रक्ताऽनुकेपनम् पश्चिमायां च सन्ध्यायामुदीच्यां निच्चिपेद्वलिम् ॥ ३ ॥ धूपशान्ति-स्नान-ब्राह्मणभोजनानि च पूर्ववत् ॥ ३ ॥ चतुर्थेऽहिन मासे तु वर्षे गृह्णाति बालकम्। द्वपगण्डनिका नाम पूतना चाऽथ यागिनी ॥१॥ भीषणाख्या ततस्तस्य जायते प्रथमं ज्वरः। गात्रभङ्गो स्थितिर्भूद्धी वैवएर्य चाऽिचमीलनम् ॥ २॥ वैकर्णं स्यामता श्वासः कासो रुचिरितिङ्गितम्। तिलिपिष्टमयैः कत्वा पुत्रिकां विन्वकएटकैः॥३॥ **्श्रष्टाङ्ग**ः रचयेत्पुष्प-युक्तं ेशुक्रध्वजोऽर्जुनः। स्वस्तिकाऽर्द्रमस्थिताउं भक्तं तावदपूरकाः ॥ ४॥

त्रिसन्ध्यं पश्चिमाऽऽशायां बर्लि दद्यास्प्रयत्नतः। ताबद्यूपका इति अर्द्धप्रस्थपरमितेना उन्तेन कृता इत्यर्थः । ग्रोश्वद्गं सर्पनिर्मोकं लशुनं निम्बपत्रकम् ॥ ५ ॥ मजुष्यकेश⊢मार्जार−छे।मान्याज−घृतं तथा एतैश्र धृपयेदेकनिशि सन्ध्यात्रयेऽपि च एकनिशि एकस्मिन्नेव दिने बलिरित्यर्थः । शान्तिस्नानमन्त्रब्राह्मणुभोजनानि च पूर्ववत् ॥ ४ ॥ पश्चमे दिवसे मासे वर्षे वा पूतना शिशुम्। , विडालिकारूया गृह्वीयात्पथमं जायते ज्वरः ॥ १ ॥ हिका श्वासश्च श्रूलं च गात्रभक्को रुचिस्तथा। निर्मायाऽथारुपुत्रिकाम्।। २॥ त्राडुलप्रस्थिषष्ट्रेन शुक्लोदनं ध्वजाःपञ्च स्वस्तिकाः पञ्च चेाज्ज्वलाः। पञ्च दे। पास्रशुक्कानि कुसुमानि च चन्दनम् ॥ ३॥ श्चपराह्वे दृत्तमूरुं पश्चिमायां दिशि त्तिपेत्। धूपस्तु गोश्टङ्गं लशुनमित्यादिकः। शान्तिस्नानमन्त्रवाह्मणभोजनानि ॥ ४ ॥ षष्ठेऽहनि तथा मासे हायने चापि बालकम्। पूतना शक्कनीर्नाम गृह्णीयात्तदनन्तरम् ॥ १ ॥ ज्वर उद्वेजनं गात्रे शोषः श्वासे।ऽरुचिस्तथा। काशश्च हस्त-पादा-ऽज्ञिसङ्कोचश्चेति लज्ञणम् ॥ २ ॥ तगडुलपस्थिपष्टेन विनिर्मायाऽथ पुत्रिकाम्। कुष्णादनं ध्वजाः पश्च कुष्णाः स्वस्तिकपञ्चकम् ॥ ३॥ कुष्णमेवाऽथः मतस्यांश्रः पायसं दुग्धमेव च । 🧈 ः मांसं 📁 चाऽपूपकास्त्वर्द्धपस्थिषष्टविनिर्मिताः ॥ ४ ॥ अपराह्ये पश्चिमायां नित्तिपेद्धलिपुत्रिकाम्। ुपुत्रिकां पूर्ववत्कृत्वा प्रजलं शूलपाचितम् ॥ ५ ॥

मत्स्याः पर्पदिकाश्चैव एक्तं च प्रस्थसम्मितम्। उदीच्यां पूर्वसन्ध्यायां बितार्देयः मशान्तये।। ६।। अत्र वलिदानयोविंकल्पः । तयोरेव कालयोवांलकस्य धूपो देयः गोश्टङ्गलग्रनमित्यादिकः। तथा शान्तिस्नानं ब्राह्मणभोजनं च॥०॥ बलिदानपूजायां मन्त्रस्तु — ॐ फट् २ स्वाद्वा ।

सप्तमे दिवसे मासे वर्षे वा शुष्करेवती। गृह्याति पूतना वालं ततः स्यात्प्रथमं ज्वरः॥१॥ गात्रभक्कोऽथ विद्वेष स्थाहारे कस्परादने। इत्येतन्त्वत्तर्यं तत्र बलिर्देयः प्रशान्तये ॥ २ ॥ पस्थसम्मितविष्टेन सम्यक् कृत्वाऽथ पुत्रिकाम् । सप्त प्रजाः सप्त दीपाः स्वस्तिकाः सप्त वैतथा।। ३।। पुष्पांखि मत्स्य-मांसं च भक्तं चेत्युदगाहरेत्। धूपस्तु गोश्टक्कलश्चनमित्यादिकः। शान्तिस्नानं ब्राह्मणक्षोजनम्।

मन्त्रस्तु-ॐ हीं फट् स्वाहा।

श्रष्टमे दिवसे मासे वर्षे चाऽऽक्रमते शिशुम्। विडालिका नामधेया पूतनाऽस्य ततो ज्वरः ॥ १ ॥ गात्रभेदोऽत्र रुदितं रोदनं नेत्रमीलनम्। जिहाशोषः शिरस्फाट आहारद्वेष एव च ॥ २॥ श्रक्तिरागो भवेदेतदिक्कितं तद्दग्रहारिखशोः। तग्डलपस्थिपष्टेन पुत्तलां कारयेत्ततः ॥ ३ ॥ पायसं मधु-सर्पिश्च चीर-लाजाश्च शष्कुली । गुग्गुर्स मेषमांसं च तथा पर्षेटिका श्रवि॥ ४॥ ध्वजा दोपाश्च चत्वारे। गन्धा नानाविधा श्रपि । ्र सुमनांसि च रक्तानीत्येवं मन्त्रोदितो विताः ॥ ५॥ त्रमुं समाद्देत्पूर्व सन्ध्यायां दिच्चिणादिश्चि। कृष्णाः इस्यां वक्ष्यमाणा-मन्त्रेषाऽनेन सुंयतः ॥ ६॥

ॐ नमो नारायणाय त्रैलोक्यविद्व(वणाय । ॐ हीं फट् स्वाहा । श्रनेनैव च मन्त्रेण पूजादिबलिहरणान्तं कर्म कुर्यात् । धूपस्तु गोश्टङ्ग-लश्चनित्यादिकः । शान्तिस्नानं ब्राह्मणभोजनं च । श्रत्र कृष्णाष्टम्यां बलिहरणमिति न नियमार्थम् । किन्तु स्नति सम्भवे प्राशस्त्यार्थम् । श्रन्थथा तत्प्रतीत्तायां शिश्चविनाशापत्तेः ॥ = ॥

नवमे दिवसे मासे हायने वाऽिष वालकम् ।

गृह्वाति मदना नाम्नी पूतना तदनन्तरम् ॥ १ ॥

व्वरश्छिद्वियाऽऽध्मानं कास-श्वासश्च तृष्णता ।

गात्रभङ्गश्च शूलं च चिह्नान्येतानि वालके ॥ २ ॥

प्रस्थमात्रेण षिष्टेन विनिर्माय च पुत्रिकाम् ।

श्रोदनं मत्स्य-मांसं च पपेटीं चेज्रुमृलिकाम् ॥ ३ ॥

निच्चिपेत्पूर्वसन्ध्यायाम्रत्तरस्यां विलं दिशि ।

श्रत्र मन्त्रः—ॐ नमी भगवते वासुदेवाय कृष्णमण्डले बलिमा-दाय हर हुं फट् स्वाहा । धूपस्तु गोश्टङ्गलश्चनमित्यादिकः। शान्ति-स्नानं ब्राह्मणुभोजनं च ॥६॥

दशमे दिवसे मासे हायने वाज्य बालकम्।
पूतना रेवती नाम्ना गृह्णीयाद्वालकं ततः ॥१॥
प्वारः छिदः कास-श्वासौ ग्रूलं चेत्येतदीरितम्।
यत्र द्वेषश्च तत्राज्यं बिलर्देयो विचत्तणैः ॥२॥
प्रस्थममाणिष्टेन पुत्रिकां तत्र मकल्पयेत् ।
ग्रहाङ्गं छेखयेत्तत्र विन्वदृत्तस्य कण्टकैः ॥३॥
गुडादनं च सर्पिश्च ध्वजानां पश्चविंशतिः ।
स्वस्तिकानां पदीपानां पश्चविंशतिरेव च ॥४॥
चत्वारि रक्तपुष्पणि होतदित्तणदिग्गतः ।
सम्ध्यात्रये वक्ष्यमाण-मन्त्रेणाज्नेन निक्तिपेत् ॥ ५॥

श्रत्र मन्त्रः—ॐ नमो भगवते वासुदेवाय हनः हुं फट् स्वाहा । धूपो गोश्टङ्गलश्चनमित्यादिकः। शान्तिस्नानं ब्राह्मणभोजनं च ॥१०॥ एकादशदिने मासे हायने पूतनाऽर्चिका ।

गृह्णाति बालकं पश्चाज्जवरस्तस्य प्रजायते ॥ १ ॥

ग्राम्मद्रेषो मुखे शोषो गात्रभङ्गश्च रोदनम् ।

जध्वदृष्टिरपीत्येतन्त्वत्तर्या तद्गृहाच्छिशोः ॥ २ ॥

पुत्रिका माषपिष्टेन रचित्वा ग्रुक्कमोदनम् ।

पुष्पाएयपि च ग्रुक्कानि ध्वजानां पञ्चविशतिः ॥ ३ ॥

स्वस्तिकानां पदीपानां पश्चविशतिरेव च ।

एतत्सर्वे यमाशायां सन्ध्यायां प्रातराहरेत् ॥ ४ ॥

ग्राम्मद्रान्य ॐ नमो भगवते ताराय चन्द्रद्वास बज्रहस्ताय ज्वल द्रुष्टग्रहाय ॐ कद स्वाहा । धूपस्तु गोश्चङ्गलग्रुनित्यादिकः ।

शान्तिस्नानं ग्राह्मणभोजनं च । प्रथमदिवस मास वर्षग्रहीतपूतनाहरोक्तं द्रुष्ट्यम् ॥ ११ ॥

द्वादशे दिवसे मासे वर्षे या पूतना शिशुम्।
अद्भुताख्या प्रगृह्णाति ज्वरः स्यात्प्रथमं ततः ॥ १ ॥
रे।दनं सर्वदा दन्त-खादनं रक्तनेत्रता।
रे।माञ्चास्ताप इत्येतदिखलं तस्य लक्षाणम् ॥ २ ॥
तण्डुलप्रस्थिपच्टेन कृत्वा तन्नाम पुत्रिकाम् ।
त्रयोदश स्वस्तिकाश्चा ध्वजा दीपास्त्रयोदश ॥ ३ ॥
त्रयोदश स्वस्तिकाश्चा ध्वजा दीपास्त्रयोदश ॥ ३ ॥
त्रपूपा मत्स्य-मांसं चा तथा पपटिका श्रपि ।
एतत्सर्व दिक्षाणस्यां दिशि मन्त्रेण निक्षिपेत् ॥ ४ ॥
मन्त्रस्तु—ॐ नमो नारायणाय व्वल वज्रहस्ताय हर हर शोषय २ मर्दय २ पातय हन हन दुष्टसत्वानां हुँ फट् स्वाहा। गोश्यक्षमत्यादिको धूपः। शान्तिस्नानं ब्राह्मणभोजनं च ॥ १२ ॥

अथ बौधायनोक्ता ज्वराद्युत्पत्ती शान्तयः।

प्रतिपदि कष्टं सन्देहो वा दिनान्यष्टादश । अग्निदेवता अग्निर-स्मीति पुजामन्त्रः । हैमीप्रतिमा । घृत-धूपो घृत-दीपश्च । यथान् । सम्भवं नैवेद्यं घृतं होमद्रव्यं शान्तिर्भवति । श्रत्र सर्वत्र प्रथमं तत्त-चिथिदेवतामन्त्रजायः। सहस्रादि-सङ्ख्याकः पश्चात्पूजा-होमदानादि-होमसंख्या चाऽष्टोत्तरशतादिव्याधितारतम्येन कल्प्या । सहस्रां मृत्युनिर्देशः ॥ १ ॥ द्वितीयायां दिनानि षोडश ब्रह्मा देवता ब्रह्म-जज्ञानमिति जप-पूजा-होममन्त्रः । अगुरुधू पः घृतदीपः सवत्र शर्करानैवेद्यं तिल-यवा-ऽऽज्यानि होमद्रव्यं प्रतिमा च हैमी॥२॥ तृतीयायां दिनानि नवपार्वत।देवता गौरोर्मिमायेति मन्त्रः। दूर्वाभिः पूजा कुङ्कुम-धूपः । गुग्गुलुर्वा धूपो घृतदीपः । द्वाचा चीराऽऽज्यं नैवेद्यम् । पायसं मधुराकं दूर्वाश्च होमद्रव्यं प्रतिमा हैमी॥३॥ चतुर्थ्या दिनानि षोडशगणपतिर्देवता गणानान्त्वेति पूजा होमादि-मन्त्रः । हैमीप्रतिमा कुङ्कुमं रक्तचन्दनं गन्धः करवीरादीनि पुष्पाणि अगुरुधू पो घृतदीपो लड्डुका इत्तुखएडानि नैवेद्यं नारिकेर-शकलानि कदलीफलानि च होमद्रव्यम् ॥ ४॥ पश्चम्यां दिनान्येकः विश्वतिनांगा देवताः हैमीप्रतिमा नमोऽस्तु सर्पेभ्य इति मन्त्रः । चन्दनं गन्धः सुरभिषुष्पाणि घृत-धूपः पयो नैवेद्यं तिल-यवाऽऽज्य-पायस-शर्क्करा-मधुनि यथायोगं होमद्रव्यम् ॥ ४॥ षष्टयां दिनानि द्वादश स्कन्दो देवता द्रप्सश्च स्कन्देति पूजामन्त्रः । पीतं चन्दनं रकं वा गन्धः रक्तानि पुष्पाणि जातीपुष्पाणि वा । जटामांसी धूपः । लड्डुकादिनैवेद्यं फलानि वा तिल यवाऽऽज्यं होमद्रव्यं हैमीप्रतिमा शान्तिभवति ॥ ६ ॥ सप्तम्यां दिनान्यष्टी दिननाथो देवता । आस-त्येन श्राकृष्णेनेति वा मन्त्रः । हैमी ताम्रजा वा प्रतिमा कुङ्कुमं गन्धः करवीरादोनि पुष्पाणि गुग्गुलो धूपः शर्कराघृतसंयुतं पायसं नानाफलानि च नैवेद्यमर्कसमिधः पायसं होमद्रव्यम् ॥ ७ ॥

श्रष्टम्यां दिनानि त्रयोदश ईश्वरो देवता तमाशानमिति पूजा-मन्त्रः। राजती प्रतिमा कर्पूरमिश्रितं चन्दनं गन्धः विख्वदलानि श्रक्षंपुष्पाणि नालीत्पलानि च पुष्पाणि । जटामांसी धूपः पायसं नानाभन्ताश्च नैवेद्यं मधुराकास्तिला होमद्रव्यं साङ्गशान्तिर्भवति ॥ ॥ नवम्यां दिनान्यष्टादश भगवती दुर्गादेवता जातवेदस इति पूजा-मन्त्रः । हैमीप्रतिमा रक्तं चन्दनं गन्धः कुङ्कुमादिकं वा। जपा-कुसुमादिकं पुष्पं गुग्गुलुधू पः घृतपकः नैवेद्यं त्रिमधुराक्तं पायसं होमद्रुद्धं देव्यं दिधनकपात्रदानं तद्भकाय वा॥ ६॥ दशम्यां दिनानि पञ्चविंशतिः यमो देवता हैमी लौही वा प्रतिमा यमाय त्वेति पूजा-मन्त्रः। चन्दनं मृगमदश्च गन्धः मधुसर्ज्जरसश्च धूपः तिलतैलदीपः। विल्वपत्राणि कृष्णितिलाश्च पूजाद्रव्यं कृशराम्नं नैवेदां घृतं मधु-तिल-मुदुगा होमद्रव्यम् ॥ १० ॥ एकादश्यां दिनानि सप्त विश्वेदेवा देवता विश्वे देवास इति मन्त्रः हैमी प्रतिमा श्वेतचन्दनगन्धः कृष्णाऽगुरु-धूपः घृतदीपः तुलसीपत्राणि पूजायां यवमोदकं नैवेद्यं तिल-यव-म-ध्वाज्यं होमद्रव्यम् ॥ ११ ॥ द्वादश्यां दिनानि दश रुद्रो देवता या ते रुद्रेति मन्त्रः। हैमीप्रतिमा चन्दनं श्रीखएडं श्रगुरुधू पो घृतदीपः पा-यसं नैवेद्यं चम्पकं पुष्पं कमलं वा । पूजायां तिल-यवा-ऽऽल्य-ब्रीहि-मधूनि होमद्रव्यं शान्तिर्भवति ॥ १२ ॥ त्रयोदश्यां दिनान्यष्टी शशी देवता रीक्मी राजती वा मूर्तिः श्राप्यायस्वेति मन्त्रः। पूजादी श्वेतचन्दनं गन्धः चन्दनधूपः घृतदीपः। दिध-शर्करा-नैवेद्यं तिल-यवास्त्रिमध्वका होमद्रव्यं शान्तिर्भवति ॥ १३ ॥ चतुर्दश्यां दिनानि द्वाविंशितः शम्भुर्देवता शम्भवायेति मन्त्रः। रीक्मी राजती वा मूर्तिः श्वेतचन्दनं गन्धः, श्रकंपुष्पं विल्वदलानि वा श्रगुरुधूपः पायसं नैवेद्यं त्रिमध्वकास्तिला होमद्रव्यम् ॥ १४ ॥

श्चमायां दिनान्यष्टादश शचीदेवता होता यत्तदिति मन्त्रः। हैमो प्रतिमा कुङ्कुमादि गन्धः नानासुगन्धपुष्पाणि कृष्णाऽगुरुधूपः फेणिका-पुरिकादिनैवेद्यं शर्कराष्ट्रतपायसं होमद्रव्यम् ॥१४॥

पूर्णिमायां दिनानि षोडश चन्द्रो देवता दमनकं पूजार्थमन्यत्सर्वे श्रयोदशीशान्तावुक्तं प्राह्मम् ॥ १६ ॥ इति दोषशान्तिः ।

#### श्रथाऽऽश्वलायनोक्ता वारशान्तिः ।

श्चादित्यवारस्य रुद्रो देवता या ते रुद्रेति मन्त्रः हैमी राजती वा मूर्तिः चन्दनं गन्धः श्रगुरुधू पः घृतदीपः पायसं नैवेदां होम-द्रुव्यं च ॥ १ ॥

सोमवारस्य पार्वतीदेवता गौरीर्मिमायैति मन्त्रः हैमी राजती षा मूर्तिः कुङ्कुमगन्धः सुगन्धिपुष्पम् । श्रगुरुधूपः । घृतदीपः । नानाभदयाणि नैवेधं तिलयवा होमद्रव्यं देवभक्तसन्तर्पणं च ॥ २ ॥

भीमस्य स्कन्दो देवताऽन्यत्सर्वे पष्टीशान्तिवत् ॥ ३ ॥

बुधवारस्य विष्णुर्देवता विष्णो रराटमसीति मन्त्रः । हैमं स्वरूपं पीतचन्दनं पीतपुष्पाणि कमलानि च श्रगुरुधू पो घृतदीपः यव-लड्डुका नैवेद्यं तिल-यवा ऽऽज्यहोमः ॥ ४ ॥

गुरुवासरस्य ब्रह्मादेवता ब्रह्म जज्ञानिमिति मन्त्रः । हैमी प्रतिमा कुङ्कुमगन्धः पर्णेपुष्पं गुग्गुलुधू पः शर्कराऽऽज्यं नैवेद्यं तिल-यव-धाना घृतं होमद्रव्यम् ॥ ४ ॥

श्रुक्रवासस्य इन्द्रो देवता त्रातारिमन्द्रिमिति मन्त्रः हैमी राजती वा मूर्तिः चन्दनं गन्धः चम्पकं पुष्पं श्रगुरुधूपः घृतपक्वं नैवेद्यं तिल-यवाऽऽज्यं मधूनि होमद्रज्यम् ॥ ६॥

शनिवारस्य यमो देवता यमेन दत्तमिति मन्त्रः हैमी लौही वा मूर्तिः । ताम्रजेति केचित् । चन्दनगन्धः पुष्पं कृष्णं मधु धूपः तिल-तैलदीपः । मधु-मत्स्याश्च नैवेद्यं तिला मधु च होमद्रव्यं शान्ति-भवति ॥ ७ ॥ इति वारशान्तयः ।

#### अथ नत्त्रशान्तयः।

द्वदिशिष्ठः-रोगशान्ति प्रवक्ष्यामि रोगार्त्तानां शरीरिणाम् । वलिपूजाङ्गहोमैश्च जपब्राह्मणभोजनैः ॥ १॥ यस्मिन् धिष्एये यदा न्एां रोगः सञ्जायते तदा । तिद्धष्यपूजा कर्चव्या तत्तदीश्वरतृष्ट्ये ।। २ ।। सुवर्णेन ममारोन तद्द्धीऽर्द्धेन वा पुनः। धिष्ण्येशपतिमा कल्प्या यथावित्तानुसारतः ॥ ३॥ ईशान्यामथवा पाच्यामुदीच्यां दिशि संतिखेत्। तगडुछेापर्यष्टदत्तं पर्व गामयमग्रह ले पश्चामृतैः सलेपेश्च तत्तनमन्त्रैः पृथक् पृथक् । स्नाप्य कल्पेक्तमन्त्रेण प्रतिमां स्थापयेत्युनः ॥ ५॥ किंगिकायां सुसंस्थाप्य ध्यास्वा देवं समर्चेयेत्। तद्वर्णवस्त्रगन्धाद्यै रसम्प्रेपोपहारकैः मारक्तवर्ण कुम्भं व पश्चत्वक् पन्तवेर्युतम्।

्र शुक्कवस्त्र-स्वर्णेरत्न-सर्वोषधि-समन्वितम् ॥ ७॥ मृत्वञ्च गव्य-सद्दोज-फल-चौद्र-कुशान्वितम् । देवस्य पूर्वतः स्थाप्यं जलमन्त्रैः समर्चयेत्।। ८॥ पतीच्यां स्थिपिडले विद्याविष्यतस्थापयेचातः। मुखान्ते जुहुयादुक्त-द्रव्येणाऽष्ट्रसहस्रकम् ॥ ६ ॥ तिलहोमं व्याहृतिभिर्ष्टाचारसहस्रक्षम् । पूर्णाहुति च जुहुयात्सम्यक्-जपादिपूर्वेकम् ॥१०॥ ततः शुद्धोपविष्टस्य रागियाः पाड्यसस्य च। मन्त्रपूर्तः कुम्भजलौरब्लिङ्गविरिमन्त्रकः ॥११॥ ्मार्जनं कारयेशस्य सम्यक् सङ्कल्पपूर्वेकम् । नीराजनं च शुद्धात्मा पूजास्थानं समागतः ॥१२॥ देवं हुताशनं भक्तया प्रसम्य पार्थयेदिति। श्रमृतोद्भवधिष्णयेश । यतस्त्वं शङ्करात्मकः ॥१३॥ रागादस्माच मां रत्त तव वश्यश्र धिष्एयपः। इति पार्थ्यं ततो दद्यात्मतिमां वस्त्रसंयुताम् ॥१४॥ दित्तिणासहितां भक्तचा आचार्याय कुटुम्बिने। बाह्यणाय यथाशक्तचा बाह्यणान भेाजयेत्ततः॥१५॥ कुरवा नचत्रपूजान्तं तिथिवासरयारि । सर्वान्कामानवामोति रोगी रोगात्मग्रुच्यते ॥१६॥ अश्विन्यामुत्थितो व्याधिनवरात्रेण मुञ्जति । देवस्य त्वेति मन्त्रस्य गायत्री कश्यपे।ऽश्विनौ ॥१७॥ श्वेतवणौ सुधापूर्ण-कलशाम्भाजधरौ पृथक्। चन्दनात्वल-पुष्पा-ऽऽज्य-ग्रग्गुली तु गुडमियी ।।१८।। चीर लट्डकभोकारी समिधः चीरद्वचाः । गुरोदनबिंदा द्यादीपैः सार्द्ध निशास्त्रे ॥१९॥ (१)

The state of the s

भरण्याम्रित्थते। व्याधिर्**चिरात्रिधनप्रदः ।** मासेन मुश्रात्यथवा देवस्य कुष्टिला गतिः ॥२०॥ त्रैयम्बकस्य मन्त्रस्य प्रोक्ताश्छन्द्षिदेवताः । गन्धोऽगरुकरवीरं पुष्पं धृपश्च गुग्गुलः ॥२१॥ अष्ट्रीपं च सर्वेषां नैवेद्यं च गुडौदनम् । 🔑 पाशद्यडघरो रक्तस्त्वाज्य-मध्वाचतेहिकः ॥२२॥ ं महिषीनायकारूढः कुसरान्नं बर्लि हरेत् । वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण बलि सम्यक् मदापयेत् ॥२३॥ (२) कृतिकासृत्थिता व्याधिदेशरात्रेण सुञ्चति । सुक् सुवाभयवरदः स्ववणीं मेषवाहनः ॥२४॥ मेथातिथिर्जगत्यग्री पुनन्तु मामित्यस्य च 📙 🤃 चन्दनं यथिकापुष्प-घृत-दीपः सुगुग्गुलुः ॥२५॥ 🗇 नैवेद्यं तिलागात्रात्रं वरकात्रेन संयुत्म् । गुडे।दनं इविस्तत्र पायसेन बलिं इरेत् ॥२६॥(३) रे।हिएयाम्रुत्थितो व्याधिदेशरात्रेण मुञ्चति । नमा ब्रह्मणुमन्त्रस्य गायत्रीविधिरीश्वरः ॥२७॥ शुक्राः कमगढल् स्त्वन्न-सूत्राभयवरपदः । चन्दनं कमलं पुष्पं स दशाङ्गं च गुग्गुलम् ॥२०॥ िनैवेद्यं पायसं साऽऽज्यं सर्वदाः तेई विभवेद् । 🕢 दधि-चीर-छृत-चौद्र-शान्यनेन बर्लि हरेत् ॥२६॥ (४) चन्द्रभे चेल्थिता व्याधिः पञ्चरात्रेण ग्रुञ्चति । 🤛 गदावरदपार्शिश्व श्वेतो सौरथवाहनः ॥३०॥ नवे। नवे। भवत्यस्य गायत्री गौतमः शशी। चन्दनं कुम्रुदं पुष्पं 🖺 दशाङ्गं पायसे दनम् ॥३१॥ नेषेचं मण्डका-ऽपूप-घृत-चौद्रसमन्वितम् ।

शक्ता-दक्षिणिश्रेण शुक्रानेन वर्ति हरेत्।।३२॥(५) आद्रीयामुत्यितो व्याधिरचिरात्रिधनपदः मासेन मुझत्यथवा दैवस्य कुटिला गतिः ॥३३॥ शुद्धस्फटिकसङ्काश-ग्रुत्तखड्गाभयेष्टदः नमः शङ्करायेत्यस्य बृहतीशो विधी ऋषिः ॥३४॥ चन्दनं सीरभं पुष्पं दशाङ्गं पायसोदनम् । सन्मध्वाज्यं इविस्तत्र दध्योदनवर्ति हरेत् ॥३५॥(६) ् पुनर्वसौ भवेद्व्याधीनवरात्रेण ग्रुञ्चति । कमण्डन्बन्तसूत्रेध्पदभीसुक्सुवशृत् सदा ॥३६॥ श्रदितिचौंश्र मन्त्रस्य त्रिष्टुभो द्रुहिणोऽदितिः। हरिद्रा-कुङ्कुमं गन्धं पुष्पं सेवन्तिकाह्नयम् ॥३७॥ धूपी मलयजं पिष्टं घृतान्नं पीतवर्णकम् । घृताक्ततग्रहुलहिंवः पीताऽन्नेन बलि हरेत् ।।३८।।(७) ्र पुष्ये सम्रुत्थितो व्याधिः सप्तरात्रेण मुश्चति । पीतो दगड-कमण्डन्वत्त - सूत्राभयवरोद्यतः ॥३६॥ बृहस्पते परीत्यस्य त्रिष्टुप् जीवोऽङ्गिरा ऋषिः। कुङ्कुमं वारिजं पुष्पं नैवेद्यं घृतपायसम् ॥४०॥ मर्ग्डका-गुडसंयुक्तमेतदेव इविभवेत् समग्डक-घृतान्त्रेन धलिं तत्र मदापयेत् ॥४९॥(८) ् आरछेवास् त्थितो व्याधिः क्लेशान्मासेन सुञ्चति । नमो श्रस्तिवति मन्त्रस्य विराडग्निश्च सर्पराट् ॥४२॥ मधुवर्णी भोगयुक्तः खङ्गचर्मधरः शुभः सकुङ्कुमाऽगरुर्गन्धपुष्पं चाऽगस्तिसम्भवम् ॥४३॥ घृत गुग्गुल-धूपोऽत्र नैवेद्यं चीर-सर्विषा इविः साज्यं सुदध्यनं दध्योदनवर्ति हरेत् ॥४४॥(६)

मघायां चोत्थितो व्याधिरचिरान्निधनप्रदःा श्रथवा सार्द्धमासेन धूम्रो दएडपवित्रधृक् ॥४४॥ अ।यन्तु निस्त्वति चाऽस्य जगती वितरोत्तजः। चन्दनं चम्पकं पुष्पं घूपः सप्तृत गुगगुलः ।।४६॥ नैवेद्यं घृतिषष्टात्रं तिलांड्यं सघृतं हविः । सतिलान्नं च ग्रुद्गान्नं बुलि च पितृतुप्तये ॥४७॥(१०) पूर्वाफान्ग्रनभे व्याधिरर्द्धमासेन मुश्चित । भग एव भगवानित्यस्याऽतुष्दुप् भगो विश्विः ॥४८॥ यथाऽभयकरः पद्म-वर्णः सिंहासने स्थितः। चन्दनं पालतीपुष्पं विन्व दीपो घृतोदनम् ॥४६॥ नैवेद्यं शर्करायूथलड्डकाभिश्च संयुतम् । घृतांदनं इविस्तत्रे पायसेन बिलं हरेत् ॥५०॥ (११) द्यर्यमर्चे भवेद्व्याधिरद्धमासेन गुञ्चति पद्मवर्णः पद्मसंस्थः पद्मगर्भसमद्युतिः ॥५१॥ श्चर्यमायाति मन्त्रस्य श्चर्यमा त्रिष्टुवज्वनः । कर्पूरं कुङ्कुमं गन्धं पुष्पं धूपकसंज्ञकम् ।।५२।। घृत गुग्गुल-धूपे।ऽत्र नैवेद्यं घृतपायसम् । होमद्रन्यं घृतांऽनं स्याच्छान्यनेन वित्तं हरेत् ॥५२॥(१२) इस्ते सम्रुत्थिता व्याधिनवरात्रेण मुञ्चति । **उदुत्यमिति हिर्**एयस्तूपे। गायत्र्याऽदितिर्जपेत् ॥५४॥ रक्तगन्धं कुङ्कुमं च प्रुष्पं राजीवसंज्ञकम् । स-गन्धगुग्गुळा घूपा नेवेद्यं घृतपायसम् ॥४५॥ मधुपुष्पं तिला-ऽऽज्या-मं द्वीभिः सहितं हविः। गुड-शकर-मध्वाज्यपिष्ठाऽन्नेन बिलं हरेत् ॥५६॥ (१३) चित्रायाम्रुत्थिता व्याधिर्देशरात्रेण मुञ्चति । 🥊

चित्रं देवानामित्यस्य त्वष्टाऽनुष्टुष् पितामहः ॥५७॥ श्रनसूत्राभयकरश्चित्रवर्णः शिवे रतः स-कुङ्कुमाऽगरुगेन्ध-कुसुमं चित्रवर्णकम् नैवेद्यं मादकान्नाऽऽज्यं चित्राऽन्नं स-घृतं हविः। दद्यात्सर्वरागापनुत्तये । ५६॥ (१४) बलिं ं स्वात्यत्ते चेात्थिते। व्याधिः सर्वदा निधनपदः । एक-द्वि-त्रि-चतुः-पञ्चामासैर्वाऽपि विग्रुञ्चति ॥६०॥ सः नः पितेति मन्त्रस्य गायत्री मरुदङ्गिराः। खड्गचार्मधरः कुष्णाे गन्धः कृष्णाऽगरुभ्रेशम् ॥६१॥ पुष्पं दमनकं धूपः चन्दनाऽग्रहगुग्गुलुः नैवेद्यं पायसं साऽऽज्यं हविस्तेन बर्लि हरेत् ॥६२॥(१५) ्रिद्विदेवभे भवेद्व्याधिर्मासेनैकेन ग्रुश्चति । 😅 इन्द्रायी श्रागतमिति गायत्री वाडस्य चैव हि ॥६३॥ मधुच्छन्द ऋषोन्द्राग्नी तयोध्यनिं चा पूर्ववत्। श्रीखण्डकुङ्कुमं गन्धं तयोः पुष्पं सरोष्हम् ॥६४॥ देवदारुस्तये।धूपे। नैवेद्यं घृतपायसम् तदेवाउन्नं इविस्तत्र चित्राउन्नेन बलि हरेत् ॥६५॥ (१६) 🥬 प्रित्रभे चेास्थिता व्याधिर्दशरात्रेण मुझ्चति । मित्रस्य चर्षणीरेति गायजी चाऽस्य चैव हि ॥६६॥ ऋषिर्हिरएयस्तूपाख्यस्तत्र मित्राऽधिदेवता । द्विञ्जाः पद्मगर्भाभः पद्मभृत् पद्मसंस्थितः ॥६७॥ कुङ्कुमं पुगडरीकारूयं पुष्पं घूपं च चन्दनम्। नैवेद्यं पायसं साऽऽज्यं हविः कन्दं च सुरणम् ॥६८॥ वित्रतंत्र पदातव्यो मधु-शर्कर-पायसम् घृत पूरक माषाऽन्नं ग्रुद्गमभैंथ संयुतम् ॥६६॥(१७)

ज्येष्ठायाम्रुत्थितो व्याधिर्मृत्युरेव न संशयः श्रथवा मासमेकं वा मुञ्चत्येव न संश्वयः ॥७०॥ इन्द्रं च इति मनत्रेस्य गायत्रीन्द्रोऽक्किरा ऋषिः। इन्द्राय पूर्ववद्गन्धं च चन्दनं कुसुमं शुभम् ॥७१॥ कर्पूरधूपो नैवेद्यं चित्राऽन्नं सुमनोहरम् । इविस्तु सूर्णं कन्दं मधु-कन्दं सुपायसम् ॥७२॥ विचित्र-पुष्पगन्धेन दध्यक्षेन बर्लि इरेत । (१८) मुलभे चोत्थितो व्याधिमीसाऽर्द्धेन विमुश्चिति ॥७३॥ खङ्गचर्मधरः कृष्णः करालवदनः प्रभुः । मोषुणोऽस्य च गायत्री घोरः कणवोऽथ नैऋतिः। ७४॥ गन्धः कृष्णाऽगरुः पुष्पं पद्मं नीलोत्पलं शुभम् । ध्रयः कृष्णाऽगरुमीषमिश्रान्त्रप्रुपहारकम् ॥७५॥ तदेवाऽन्नं इविस्तत्र माषाऽन्नेव बलि हरेत् । वारिभे चोत्थितो व्याधि रोगिणो निधनप्रदः ॥७६॥ विग्रुश्चत्यथवा मासैर्द्धि-त्रि-षड्-नव-सप्तभिः श्राप्यायस्वेति मन्त्रस्य गायनी पद्मजो जलम् ॥७७॥ मुवर्णो द्विभुजः पद्म-पाणिर्गन्धस्तु चन्दनम् । ्ृ पद्मं ूशैलेय-धूपोऽत्र नैवेद्यं घृतपायसम् ।।७**⊏**।। हिवर्मसूरिष्टानें तदन्नेन बर्लि हरेत् । (२०) विश्वभे चोत्थिता व्याधिः सार्द्धमासेन मुश्रति ॥७६॥ विश्वेदेवास इत्यस्य गायत्र्या विश्वदेवता । क्रमग्रहल्वभयाम्भोजवरदश्च क्रुशासनः चन्दनं कमलं पुष्पं धूपं सप्ततः गुग्गुलुः। नैवेद्यं पायसाऽऽज्यानं हविरप्येतदेव हि । **८१**॥ समिज्रिनिचुलैः सार्दे तदश्चेन बिलं हरेत् । (२१)

श्रवणे चोत्थितो ब्याधिर्दशरात्रेण मुश्र**त** ॥८२॥ श्रतो देवेति मन्त्रस्य गायत्री पद्मजो हिरः। पीताम्बरः कृष्णवर्णः शङ्खचक्रगदाम्बुजः ॥⊏३॥ चन्दनं मालतीपुष्पं घूपः कपूरगुग्तः शाल्य**नं** षड्सोपेतं भक्ष्य-भोज्यादिभिः सह ॥८४॥ नैषेद्यं इविरप्येतत्पायसेन बर्लि इरेत् । (२२) ः, वसुभे चोत्थितो व्याधिर्दशरात्रीण सुश्चति ॥८५॥ शपन्ताभिति मन्त्रस्याऽनुष्टुब् व्यासो वसुस्ततः। चाप-वाराधरः शक्कमन्ध-कपूर-चान्दनम् ॥८६॥ धारितं गुग्गुलुर्घूपा नैवेदं घृतपायसम्। हविश्रोदुम्बर-समिद्-गुड-पायससंयुतम् ।।८७॥ लड्डुका-ध्रुप-मध्वाज्य-तिल-पिष्टबलि हरेत् । (२३) वारुणे चेात्थिता व्याधिरष्टरात्रेण ग्रुश्चिति ॥ 🖙॥ इमं मे वरुण इत्यस्य गायत्री कण्ववारिपः। नाग-पाश्रधरः श्रीमान् वररत्नविभूषितः ॥ है।। मकरस्था गुरुर्गन्धः पुष्पं च कमले स्पलम् । कपूरं चन्दनं धूपा नैवेद्यं घृतपातिका ॥६०॥ इबिरश्वत्थसमिधश्रित्राज्नेन वर्ति हरेत्। (२४) श्रजपाद्धे भवेद्ववाधिः सर्वदा निधनपदः ॥ १।। अथवा बहुभिर्मासैदिवसैर्वा विसुश्रति। वामपादकरं भूम्यामाकाशे त्वपरद्वयम् ॥६२॥ प्रसार्य पाञ्जलिः सात्तादोत्वरं चिन्तयेत्स्थतः। श्वविद्यस्याऽजपाद्गायत्रीचतुराननः ॥ह रैना कुङ्कमं चन्दनं गन्धं गुष्पं स्वेताकसम्भवस्। ् घृषः 'शतीपधीमिश्रो 'सैसेखं दिध-पायसम् । १६४॥

हिनः कूष्पाग्रह-गन्धः स्याद्दध्यन्नेन बर्लि हरेत् । (२५)
श्रिहिर्नुध्न्ये भवेद्व्याधिः सार्द्धमासेन मुश्रित ॥६५॥
नमस्ते रुद्र इत्यस्य सर्वं तत्रैव संस्थितम् ।
गन्ध-चन्दन-कपूरैः पुष्पं पद्मोत्पलं शुभम् ॥६६॥
स-विन्व-गुग्गुलु-धूपा नैवेद्यं घृतपायसम् ।
मुद्ग-माष-तिलान्नाज्य-यव-त्रीहिमयं हिनः ॥६७॥
पूषा च देवताम्भोज-वर्णो भोजधरं शुभम् ।
रक्तचन्दनगन्धे।ऽत्र पुष्पं मन्दार-संज्ञकम् ॥६८॥
धूपस्तु गुग्गुलुः साज्या नैवेद्यं घृतपायसम् ।
हिन्दत्वे स-जलं दध्यन्नेन बर्लि हरेत् ॥६६॥(२६)
भूतेशानुगता यसमाद्रोगनाथमहाज्वरः ।
रोगादसमाच मां त्राहि त्वं गृहीत्वोत्तमं बिलाम् ॥१००॥

जन्मसिन्धपु नत्त्रन्रशिक्तनेषु यमघरटेषु प्रत्यरेनैधनतार-केऽष्टमचन्द्रे रोगोत्पत्ती मृत्युः। रिवन्मघा-द्वादशी-सोम-विशासका-दशीनां भीमा-ऽऽद्री-पञ्चमीनां बुधात्तराषाढा तृतीयानां गुरु-शतिम-पक्षणीनां शकाऽश्विन्यष्टमीनां शिन-पूर्वाषाढा-नवमीनां च यागो सृत्युः। भरत्यनुराधा वा चन्द्रे, स्राद्रीत्तराषाढा वा सोमे, मधा शतिभिष्य्वा भीमे, श्रांश्वनी विशासा बुधे, ज्येष्टा सृगशिरो वा गुरी, श्रवण आश्लेषा वा भृगी, पूर्वाभाद्रपदा शनी चेन्सृत्युयोगः। स्रतोऽ-शोकास्तिथि-वार-नद्मश्रशान्तयां विस्तृताः कार्याः।

भ्रथ तिथि-वार-र्नेषु साधारणः प्रयोगः—

मासपत्ताद्युल्लिख्य ममोत्पन्नस्य ध्याधेर्जीवच्छराराविरोधेन सम्बन्धार्थममुकनत्त्रनाऽमुकदेवताख्यं जपं करिष्य इति सङ्कर् स्थाऽष्ट्रशताष्ट्रसदस्त्रयुताऽन्यतमसंख्यया तत्तद्देवतामन्त्रस्य जपं कृत्वाऽन्येन कारियत्वा वा मास-पत्ताद्युल्लिख्य ममोत्पन्नध्याधेर्जीव-च्छरीराविरोधेन समूलनिवृत्तयेऽमुकस्मान्ति करिष्य इति सङ्कर्ण्य । गणेशपूजा-ऽऽचार्यवर्णान्तं कृत्वाऽऽचार्यं पूजयेत् । तत श्राचार्यं भूमी तगडुलेश्चतुरस्रं मण्डलं कृत्वा तत्र हैर्मा तत्तन्नन्त्रतेवता

वस्त्रद्वयपरिवृत्तां वच्यमाणतत्तद्वगन्धः धूपादिभिः पूजयेत् । तदी-शान्यां घान्ये कुम्भं संस्थाप्य जलेनाऽऽपूर्य्य गन्ध-सर्वौषधि-दूर्वा-पत्तव-पञ्चत्वक् सप्तमृत्-फलं पञ्चरत्त-पञ्चगव्य-हिरएयानि तत्तनमन्त्रैः चिप्त्वा वस्त्रद्वयेनाऽऽवेष्ट्य सर्वे समुद्रा इति तत्र तीर्थान्याबाह्य तत्त्वा-यामीति तत्र वरुणमावाद्य सम्पूज्याऽग्नि प्रद्वांश्च प्रतिष्ठाप्याऽऽज्य-भागान्ते तत्तन्नज्ञज्ञदेवतामन्त्रेण तत्तदुद्रव्येण चाऽष्टोत्तरसहस्ना-ऽष्टो-त्तरशता-ष्टाविशत्यन्यतरसङ्ख्यया होमं कृत्वा शान्तिकलशैन यज-मानाऽभिषेके विहिते तां प्रतिमां रोगी ब्राह्मणाय दद्यात्। उक्तगन्धा-भावे चन्दनं पुष्पाभावे शतपत्रं धूपाभावे गुग्गुलुः । नैवेद्याभावे घृतो-दनम् । होमद्रव्याभावे तिलाः । मन्त्राविज्ञाने गायत्री श्रष्टोत्तरसहस्रं मृत्युनिर्देशेऽष्टोत्तरशतमन्यत्र जुहुयात् । ततः कुशोदकैर्वरुषस्कैः पुराणमन्त्रेश्चाऽभिषेकं कुर्यात् । पूर्णाहुति वसोर्द्धारां च कत्वा शान्तिपाठं कृत्वाऽऽशिषं दद्यात् । अतः सर्वशान्तिर्भवति । तत श्राचार्याय सुवर्णपतिमां वस्त्रयुग्मेन वेष्टितां सवत्सां गां साऽलङ्कारां द्यात् । इतरेभ्योऽपि द्विणां द्यादुव्राह्मणांश्च भोजयेत् । इति रोगो-टपत्तिशान्तिपयोगः । मदनरत्ने-त्रिषु सर्वनत्तत्रशान्तिषु गायज्या यमोद्देशेन होमोऽएसङ्ख्यः बलिख्यं तत्तन्नन्नत्रदेवतायै सोऽपि होमावशिष्टद्रव्येण कचिद्न्येन । तच तत्र वस्यते । अत्र रोहिणी-पुष्या- ऽऽश्लेषा-पूर्वा-हस्त-स्वाती-विशाखा-ऽनुराधा-ज्येष्ठा-मूलोत्तरा-षाढा पूर्वाभाद्रपदोत्तराभाद्रपदासु घृतमेव हामद्रव्यमनुराधावितरिष तेनैवाऽन्यत्र तु होमे बली च विशेषस्तत्र वस्यते । द्रव्ये तु विशेषो-ऽिश्वन्यादिकमेण दुग्धाकाः जीरवृत्तसिमधो होमे दध्योदनं बली मध्यकास्तिलाः घृतं दध्योदनं च चीरान्नं वली ४ मुद्ग-तिला-घृत-मञ्जु चृताका श्रक्षता ३ होमे गन्धं शाल्योदनं वली ॥॥ गन्धःमाल्यो-दन् बली भिनामं बली ॥६॥ घृताका अन्तत तिला होमे । अश्रत तिला बली ॥१०॥ गन्ध-पुष्पाणि बली ॥११॥ तिल-माषाः ॥१२॥ गन्धपुष्पबली ॥१३॥ जलयुतं हामे॥ सघृता मुद्गा बलौ ॥१४॥ गन्ध-पुष्पाणि बलौ ॥१४॥ दुग्धाकाऽम्न-गन्ध-माल्यानि बलौ ॥१६-१७॥ गन्ध-माल्यं बलौ ॥६८॥ पायसं बली ॥१६॥ शालयो होमे । पायसं बलौ ॥२०॥ होमे पायसं बली ॥२१॥ बीजाऽचता होमे ॥ गन्ध-पुष्पाणि बली ॥२२॥ अश्वत्यस-मिधो होमे । घृताकमुदुगा वली ॥२३॥ जल-पुष्पाणि होमे ॥ प्रायसं

बली ॥२४॥ गन्ध-माल्योदनं बली ॥२४॥ पकविंशतिः (२१) पकविंशतिः (१८) नव (६) दश (१०) मृत्यु (१०) विंशतिः पकविंशतिः पकविंशतिः पकविंशतिः पकविंशतिः पकविंशतिः पकविंशतिः पकविंशतिः विकल्पमासान्दौ सप्तविंशतिः (२७)। सप्त(९) अष्टौ(८) दश (१०) अष्टौ(८) अष्टौ(८) पक्षिशतिः (२०)विंशतिः पञ्चविंशतिः (२४) विकल्पतः पज्जञ्चोदशिवनमासाः द्वादश (१२) दश (१०) दश (१०) अष्टाविंशतिः (२८) दिनानि कमात्पोडा उन्ते सुसम्। आश्लोषा-मघा-पूर्वा-पूर्वाभाद्रपदासु पन्ते मृत्युरि सम्भान्यते।

#### अथ ग्रहणशान्तिः

#### मत्स्यपुरागो-

होरायां ग्रस्यते यस्य नत्तत्रे वा निशाकरः। पाणसन्देहमाप्नोति स वा मरणमृच्छति ॥१॥ यस्याऽत्र जन्मनत्तत्रे ग्रस्येते शशि-भास्करौ तज्जनानां भवेत्पीडा ये जनाः शान्तिवर्जिताः॥२॥ यस्य राशि समासाद्य भवेद्ग्रहणसम्भवः तस्य स्नानं प्रवक्ष्यामि मन्त्रीषधिसमन्वितम् ॥३॥ चन्द्रोपरागे सम्प्राप्ते कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् सम्पूड्य चतुरो विपान् शुक्कमान्याऽनुरुपनैः ॥ ४॥ समानीयौषधादिकम् पूर्वमेवोपरागस्य स्थापयेचतुरः कुम्भानग्रतः सागरानिव ॥५॥ गजा-ऽश्व-रथ्या-वन्मीक-सङ्गमाद्-हद-गोक्कलात् राजद्वारप्रदेशाच्च मृदमानीय निचिपेत पश्चगव्यं पश्चरत्नं पश्चत्वक पश्चपल्लवम् रोचकं पद्मकं शहुं कुङ्कुम्ं रक्तचन्दनम् शुद्धस्फटिकतीर्थाम्बु-सितसर्षपगोक्कलान् मधुकं देवदारं च विष्णुक्रान्तां शतावरीम् ॥ ८॥ बलां च सहदेवीं च निशाद्वितयमेव द्वेच

एतत्सर्वे विनिन्निष्य कुम्भेऽष्टाऽऽवाहयेत्सुरान् ॥ ६ ॥ सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थीन जलदा नदाः श्रायान्तु यजमानस्य दुरितत्त्वयकारकाः ॥१०॥ योऽसौ वज्रधरो देव आदित्यानां मुसुमतः । सहस्रनयनश्चेन्द्रो ग्रह्गीडां व्यपोहतु ॥११॥ मुखं यः सर्वदेवानां सप्ताचिरमृतद्युतिः । चन्द्रोपरागसम्भूतां ग्रहपीडां व्यपोहतु 118311 यः कर्मसाची लोकानां धर्मो महिषवाहनः यमश्रन्द्रोपरागोत्थां ग्रहपीडां व्यपोइतु ॥१३॥ रत्त्रोगणाधियः सात्ती नीलाञ्जनसमप्रभः । खद्गहस्तोऽतिभीद्थ ग्रहपीडां व्यपोहतु ॥१४॥ नागपाश्यरो देवः सद्गा मकरवाहनः । 🤫 चन्द्रोपरागकलुपं वरुणो में व्यपोहतु ॥१५॥ प्राणरूपो हि लोकानां सदा कृष्णमृगिषयः । वायुश्चन्द्रोपरागोत्थां ग्रहपीडां व्यपोहतु ॥१६॥ योऽसौ निधिपतिर्देवः खड्गग्रूलगदाधरः चन्द्रोपरागदुरितं धनदो मे व्यपोहतु ॥१७॥ योऽसाविन्दुधरे। देवः विनाकी दृषवाहनः । चन्द्रोपरागपापानि निवारयतु शङ्करः ॥१८॥ त्रौलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च। ब्रह्म-विष्एवके-रुद्राश्च दहन्तु मम पातकम् ॥१६॥ एवपावाहयेत् कुम्भान्मन्त्रेरेभिश्च वारुणैः । एतानेव तथा मन्त्रान स्वर्णपट्टे विळेखयेत् ॥२०॥ ताम्रपट्टेऽथवा छेरूप नव्यवस्त्रे तथैव च मस्तके यज्ञमानस्य निद्ध्युस्ते द्विजोत्तमाः ॥२१॥

कलशान् द्रव्यसंयुक्तान्नानारूपसमन्वितान् गृहीत्वा स्थापयेद्गूढं भद्रपीठोपरि स्थितम् ॥२२॥ पूर्वोक्तरेव मन्त्रेश्व यजमानं द्विजोत्तमाः । ततः कुर्युर्मन्त्रीर्वेष्णसूक्तकैः ॥२३॥ श्रभिषेकं ततः शुक्राम्बर्धरः शुक्कमान्याऽनुरुपनः श्राचार्यं वरयेत्पश्चात्स्वर्ष्णपट्टं निवेशयेत् ॥२४॥ श्राचार्यदित्तिणां दद्याइगोदानं च स्वशक्तितः। 💴 ग्न्ध-मान्यै-धूप-दीपैः पूज्ये द्वेत्तृष्ट्ये ॥२५॥ होमं चैव पकुर्वीत तिलैव्योहितिभिस्तथा निवृत्ते ग्रहणे सर्वे ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः ॥२६॥ दानं च शक्तितो दद्याद्यदीच्छेदात्मनो हितम् सूर्यप्रहे सूर्यनामयुक्तान्मन्त्रांश्व कीतयेत् ॥२७॥ चन्द्रपदस्थाने सर्वत्र स्र्यपदमूहनीयमित्यर्थः। श्रनेन विधिना यस्तु ग्रहणे स्नानमाचरेत्। न तस्य ग्रहरोो दोषः कदाचिदपि जायते ॥२८॥ श्रथ जलाशयवैकृतशान्तिः। गर्गः-नगरादुवसर्पन्ते समीव उपयान्ति नद्यो इदमस्रवणा विरसा वै भवन्ति च ॥१॥ विवरणं कलुषं तप्तं फेनवज्जन्तुसङ्कुलम् चीरं स्नेहं छुरां रक्तं वहन्ते व्याकुलोदँकम् ॥२॥ षणमासाभ्यन्तरे तत्र परचक्रभयं विदुः जलाशया नदन्ते च पज्वलन्ति कथन्ति च ॥३॥ विमुश्चित् तथा ब्रह्मन् ! ज्वाला धूमं रजांसि च।

श्रखाते वा जलोत्पत्तिः स-सत्त्रा वा जलाशयाः ॥ ४ ॥

सङ्गीतिशब्दा दृश्यन्ते जनमारभयं विदुः

दिव्यं महाभयं विद्धि मधुपात्राऽवसेचनम् ॥ ५॥ जप्तव्या वारुणा मन्त्रास्तैश्च होमो जले भवेत् । प्रध्याज्ययुक्तं परमान्त्रमत्र देयं द्विनानामथभो ननार्थम् । गावश्च देयाः सितवस्त्रयुक्तास्त्योदकुम्भाःसकलाश्च शान्त्ये ॥६॥ इति जलाशयवैक्ठतशान्तिः ।

अथ वृष्टिवैकृतशान्तिः।

गर्गः--- त्रतिवृष्टिर्नावृष्टिदुर्भिन्नादौ भयं मतम् । श्चनृतौ तु दिवाऽनन्ता दृष्टिच्योधिभयाय तु ॥ १ ॥ श्रनश्चवैकृता मेघूमन्तरे गर्ज्जितादयः 🥕 🗁 शीलोब्णानां विपर्यासे ऋतूनां रिपुजं भयुम् ॥ २ ॥ शोणितं वर्षते यत्र तत्र शस्त्रभयं भवेत्। श्रद्भारपांशुवर्षेण नगरं तद्विनश्यति॥३॥ मज्जा-ऽस्थि-स्नेह-मांसानां जनमारभयं भवेत्। फलं पुष्पं तथा धान्यं परेणाऽतिभयाय हु ॥ ४ ॥ शंशु-जन्तूफलानां च वर्षता रागजं भयम्। छिद्रावात्र पवर्षेण सस्यानामीतिवद्धेनम् ॥ ५ ॥ विरजस्के रवी व्यभ्रे यदा छाया न दृश्यते 📙 ॢ दृश्यते तु पतीपा वा तत्र देशे भयं भवेत् ॥ ६॥ प्रतीपा = प्रतिकृताच्छाया, विपरीतछार्येत्यथः । निरभ्रे वा तथा रात्री श्वेतं याम्ये तरेण हुं। इन्द्रायुधं तथा दृष्ट्वा उन्कापातं तथैव च ॥ ७॥ दिग्दाहा परिघामी च गन्धर्वनगरं तथा। परचक्रभयं विन्धादेशोपद्रवमेव च॥ ८॥ सूर्येन्दु-पर्ज्ञन्य-समीरणानां यागस्तु कार्यो विधिवद्दद्विजेन्द्र !। र्घान्यानि गी-काञ्चन-दत्तिणाश्च देया द्विजानामघनाराहेताः ॥६॥ इति दृष्टि-वैकृतशान्तिः।

#### अथाऽग्निवैकृतशान्तिः।

गर्गः अग्निः पदीप्यते यत्र राष्ट्रे भृशमनिन्धनः ॥ न दीष्यते वेन्धनवांस्तद्राष्ट्रं पोडयेन्नृप !। ज्वलेदादेश वंशो वा तथाऽऽद्रन्नि मृदः सुया ॥ १ ॥ प्रासाद-तेारणं द्वारं नृप-वेश्म सुरालयम्। एतानि यत्र दह्यन्ते तत्र राजभयं वदेत्।।२।। विद्युता वा पदहान्ते तत्राऽपि नृपतेर्भपम्। श्रनेशानि तमांसि स्युविना पांशु रजांसि च ॥ ३॥ धूमश्राडनिग्नजा यत्र तत्र विद्यान्महाभयम्। त्रिडिद्विनाऽभ्रं गगने भयं स्याद्दृष्टिवर्जिते ॥ ४॥ दिवा स-तारे गगने तथैव भयमादिशेत्। ग्रह-नत्तत्र-वैक्रत्ये ताराविकृतिदर्शने ॥ ५॥। पुत्रवाहनदारेषु चतुष्पदगृहेषु खभावाद्दाऽपि हीयेत घेतु-वत्सादिकं च यत् ॥ ६ ॥ छे। हायुधविकारः स्यात्तत्र सङ्ग्राममादिशेत्। त्रिरात्रोपे। षितस्तत्र पुरोधाः सुसमाहितः॥७॥ समिद्धिरर्केटचाणां सर्षेपैश्र घृतेन च। होमं कुर्यादग्निमन्त्रैर्बाह्मणांश्चीव भेाजयेत्।। 🗷।। दद्यात्सवर्णं च तथा दिने भ्या गाश्चैव वस्नाणि तथा सुर्वं च। एवं कृते तत्समुपैति नाशं यदग्निवैक्वत्यभयं दिजेन्द्र 1 ।।।।।

इत्यग्निवैकत्यशान्तिः।

श्रथ प्रतिमादिवैकृत्यशान्तिः।

गर्गः देवताद्याः प्रमृत्यन्ति वेपन्ते प्रज्वलन्ति वा। स्राप्यन्ति च रोदन्ति प्रस्विद्यन्ति इसन्ति च ॥१॥ उत्तिष्ठन्ति निषीदन्ति प्रधावन्ति रमन्ति च ।

भजन्ति विकृतिं भूमना मानुषाणां भयावहाः ॥ २ ॥

प्रवाङ्गुखावतिष्ठन्ति स्थानात्स्थानं भ्रमन्ति च ।

वमन्त्यगिंन तथा धूमं स्नेहरक्ते तथा वसाम् ॥ ३ ॥

एवमादीनि दृश्यन्ते विकाराः सहजोत्थिताः ।

लिङ्गायतनिष्ठेषु तत्र वासं न रोचयेत् ॥ ४ ॥

राज्ञो वा व्यसनं तत्र स च देशो विनश्यति ।

देवयात्रामु चोत्पातान् दृष्टा देशभयं वदेत् ॥ ४ ॥

देवयात्रामु चोत्पातान् दृष्टा देशभयं वदेत् ॥ ४ ॥

देवयात्रामु चोत्पातान् तत्र वासं न रोचयेत् ।

पश्चनां रुद्रजं ज्ञेयं नृपाणां लोकपालजम् ॥ ६ ॥

रुद्रजम्=रुद्रप्रतिमास्त्पन्नं वैद्यत्यं पश्चभयदिमत्यर्थः। पर्वं सर्व
शाऽपि कात्व्यम् ।

क्षेयं सेनापतीनां च यत्स्यात्स्कन्द्विशाखजम् ।
लोकानां विश्वविस्वन्द्रविश्वकर्मसमुद्भवम् ॥७॥
विनायकोद्भवं क्षेयं गणानां सेवकाय च ।
देवदूते च याः प्रष्याः देवस्तीषु नृपस्त्रियः ॥८॥
वासुदेवेषु विक्षेयं गृहाणामेव नाऽन्यथा ।
देवतानां विकारेषु श्रुतिवेत्ता पुरोहितः ॥६॥
देवताऽची तु गत्वा वै स्नातामाच्छाद्य भूषयेत् ।
पूजयेतां महाभाग ! गन्ध-मान्या-ऽञ्गसम्पदा ॥१०॥
मधुपर्केण विधिवदुपतिष्ठेदनन्तरम् ।
तिल्लक्ष्मण च मन्त्रेण स्थालीपाकं यथाविधि ॥११॥
पुरोधा जुहुयाद्द्वौ सप्तरात्रमतन्द्रितः ।
विभाश्र पूज्या मधुराञ्चपात्रैः सन्दित्तिणैः सप्तदिनं नरेन्द्र !।
श्राप्तेऽष्टि चिति-गो-पदानैःसकाश्चनैःशान्तिमुपैति पापम्॥१२॥
श्रित्वद्वत्रशन्तिषु देवताप्रतिमा-वैद्यत्रशन्तिः।

#### अथाऽऽकस्मिकप्रासादपतनादिशान्तिः

गर्गः--प्रासाद-तोर्खा-ऽद्दाल-द्वार-प्राकार-वेश्मनाम् । श्रनिमित्तं तु पतनं दृढानां राजमृत्यवे ।। १।। रजसा वाऽथ धूमेन दिशो यत्र समाक्कताः । श्रादित्यश्रन्द्रताराश्र विवर्णा भगवृद्धये ॥२॥ राज्ञसा यत्र दृश्यन्ते ब्राह्मणाश्च विधर्मिणः ऋ नवश्र विपर्यस्ता श्रपूच्यं पूजयेज्जनः ॥३॥ नत्तत्राणि वियोगोनि तन्महद्भयतत्त्रणम् केतूदयोपरागौ च छिद्रं वा शशि सूर्ययोः ॥ ४॥ ग्रह संविकृतियेत्र तत्राऽपि भयमादिशेत् स्त्रियश्र कलहायन्ते वाला निघ्नन्ति बालकान् ॥ ४ ॥ क्रियाणामुचितानां च विच्छित्तिर्यत्र दृश्यते। श्रग्निर्यत्र न दृश्येत हूयमाने।ऽथ शाम्यति ॥ ६ ॥ क्रव्यादा वायसा वाहा यान्ति चेात्तरतस्तथा। पूर्णेकुम्भाः स्रवन्ते च वह्नया वा विलुम्पते ॥ ७॥ मङ्गल्यध्वनया यत्र न श्रुयन्ते समं ततः। च्चवशुर्वाधते वाऽथ मोत्साहे सित निन्दिताः ॥ = ॥ न दैवतेषु वर्तन्ते यथा ब्रह्मह्रोषु च। मन्द्घे।पाणि वाद्यानि वाद्यन्ते वि-स्वराणि च ॥ ६ ॥ गुरु-मित्र-द्विषा यत्र शत्रुषुपारताः सदा । ब्राह्मणान् सुहृदे।ऽमात्यान् जने। यत्राऽवमन्यते ॥१०॥ शान्तिमञ्जलहोमेषु नास्तिक्यं यत्रं मन्यते। राजा वा म्रियते तत्राऽथवा देशो विनश्यति ॥११॥ राज्ञो विनाशे सम्प्राप्ते निमित्तानि निबेध मे। बाह्मणान् मथमं द्वेष्टि बाह्मणांश्र विनिन्दति ॥१२॥

ब्राह्मणस्वानि चाऽऽदत्ते ब्राह्मणांश्र जिघांसति ।
नैतान स्मरति कृत्येषु योऽन्वितश्रात्यस्यति ॥१३॥
रमते निन्दया चैषां प्रशंसां नाऽभिनन्दति ।
श्रपूर्वे तु करं छोभात्तथा पातयते जने ॥१४॥
एतेष्वभ्यचयेत्सम्यक् सपत्नीकान् द्विजीत्तमान् ।
भोज्यानि चैव कर्नव्या सुराणां वलयस्तथा ॥१५॥
गावश्र देया द्विजपुङ्गवेभ्यो भुवं तथा काञ्चनमम्बराणि ।
होमं च कुर्याद् द्विजपूजन च एवं कृते शान्तिसुपैति पापम् ॥
श्रद्धते तु ससुत्पन्ने यदि दृष्टिः प्रजायते ।
सप्ताहाभ्यन्तरे ज्ञेयमञ्जतं विफलं हि तत् ॥१९॥
इत्याकस्मिकपासादपतनादिशान्तिः ।

### अथ वृत्त्विकारशान्तिः।

गर्भः-स्दते। व्याधिरभ्येति इसते। देशविश्रमः ।
शाखापपतने कुर्यात्सङ्ग्रामं योधपातनम् ॥१॥
बालानां मरणं कुर्याद्धालानां फलपुष्पतः ।
स्वराष्ट्रभेदं कुरुते फलपुष्पमनात्त्वम् ॥२॥
चीरं सर्वत्र गम्भीर-स्नेहं दुर्भिचलचणम् ।
वाहनाऽपचयं मद्यो रक्ते सङ्ग्राममादिशेत् ॥३॥
मधुस्रावे भवेद्व्याधिर्जलस्रावे च वर्षति ।
श्ररागशोषणं श्रयं ब्रह्मन् ! दुर्भिचलचणम् ॥४॥
शुष्केषु सम्परोहत्सु वीर्यमन्तं च हीयते ।
दर्थाने पतितानां च भयं भेद्करं भवेत् ॥ ४॥
स्थानात्स्थाने तु गमने देशभद्गं तथाऽऽदिशेत् ।
श्रन्थेषु चैव द्वेषु द्वात्पातेष्वतिद्वतः ॥६॥
स्थानद्वयद्वित्वता तं दृष्णं गन्धमान्यैविभूषयेत् ।

वृत्तोपिर तथा छत्रं कुर्यात्पापप्रशान्तये ॥ ७॥ शिवमभ्यचेयेदेवं पशुं चाडस्मै निवेदयेत् । मृष्ठेभ्य इति वृत्तेषु हुत्वा रुद्रं जपेत्ततः ॥ ८॥ मध्वाज्ययुक्तेन तु पायसेन सम्पूज्य विपांथ भ्रुवं च दद्यात्। गीतेन वृत्येन तथाऽर्चयेत्तं देवं हरं पापविनाशहेतोः ॥६॥

इति वृत्तोत्पातशान्तिः।

### **अथोत्पातशान्तिः**।

नारदसंहितायां चतुः स्थिशेऽध्याये--

्र उत्पाता विविधा लोके दिव्य-भौगाऽन्तरित्तगाः । तजा न मानि तां शानित सम्यक् वक्ष्ये पृथक् पृथक् ॥१॥ ं देवताद्याः प्रमृत्यन्ति पतन्ति पञ्चलन्ति वा । मुहुर्गायन्तिः रोदन्ति प्रस्विद्यन्ति इसन्ति च ॥२॥ वमन्त्यमि तथा धूमं स्नेहं रक्तं पयो जलम्। श्रधी मुखं तु तिष्ठन्ति स्थानात्स्थानं व्रजन्ति वा ॥ ३ ॥ 🔝 ्र ष्वमाद्याश्व दृश्यन्ते विकाराः प्रतिमादिषु 📗 गन्धर्वनगरं चैव दिवा-नत्तत्रदर्शनम् ॥४॥ महोल्कापतनं कष्टं नृष्णां रक्तपवर्षेणम् गान्धर्वगेहं दिग्दाहं भूमिकम्पं दिवा निशि ॥ ॥ श्चनग्री च स्युरलिङ्गाः स्युज्वेलनं च विनेन्धनम्। निशीन्द्रचापं मण्डूकशिखरे श्वेतवायसम् ॥६॥ ्रदृश्यन्ते विस्कुत्तिङ्गा ये मो-गजाऽश्वोष्ट्रगास्ततः । जन्तवा द्वि-त्रि-शिरसा जायन्ते चाऽवियानिषु ॥ ७॥ मितसूर्याश्र तिसृषु स्युर्दिन्नु युगपद्रवेः जम्बुका ग्रामसंवेशः केत्नां च प्रदर्शनम् ॥ ८॥

काकानामाकुलं रात्री कपोतानां दिवा यदि । एवमेते महोत्पाता बहवः स्थाननाशकाः ॥६॥ केचिन्मृत्युपदा केचिच्छत्रुभ्यश्र प्रयपदाः । देवालये स्वगेहे वा ऐशान्यां पूर्वतोऽपि वा ॥१०॥ कुण्डं तत्त्रणसंयुक्तं कल्पयेन्मेखलायुतम् युद्योक्तविधिना तत्र स्थापयेच हुताशनम् ॥११॥ जुहुयादाङ्यभागान्तमथवाऽष्टो**रारं** श्तम् । यत इन्द्र भयामहें स्वस्ति येन च मन्त्रकैः ॥१२॥ समिदाज्य-चरु-व्रोहि-तिलैव्यहितिभिस्ततः कोटिहोमं तदर्र्धं वा लत्तहोममथायुतम् ॥१३॥ यथावित्तानुसारेण पादहोपमथापि वा । एकविंशतिरात्रं वा पत्तं पत्ताद्धमेव वा ॥१४॥ त्रिरात्रमेकरात्रं वा होमकर्म समाचरेत् । गर्णेश-त्तेत्रपाला-ऽर्क-दुर्गाख्या श्रङ्गदेवताः ॥१४॥ तासां मीत्ये जपः कार्यः शेषं पूर्ववदाचरेत्। ऋत्विगभ्या दिचाएं दचाद् षे।डशेभ्यः स्वशक्तितः ॥१६॥ इति नाने।त्पातशान्तिः।

# अथ पल्लीसरटशान्तिः।

द्वद्धगर्गः-पन्न्याः प्रपातस्य फलं सरदस्य तथैव च ।
शोर्षे राज्यं श्रियः प्राप्तिभान्ने चैश्वर्यवर्द्धनम् ॥ १ ॥
कर्णयोर्भूषणावाप्ति-नेत्रयोर्बन्धुदर्शनम् ।
नासिकायां तु सौभाग्यं वक्त्रे मिष्टात्रभाजनम् ॥ २ ॥
कर्णवे नित्यं प्रियाऽऽश्लेषः स्कन्दयोर्विजयो ध्रुवम् ।
धनलाभा बाहुयुग्मे करयोर्थसंत्तयः ॥ ३ ॥
जङ्क्षयेश्व निष्योगः पादयोश्च मर्णं भवेत् ।

एवं पन्याः प्रपातस्य फलं ज्ञेयं विचन्नर्णैः ॥ ४ ॥ एतदेव फलं विन्धाच्छरटस्य परीहरा । परस्याः प्रपातने चैव सरटस्य प्रपातने ॥ ५॥ पश्चरात्रं भवेत्रास्य व्याधिपीढा विशोषतः । पतनाऽनन्तरं तस्य रेाहरां यदि जायते ॥६॥ पतने फलग्रुत्कृष्टं रेहिएोऽन्यफलं भवेत् । श्रारोहणं चेाध्वेवक्त्रे श्रधो वक्त्रे निवातनम् ॥७॥ भवेद्यदि सुशीघ्रेण तत्फलं जायते ध्रुवम् । मृत्युयोगे दग्धदिने पाते च यमघएँटके े।। ८।। चन्द्राऽष्टमे नैधने च जन्मर्चे विषनाडिके । क्र्रलग्ने क्र्युते क्र्रेण च निरीचिते ॥ ६॥ अष्टमेते करूरयुते विष्टि-वैधृतिसंयुते दुर्निमित्ते तयाः पाते निधनं जायते ध्रुवम् ॥१०॥ तयाः स्पर्शनमात्रेण सचैलं स्नानमाचारेत् । गन्यं पञ्चाविधं पाश्य कुर्यादाज्याऽवलेकानम् ॥११॥ शस्ते वाऽप्यथवाऽशस्ते यदीच्छेदात्मनः शुभम् । पुषयाहं वाचायित्वा तु शान्तिकमे ततश्चारेत्।।१२॥ मतिरूपं तयाः कुर्यात्मवर्धेन स्वशक्तितः । रक्तवस्रोण सम्बेष्टच गन्ध-पुष्पैः प्रपूजयेत् ॥१३॥ कलशे बस्रयुग्मेन पूजयेद्विधिना ततः । अग्निसंस्थापनं कृत्वा होमं कुर्याद्विधानतः ॥१४॥ मृत्युञ्जयेन मन्त्रेण समिज्ञिः खादिरैः शुभैः। तिलैव्योहृतिहोमं च श्रष्टोत्तरसहस्रकम् ॥१५॥ महाव्याहृतिहोमं च सपिः चीरेण कार्येत् । श्रभिषेकं ततः कुर्याद्यजमानस्य मुर्द्धनि ॥१६॥ पुण्यैर्वारुणस्कौरच द्यौः शान्तादिकमन्त्रकैः । इत्थं मन्त्रविधानेन यः कुर्याच्छान्तिमुत्तमम् ॥१७॥ तस्याऽऽयुर्विजया लक्ष्मीः कीर्तिः पुष्टिश्च जायते । इति पन्यादिपतनशान्तिः ।

### अथ श्रामारएयादिशान्तिः।

गर्गः-प्रविशन्ति यदा ग्राममारएया मृमपिच्चणः । श्चरपयं यान्ति वा ग्राम्याः स्थलं यान्ति जले। द्ववाः॥१॥ स्थलजा वा जलं यान्ति घोरं वा सन्ति निर्भयाः। राजद्वारे पुरद्वारे शिवाश्राप्यशिवपदाः ॥२॥ दिवा रात्रिश्चरा वाऽपि रात्रौ वाऽपि दिवाचराः। ग्राम्यास्त्यजन्ति ग्रामं वा तच्चोत्पातस्य निर्द्दिशेत् ॥ ३ ॥ उत्पातस्य लज्ञशमिति शेषः। दीप्ता वा सन्ति सन्ध्यासु मण्डलानि च क्वर्वते । वासन्ते विस्तरं यत्र तदा मेतफलं लभेत् ॥ ४॥ पदोषे कुक्कुटो वासेद्धेमन्ते वाऽपि कोकिलः । श्रकींद्येऽकीभिम्रुखस्तदाऽमात्यभयं बदेत् ॥ ५ ॥ गृहे कपौतः प्रविशेत् क्रव्याद्यनुविलीयते । मधु वा पत्तिकाः क्वर्यान्मृत्युर्ग्रहपतेर्भवेत् ।। ६/॥ प्राकार-द्वार-गेहेबु तोरखा-८ऽपख-वीथिबु ी ेकेतुच्छत्रायुधाग्रेषु क्रव्यात्संश्रयते यदि ॥७॥ जायते वाऽथ वन्मीको मधु वा दृश्यते यदि । स देशो नाशमायाति राजा च म्रियते तदा ॥ = ॥ मुषिकाः शलभान् दृष्ट्वा मभूतं जुद्धयं वहेत् 🍴 🕜 काष्ठोन्मुकाऽस्थिशृङ्गास्याऽश्वानो मरकवेदिनः ॥ ६॥

दुर्भित्तवेदिनो क्रेयाः काकाधान्यत्तुपे यदि।
जनाग्नभिभवन्तश्च निर्भया रणवेदिनः ॥१०॥
काको मैथुनयुक्तश्चेत् श्वेतः स यदि दृश्यते ।
राजा च म्रियते तत्र तदा देशो विनश्यति ॥११॥
बल्को वासते यत्र निपतेदा गृहे यदि ।
क्रेयो गृहपतेर्मृत्युर्धननाशस्तयैव च ॥१२॥
वासते=शब्दं करोति ।

मृगपित्तविकारेषु कुर्याद्धोमं सदित्तणम् । देवाः कपोत इति च जप्तव्यं पश्चभिद्दिनैः ॥१२॥ सुदेव इति वैकेन देया गावस्तु दित्तणा । जपेच्छाकुनसूक्तं च नमा वेदशिरांसि च ॥१४॥

देवाः कपोत इत्यादयो मन्त्रा ऋग्वेदे प्रसिद्धाः। नमो नमो ब्रह्मणे नम इति । वेदशिरांसि उपनिषदः।

गावश्च देया विधिवद्दिजानां सकाञ्चना वस्त्रयुगोत्तरीयाः। एवं कृते शान्तिष्ठपैति पापं मृगैद्विजैर्वाऽपि निवेदितं यत् १५ इति प्राम्यारण्यादिशान्तिः ।

#### अथ कपोतशान्तिः।

नारदः — आरोहयेद्गृहं यस्य कपोतो वा प्रवेशयेत् ।
स्थानहानिभवेत्तस्य यद्वाऽनर्थपरम्परा ॥ १ ॥
दोषाय धनिनां गेहे दरिद्वाय शिवाय च ।
तस्य शान्तिश्च कर्त्तव्या जपहोमविधानतः ॥ २ ॥
श्राह्मणान वर्यत्तत्र स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ।
षोढशाद्वादशाष्ट्रौ वा श्रौतस्मार्त्तित्रयापराः ॥ ३ ॥
देवाः कपोत इत्यादि-ऋचाभिः पश्चभिर्जपम् ।
सन्तं कृत्वा मयत्नेन स्व-गृह्योक्तविधानतः ॥ ४ ॥

ऐशान्यां स्थापयेद्विं मुखान्तेऽष्टोत्तरं शतम् ।
प्रत्येकं समिदाण्यान्नेः प्रतिप्रणवपूर्वकम् ॥४॥
मुखान्ते श्र= झिमुखान्ते।
यत इन्द्र भयामहे स्वस्तिदेति त्रियम्बकैः ।
त्रिभिमन्त्रेश्च जुहुयाचिलान् व्याहृतिभिस्तथा॥६॥
जयाहुतीस्ततो हुत्वा कुर्यात्पूर्णाहुतिं स्वयम् ।
विभेभ्योदिचिणांदद्यात् द्यौः शान्ति चततो जपेत्॥७॥
ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चात्स्वयं भुज्जीत बन्धुभिः ।
एवं यः कुरुते सम्यक् तस्माद्दोषात्मग्रुच्यते ॥ ८॥
पिङ्गलायाः स्वरेऽप्येवं मधु-वन्मीकयोरिष ।
सम्पूर्णे मन्दिरे हानिः श्रुत्यसद्यनि मङ्गलम् ॥६॥
प्राक्तरे च पुरद्वारे रथ्यादिषु च वीथिषु ।
ग्रामस्य तत्फलं चैव गुरुकन्पनया ततः ॥१०॥

शान्तिकर्माऽखिलं कार्यं पूर्वोक्तेन क्रमेण तु । इति कपोतादिशान्तिः।

## श्रथ काकवै कृत्यशान्तिः।

गर्गसंहितायाम्—

काकस्य मैथुनं पश्येत् काकः शिरसि चेद्विशेत्।
शिरस्युरसि वा कुर्यात्पत्तवातं नस्वैस्तथा ॥१॥
विदारणं च कुरुते शयानं च स्पृशेद्यदि ।
तदा वदेतु मरणं महाऽरिष्टमथापि वा ॥२॥
मध्यरात्रे यदा काको वासते हेतुना विना ।
तद्दग्रहारिष्टमाचष्टे ग्रामारिष्टमथापि वा ॥३॥
शान्ति तत्र प्रकुर्वीत विधानेन यथोदिताम् ॥
पिर्मारिष्टश्मानं कुर्यात्सङ्करमादितः ॥४॥

शुचौ देशे रिक्रमात्रे स्थिएडलेऽगिन निधाय च। तदीशानेऽष्टदले कुम्भोपरि स्वशक्तितः हिरएयनिर्मितं त्विन्द्रं लोकपालसमन्वितम् पूजियत्वा स्वशाखोक्तविधिना अपयेश्वरुम् ॥६॥ कुत्वाऽऽज्यभागपर्यन्तं जुहुयात्क्रमशो हविः पालाशीः समिधो त्रीहीश्वरुपाच्यमिति क्रमात् ॥ ७॥ श्रष्टोत्तरसहस्रं वा श्रष्टोत्तरशतं तु यत इन्द्रेति मन्त्रेण लाकपालेभ्य एव ्च ॥ ८॥ शक्तया हुत्वा स्वशाखोक्त-प्रायश्चित्ताहुतीर्हुनेत् । लोकपालबर्लि दत्वा इन्द्राग्रे चरुशेषतः ॥ ६॥ वायसेभ्या बलिं दद्यादैन्द्रवारुणमन्त्रतः। पेन्द्रवारुणवायन्यां याम्यां वै नैर्ऋताश्च ये ॥१०॥ ते काकाः प्रतिगृह्धन्तु भूम्यां पिएडं मयाऽर्पितम् । पूर्णाहुतिं तता हुत्वा छाचार्यं पूजयेत्ततः ।।११॥ कुम्भे।दक्षेनाऽभिषेका यजमानस्य विस्तरात्। आचार्यायेन्द्रपतिमां दद्यात्सोपस्करां ततः ॥१२॥ शक्तया च भूयसीं दद्यात द्विजानां भोजनं दिशोत्। शतं तदर्दमर्द्धे वा शक्त्यभावे दशाऽपि वा ॥१३॥ सर्वशान्ति पाठियत्वा गृह्वीयाच द्विजाशिषः। एवं कृते भवेच्छान्तिः काकारिष्टविनाशिनी ॥१४॥ इति काकमेथुनद्रश्नीदिशान्तिः।

अथ प्रकारान्तरेण काकमेथुनदर्शनशान्तिः। मारदः-दिवावा यदि वा रात्रौ यः पश्येत्काकमेथुनम्। स नरो मृत्युमामोति स्थावा स्थाननाशनम् ॥१॥

काकघातव्रतं यद्वा विद्यीताऽथ वत्सरम् पितृवद्वै द्विजान् भक्त्या प्रत्यहं चाऽभिवाद्येत् ॥२॥ जितेन्द्रिया जितक्रोधः सत्यधर्मपरायखः । तदोषशमनार्थाय शान्तिकर्म समारभेत् ॥ ३॥ गृहस्येशानदिग्भागे होमस्थानं प्रकल्पयेत् । पृत्तोक्तविधिना तत्र पतिष्ठाप्य हुताशनम् ॥४॥ म्रुखान्ते समिदाज्यान्नैर्डुनेदष्टोत्तरं शतम् । प्रतिमन्त्रं त्रयम्बकेन श्रथं मृत्युद्धयेन च ॥ १ ॥ व्याहृतिभित्रीहितिलैजेपाद्यं तं मकन्पयेत् पूर्णाहुति च जुहुयात्कर्ता शुचिरलङ्कृतः ॥ ६॥ स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां कृष्णां धेतुं पयस्विनीम् । वस्रालङ्कारसंयुक्तां निष्कद्वादशसंयुताम् ॥ ७॥ तर्छेन तद्छेन दचाइन्तिणया युतम् । यथावित्राञ्चसारेण न्यूनाधित्रयस्य कल्पना ॥ 🗢॥ श्राचार्याय श्रोत्रियाय तो गां दद्यात्कुटुम्बिने 🎉 यस्मान्तं पृथिवी सर्वा धेनेर ! वै कृष्णस्त्रिभे ! ॥ ६ ॥ सर्वमृत्युहरे ! नित्यमतः शान्ति शयच्छ मे । ब्राह्मणेअयो विशिष्टेअयो यथाशक्तया च दिच्छाम्॥१०॥ ब्राह्मणान् भाजयेत्पश्चाच्छान्तिवाचनपूर्वकम् । ्रष्यं यः कुरुते सम्यक् तस्मादीवारमग्रुच्यते ॥११॥ इति काकमेथुनशान्तः।

414 444 444

श्रथ काकस्पर्शशान्तिः। नारदः सूर्यास्तमनवेलायां वायसः संस्तृशेद्यदि : निःशन्दो वा सशब्दो वा पुंसी मृत्युपदायकः॥ १॥ अङ्गनां च स्पृशेत्काको वैधव्यं तत्र निर्दिशेत्। नदीवीरे गवां गेष्ठे जीरहत्ते सुरालये ॥ २ ॥ नरो बायससंस्पृष्टो वधवन्धनमाष्त्रुयात् । प्रतिचन्द्रं प्रतिसूर्यं वायसः स्पृशते यदि ॥ ३॥ अर्थहानि तथा मृत्युं शस्त्रेण च विनिर्दिशेत्। मासैः पश्चभिरेवाऽस्य निशाभिः फलमादिशेत् ॥ ४॥ तिह्नादि फलं सिद्धः पोक्तमत्र शुभाऽशुभम्। शान्ति तत्र पक्कवीत शास्त्रदृष्टेन कर्मणा॥५॥ महानद्यम्भसि स्नात्वा शिवलिकं निरीत्तयेत्। नत्वा सम्पूड्य लिङ्गं तु स्तुत्वा च दिक्पतीनपि ॥ ६॥ आरभ्य तहिनादेव वायसेभ्या वर्ति तिपेत्। शनैश्वरदिने प्राप्ते एकान्ते शुभमन्दिरे ॥ ७॥ कुष्णानि नववस्राणि अन्हतानि नवानि च पूर्वदिक्क्रमग्रागेन स्थापयेच पृथक् पृथक् ॥ = ॥ मान्यस्थममाणेन स्थापयेत्तत्र वायसान्। पूर्वस्यां कपिलं तत्र स्थापयेन्मन्त्रपूर्वकम् ॥ ६॥ नीलग्रीत्रमथा अनेय्यां याम्यां च विकृतस्त्रम् नैऋत्यां च न्यसेत्क्रौङचम्पमृत्युविनाशनम्।।१०।। विद्यक्तिहं च वारुएयां वायव्यां कृष्णकर्षुरम्। कौबेंग्यी कालनामानमीशान्यां श्वेतमेव च ॥११॥ श्च-हते कृष्णवस्रे तु यमं मध्ये प्रपूजयेत्। महिषं कृष्णवर्णे च यमं मापेश्र पूजयेत्।।१२॥ रक्तोत्तमानं सर्वत्र आयुपेश्व समन्वतम्। ळे।हद्दर्दं चतुर्बोहुं पूजयेन्मन्त्रपूर्वकम्।।१३॥ यस्यित् इते परेपि वासं सुगनः पत्यानमेव च ।

एते पन्त्राः समाख्याताः श्रुद्धाणां नाम-मन्त्रतः ॥१४॥ श्रकालकलशं तत्र स्थापयेत्तस्य सन्निधौ । जलपूर्ण रत्नगर्भ पूर्णपात्रसमन्वितम् ॥१४॥ स्थापयेत्तत्र देवेशं शृ्लपाणि महेश्वरम्। प्रतिष्ठाप्य च तान् सर्वानय मन्त्रैः प्रपूजयेत्,॥१६॥ कपिलस्त्वं च वर्णेन शुभाऽशुभनिवेदकः। मृहालाऽद्यं मया दत्तं भवाऽशुभविनाशनः ॥१७॥ नीलग्रीव ! गृहाणाऽध्ये मया दत्तं खगेश्वर ! श्रम्पमृत्युविनाशाय ददामि बलिम्रुत्तपम् ।।१८। क्रृरस्त्वं पापिनां नित्यं सौम्यस्त्वं धार्मिके जने । विकृतस्वर! गृहाणाऽर्घ्यं मया दत्तं शुभाय नः ॥१६॥ क्ररस्त्वं पापिनां नित्यं वध शुम्भं न ऋच्छसि । गृहोणाऽर्घ्यं मया दत्तं क्रौश्च! सौम्यपदो भव ॥२०॥ विद्युज्जिह् ! नमस्तेऽस्तु शोकव्याधिविनाशन !। बिलपूजां मया दत्तं गृहाण सुखदे। भव ॥२१॥ क्रुष्णकर्बुरनामा त्वं भूतभव्यनिवेदक ! गृहाणाऽर्घ्यं मया दत्तं अव वैधव्यनाशन ! ॥२२॥ काक ! त्वं कालनामाऽसि दुष्टकालनिवेदक ! गृहाण बिलपूजां में दत्तां दुःखविनाशिनीम् ॥२३॥ श्वेतस्त्वं सितपर्णोऽसि मृत्युभावस्य सूचक !। गृहाणाऽध्ये मया दत्तं भव मृत्युविनाशनः ॥२४॥ ूपूजयेदेवं धर्मराजं चतुर्भुजम्। यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चाडन्तकाय च ॥२५॥ वैवस्वताय कालाय सर्वभूतत्त्वयाय च । श्रौदुम्बरायः द्रधायः नीलाय प्रमेष्ठिने ॥२६॥

वृकोदराय चित्राय चित्रग्रप्ताय वै नमः। नीलग्रीवाय लेकेश ! दएडहस्ताय ते नमः।।२७॥ पाशहस्ताय सायुधाय सपरिवाराय ते नमः। चन्दनैश्र सुगन्धैश्र वासेाभिः पूजयेद्यमम् ॥२८॥ आदौ ज्यम्बकमन्त्रेण ईश्वरं च प्रपूजयेत्। मृत्युविनाशिनीं विद्यां कुम्भे चैव नियाजयेत् ॥२६॥ शतमष्टोत्तरं चैव श्राचार्यो हृष्टमानसः। खगृशोक्तविधानेन चर्र च यमदैवतम्।।३०॥ संश्रय्य जुहुयाद्वद्वौ समिदाज्यचर्रूम्तिलान् । तद्देवत्या समित्कार्या शतमष्टोत्तरं तथा॥३१॥ समित्क्रमेण जुहुयात्मतिद्रव्यं शृतं हुनेत्। स्रुगन्तुपन्थामन्त्रेण होतव्यं सर्वमत्र तु।।३२॥ भद्रासनं प्रकर्नाच्यं पश्चवर्णकसंयुतम्। तस्यापरि न्यसेत्पष्टं यजमानमथाह्वयेत् ॥३३॥ निवेश्याऽऽच्छादिते पट्टे श्रभिषेकं च कारयेत्। पावमानीभिस्तु तिन्तिङ्गैर्भन्त्रैर्वोरुणसम्भवैः ॥३४॥ तिम्नङ्गेः = सुगन्तुपन्थामित्यादिभिः।

तत्र स्नानं पकर्त्तव्यं तीर्थाऽऽनीतेन वारिणा।
सहस्राचादिभिमेन्त्रेः स्नानं कार्यं द्विजातमेः ॥३५॥
तताऽन्यद्वस्रमादाय धर्मराजं तु पूजयेत्।
छक्तैः षेडिशभिमेन्त्रेः सुगन्वित्यर्धं प्रदापयेत् ॥३६॥
तत उत्थाय सम्प्रार्थ्यं भक्तिभावसमन्वितः।
रच्न मां पुत्र-पौत्रांश्च रच्न मां पशु-वान्यवान् ॥३७॥
रच्न पत्नीं पतिं चैव पितरं मातरं धनम् ।
अभितो मे भयं माऽस्तु रोगाच्च व्याधिवन्धनात्॥३८॥

शस्तो विषते। प्राधिवाद्यं नाशय मे सदा।
प्राधिना च प्रकर्तव्या नमस्कारसमन्तिता ॥३६॥
काकस्पृष्टं च यद्धं स्नानक्षिकं च यद्भवेदा।
सहिर्ण्यं च तत्कृत्वा ब्राह्मणाय निवेदयेत्। ॥४०॥
मन्त्रः यत्किञ्चतस्पर्शदोषोक्तं दुष्कृतमपि विद्यते।
तत्सर्व नाशमायातु वस्नदानेन सूर्वेद्धः ॥४१॥
वायसांस्तान यमं चैतमाचार्याय निवेदयेत् ।
माषान वासांसि कृष्णां तु धेनुं चैव पयस्विनीम् ॥४२॥
शनिवारे च तत्कार्य रिववारेऽथवा पुनः।
श्वतपात्रे सम्सौवर्णे दश्येदात्मनस्तनुम् ॥४३॥
बाह्मणेभ्या ददेदन्नं भूयसी चैव शक्तितः।
पश्चोक्तां दिन्नणां दद्यात् वित्तशाळ्यं न कारयेत् ॥४४॥
स्थाने यत्र स्पृशेत्काकस्ततस्थानं पूजयेत्तदा।
एवं क्रुर्योत्मदानेन ध्वांचदेाषः प्रशाम्यति ॥४४॥
इति काकस्पर्शशान्तिः।

# अथ सिंहादौ गवादिप्रसृतिशान्तिः।

श्रद्धतसागरे नारदः-

भानो सिंहगते चैव यस्य गौः सम्प्रस्यते।

गरणं तस्य निर्दिष्टं षड्भिर्मासैन संशयः ॥१॥

ततः शान्ति प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभ्रम्।

प्रस्तां तत्त्वणादेव तां गां विपाय दापयेत्॥२॥

ततें। होमं प्रजुर्वीत घृताक्ते राजसष्यैः।

श्राहुतीनां घृताक्तानामयुतां जुहुयात्ततः॥३॥

सेंग्पवासः प्रयत्नेन द्यादिपाय द्विणाम्

वस्त्रयुग्मं यवं चैव समवर्ण प्रदापयेत् ॥ ४॥ इष्टदैवत-पन्त्रेण ततः शान्तिभवदद्विज ! गर्भः-दिवामसूता वडवा श्रावणे च विशेषतः॥ ५॥ माघमासे बुधे चैव पसवेन्महिषो यदि । सिंहे गावः प्रसूयन्ते स्वामिना मृत्युदायकाः ॥ ६॥ जङ्गमे स्थावरं जातं स्थावरे वाऽथ जङ्गमम्। तस्मिन् योनिविपर्यासे परचक्रागमे भवेत् ॥ ७॥ त्यागा वित्रासा दानं वा कृत्वाऽप्याशु शुभं लभेत्। वडवा इस्तिनी गौर्वी यदि युग्मं प्रसूपते ॥ = ॥ विजात्यं विकृतं वाऽि षड्भिर्मासैर्क्त्रियेत वा। वियोनिषु च गच्छन्ति मैथुने देशनाशनम्॥ ६॥ श्रन्यत्र वेसरेात्पचोर्टणां वा जातिमेथुनात् सर्पे-मुषक-मार्जोर-मत्स्य-श्वान-विवर्क्तिताः ।।१०॥ क्रेया दुर्भिचकर्त्तारः स्वजातिपिशिताशनाः । ब्रकालजे। मदो ्घेरिश्र पुष्पानमृगपत्तिणः ॥११॥ भ्रन्यजातिभयं तस्मात् धेतु-श्वानौ विशेषतः। अथाऽनद्वाननद्वाहं धेनुर्धेनुं पिबेयद्वि ॥१२॥ शुनी बाधयते धेतुं शुनीं धेतुरथाऽपि वा । तिर्थभ्यानौ मानुषी वा परचक्रागमे। भवेत् ॥१३॥ श्रमाञ्जूषा माञ्जूषाणि जन्पन्ति पाणिने। यदि । विकृतं वा मसूयन्ते परचकागमं बदेत्।।१४॥ त्यागी विवासी दानं वा तेषां कार्य्य विजानता। तपेयेद्बाह्मसांश्रेव जप-होमांश्र कारयेत्।।१५॥ मृदङ्गवाद्यैः पटहैः सुशोभनैः 🖰 🖟 पूजा च कार्या त्रिदिवीकसानाम् ।

धातुस्तथेष्या विधिना च कार्या देयं तथाऽत्रं बहु च द्विजेभ्यः ॥१६॥ गर्गः-वृत्तं वा ग्रुशलं वाऽपि स्फुटते वाऽप्युल्खलम् । वृत्तम्=दलनयन्त्रम् ।

भूतानां चैव विभ्येत गृहे देवकुलेऽथवा ॥१७॥ हण्द्वा भद्रपीठं वा श्रासनं शयनं तथा । श्रकस्मात्स्फुटते यत्र कम्पते वा वसुन्धरा ॥१८॥ इत्यादीनि निमित्तान्युक्त्वा शान्तिर्ण्युका तेनैव । श्रक्षत्थ-समिधा हुत्वा घृताक्तमधुसंयुताः । सावित्र्यष्टसहस्रेण प्राजापत्यास्तु मन्त्रयेत् ॥१६॥ प्राजापत्याः=प्रजापतिदैवत्याः ।

पायसं भोजयेद्विद्वान् हुतान्ते भूरिद्वित्या ।
ततस्तच्छाम्यते पापं धर्मराजमतं यथा ॥२०॥
स एव कृष्णाः पिपीलिका यत्र ग्रामेषु नगरेषु वा ।
ध्रितमात्रं तु दृश्यन्ते ऊर्ध्ववंशकृतालयाः ॥२१॥
शान्तिगृहे वण्हे तथा नरपतेण्ट्रहे ।
उपयुपरिमात्रं तु दृश्यते वेश्मवत्तदा ॥२२॥
मित्तका मशका दंशा ध्रितमात्रं भयावहाः ।
ईदृशैर्वात्त्रणोत्पातिमहाचौरभयं भवेत् ॥२३॥
दृग्याणां हरणं त्रृ्यात्परचक्रस्य चाऽऽगमम् ।
तत्र शान्ति पवस्यामि विश्वामित्रोपदर्शिताम् ॥२४॥
ध्रश्यत्थसमिधश्चेव हुत्वा चाऽष्टोत्तरं शतम् ।
पूर्णपात्राणि दातन्या हुतान्ते भूरि दित्तिणा ॥२४॥
द्रासीन्दाससमायुक्तं गृहं दद्याद्दिजातये ।
तित्तपाः पदात्वं तिलान जुद्दीत संगतः ॥२६॥

मृतः श्मशानं ये। नीतः पुनर्जीवति मानवः ।

गृहे यस्य प्रविष्टोऽसौ तिष्ठेदथ कदाचन ॥२७॥

श्राचिराच्छून्यतां याति हृतदारपरिग्रहः ।

तत्र शान्ति प्रवक्ष्यामि धर्मराजमतं यथा ॥२८॥

सत्तीराणां घृताक्तानामग्नौ हुत्वा सुखं बुधः ।

चतुम्बरीणां विविधवत्ततः शान्तिः कृता भवेत् ॥२६॥

सावित्र्यष्टसहस्रेण जीरशान्तिः च कारयेत् ।

रक्तानामेकेत्यादिवद्यमाणा जीरशान्तिः ।

किपत्तं च तथा कांस्यं हुतान्ते भूरि दिन्तिणा ॥३०॥
ततस्तच्छाम्यते पापं धर्मराजमतं यथा ।
स एव—श्रनारे। ग्यमनादृष्टिदुभिन्तं जनमारकम् ॥३१॥
कराः कासस्तथा श्वासः कएइद्दूर्विकोचिकाः ।
शिरोरोगोऽन्तिरे। गश्च पाएडरोगो गलग्रदः ॥३२॥
व्याधयश्च प्रवर्तन्ते दुर्देष्टैः स्वमलन्तणेः ।
तत्र शान्तिं प्रवक्ष्यामि बृहस्पतिमतं यथा ॥३३॥
तिरात्रोपोषिते। भूत्वा हविष्याशी पुराहितः ।
सन्तीराणां घृताक्तानां समिधानां शतं दहेत् ॥३४॥
पत्ताशस्येति शेषः ।

ततस्तच्छाम्यते पापं वृहस्पतिमतं यथा ।
स प्व- वज्रमिन्द्राऽशनिर्वाऽपि ज्वलन्नापतते यदि ॥३५॥
पुरे जनपदे वाऽपि तत्र विद्यान्महद्भयम् ।
संवत्सरे तते। घेारे विन्याचैव जनच्चयम् ॥३६॥
राजाऽमात्यविनाशं च निर्द्दिशेन्नाऽत्र संशयः ।
तत्र शान्ति प्रवक्ष्यामि इन्द्राग्निवचनं यथा ॥३७॥
श्रापार्गस्य समिधां सहस्राष्ट्रोत्तरं भवेत् ।

पायसं भे।जयेद्विमान चीरशानित च कारयेत् ॥३८॥
रक्तानामेकवर्णानां गवां चीरं समादिशेत् ।
समादिशेद्धोमार्थं सम्पादयेत्।
दुत्वाऽऽहुतिशतं विमो महेन्द्रेखेव मन्त्रवित् ॥३६॥
महेन्द्रेण महान् इन्द्रो य श्रोजसेत्यादिना।
सुवर्णमिखसङ्काशा हुतान्ते भूरि दिच्चणा ।
गौरिति शेषः।

ततस्तच्छाम्यते पापमिन्द्राग्निवचनं यथा ॥४०॥

शीनकः—श्रथ यदाऽस्य मणिककुम्मस्थालीद्रणमायासो राज-कुलविवादो वा यान-छत्र-शय्या-ऽऽसनावसथध्वजगृहैकदेशप्रभुने । गजवाजिमुख्याः प्रमीयन्ते वा हस्तिनो वा माद्यन्ति । इश्येत्रमादीनि । तान्येतानि सर्वाणि इन्द्रदेवत्यान्यद्भतानि प्रायश्चित्तानि भवन्ति इन्द्रो देवता कत्ता हत्तां च येषां तानीनद्रदैवत्यानि श्रद्धतानि तेषु प्रायश्चित्तान्यपीनद्वदैवत्यानि भवन्ति । इन्द्रं विश्वेति स्थालीपाकं हुत्वा पश्चभिराज्याहुर्तार्जुहोति इन्द्राय स्वाहा । शचोपतये स्वाहा । सर्वपापशमनाय स्वाहिति व्याहृतिभिश्च पृथक् पृथक् । स एव गृहद्व रेण वा सर्पो गच्छुत कपोतं प्रविश्वति शरीरे रोहति कृष्णस्त्रीदर्शनमेवमादानि तान्येतानि सर्वाणि यमदैवत्यानि श्रद्धतानि प्रायश्चित्तानि भवन्ति । नाके सुपर्णमिति स्थालीपाकं हुत्वा पञ्चिम-राज्याहुतीर्जुहुयात्। यमाय स्वाहा। प्रेताधिपतये स्वाहा। द्रवड्याग्यये स्वाहा । सर्वपापनाशनाय स्वाहेति व्याहृतिभिश्च पृथक् पृथक् जुहोति स एव। दिशो दश दह्यन्ति। केतवश्चोत्तिष्टन्ति। ग्रवां श्वद्भाद्वधिरं स्न-वति श्रत्यर्थं हिमांग्रस्तएति । इत्येवमादीनि सर्वाणि सोमदेवत्याम्य द्भुतानि प्रायश्चित्तानि भवन्ति, सोमं राजानिर्मात स्थालीपाकं द्वैत्वा पञ्चभिराज्याहुतिभिर्राभजुहोति । सोमाय स्वाहा । नज्ञजाणां पतये स्वाहा। सीरपाण्ये स्वाहा । ईश्वराय स्वाहा । सर्वपापण्यनाय स्वाहा । स्याहतिभिश्च पुथक् पृथक् जुहोति ।

### अथाऽश्वशान्तिः।

गर्गः-ग्रश्वशान्ति प्रवक्ष्यामि शृणु शौनक ! यत्रतः । श्चरवशालासमीपे तु कुण्डं कुर्वाद्विधानतः ॥१॥ उत्तवातं हस्तमात्रं च त्र्यायामं च तथा भवेत्। मेखलात्रयसंयुक्तं योनिरश्वत्थपत्रवत् ॥२॥ कुएदस्यात्तरपूर्वे तु वेदि कुर्यात्स्रशोभनाम् सार्द्धहरतं तथाऽऽयाम्मुत्सेघं हस्तमात्रकम् ॥३॥ व तुलां चतुरस्रां च देवानां स्थापनाय च। पद्मं तगडुलैवेंदिकापरि ॥ ४॥ **क्र**यीदष्टदलं तन्मध्ये पूजयेदेवं सुवर्णेन प्रकल्पितम् । श्रश्वारूढं महातेजः सप्तहस्तं महाबलम् ॥५॥ अस्वारिष्टहरं शूरं देवं तं हयवन्तभम् । देवेन्द्रं च धराधीशं सुवर्णेन प्रकल्पयेत् ॥६॥ . वक्षां च तथेशानं रजतेन प्रकल्पितम् यमं च कालले।हेन ताम्रेणाऽपि तथैव च ॥ ७॥ ्निऋति च तथा वायुं नागेनैव पकल्पयेत्। सोमं च रजतेनैव कल्पयेत्स्रुममाहितः ॥ ८॥ ्कुस्त्रैवं लेक्पालांश्च स्वेषु स्थानेषु विन्यसेत्। श्चावाहनार्घपात्राचैर्गन्ध-पुष्पादिकैः शुभैः ्धृप-दिपिश्व नैवेद्यः पूजयेनमन्त्रपूर्वेकम् पञ्चामृतेन स्नपनं क्रुयदित्र स्वपन्त्रकैः ॥१०॥ ्रत्यमृषुवाजिनमिति मन्त्रेणाऽऽवाहनं चरेत् । श्रश्वस्तूपराेगविति क्वर्यात्संस्थापनं बुधः ॥११॥ मानस्तोकेति मन्त्रेण स्नानं सम्यक् प्रकल्पयेत् । युवं वस्त्राचीति तथा वस्त्रं चैत्र मदापयेत् ॥१२॥

かん うまくしんないからのというないのではないというのではないというできますが、

このととというとないまと考えるとこと

यज्ञोपवीतं दातन्यं देवस्य त्वेति मन्त्रतः । विरादायेति मन्त्रेण अर्चयेत्स्रसमाहितः ॥१३॥ गन्धद्वारेति वै गन्धं पुष्पं श्रीश्र तथैव च। धूरसीति तथा धूपं दीपं चाऽपि विशेषतः ॥१४॥ मन्त्रेण नैवेद्यं बहु कल्पयेत् । **अन्न**पतेति एनं सम्बूष्य विषेन्द्र! रविपुत्रं इयाधिपम् ॥१४॥ ततः सम्पूजयेदीमान् छेाकपालान् स मन्त्रतः । इन्द्रं वा विश्वतः शक्रं श्राग्नि दृतेति पावकम् ॥१६॥ यपाय सोमेति यमं निऋति मेाषुरोति च। त्वन्नो अग्नेति वरुणं तव वायेति चाऽनिलम् ॥१७॥ सोमो घेनुं तथा सोमं कदुदेति तथा शिवम्। पूजयेद्दगन्ध-पुष्पाचैर्घूप-दीपनिचेदनैः ।।१८।। क्रमेण पूजयेदित्थं देवान्सम्पूजयेत्ततः। श्रश्वारूढ महावीर ! तुरङ्गेश ! महाबल ! ।।१६॥ श्रश्वारूढं च रेवन्तं शक्त्या चाऽऽशु विनाशय। श्राखण्डल गजारूढ ! वज्रहस्त सुरेश्वर !।।२०।। वज्रेण तुरगारिष्टं भिन्नं कुरु शचीपते! महातेजो ज्वलज्ज्वालाविभूषितः ॥२१॥ मेषारूढ ! तीक्ष्णाऽसिना हुतवह ! श्रश्वारिष्टं विनाशय । कालद्गडधरा देव! महामहिषवाहन!॥२२॥ कालद्राहेन द्रग्होत्थपश्वारिष्टं विनाशय। खड्गहस्त महाभीम ! निऋते प्रेतवाहन !।।२३।। ब्रिनं कुरु ह्यारिष्टं तीक्ष्णखड्गेन शीघतः। पाशहस्त ! जलाधीश ! स-दामकरवाहन ! ॥२४॥ पाश्चेन च इयारिष्टं भिन्नं कुरु जलाधिय ! ।

ध्वजहस्त महाकाय! मृगारूढ! महाबल! ॥२४॥
ताडयस्व ह्यारिष्टं ध्वज-द्याडेन वाऽनिल ! ।
शाक्तिहस्त ! महाराज ! कुबेर! नरवाहन! ॥२६॥
श्रश्वारिष्टं च यत्तेश! शक्त्या चाऽऽश्च विनाशय।
श्रूलहस्त! महारोद्र! पिनाकिन! वृषवाहन! ॥२७॥
नाशयाऽऽश्च ह्यारिष्टं त्रिश्यूलेन त्रिलोचन! ।
एवं सम्पार्थ्य विभेन्द्र! लोकपालक्रमेण च ॥२८॥
श्राग्नेः संस्थापनं कृत्वा कुएडे होमं च कारयेत् ।
तिल विक्तिः यवैश्वेव पत्येकं चाऽऽहकाऽऽहकम् ॥२६॥
होमं कुर्यादश्वकामश्वरुणा घृतपूर्वकम् ।
स्थापयित्वाऽऽष्ट्यसंस्थालीं तत्स्थेनाऽऽष्ट्येन यत्नत्यः।३०॥
हत्थं सर्वेश्व मन्त्रेश्व देवसुद्दिश्य कारयेत् ।

श्रग्नये स्वाहा । सोमाय स्वाहा । वायवे स्वाहा । विष्णि । वे स्वाहा । सर्वेद्वरितनाशाय स्वाहा । रेवन्ताय स्वाहा । सर्वेद्वरितनाशाय स्वाहा । रेवन्ताय स्वाहा । सर्वेद्वरितनाशाय स्वाहा । सर्वेत्र होमाः कार्यः । स्वित्रप्तादोऽन्नपतिरन्नाद्यमस्मिन् यन्ने यजमानाय ददातु स्वाहा । सोमो राजा राजपति एवं सर्वेत्र होमविधिः ।

इत्थं कृत्वा होमकर्म आचार्यो विधिवत्ततः।
शक्तो भवन्तु मन्त्रेण अश्वशालां भवेशयेत्॥१॥
पवित्रं तेति मन् ण अश्वान् सम्भोत्तयेद् द्विजः ।
एष वाजीति मन्त्रेण तथाऽश्वांश्र विसन्जयेत् ॥२॥
मा नो मित्रेति मन्त्रेण तुरङ्गान् स्थापयेत् सुधीः।
पूर्णादुति च जुहुयादिन्छन्नष्टतथारया ॥३॥
भूतेभ्यश्र विलं दद्यात् छिन्नां तं मन्त्रपूर्वकम्।
श्रसुराः पन्ना यत्ता यातुधानाश्र राचसाः ॥ ४॥
पिशाचाः सिद्धगन्धर्वा वेताला योगिनी शिवा।

द्राकिनो लाकिनी चैव शाकिन्या जम्बुकादयः ॥ ॥ श्रश्वारिष्ट-प्रशान्त्यर्थं वर्ति गृह्णन्त्वमी ग्रहाः । इत्यं दत्वा वर्ति सम्यक् भूतेभ्यश्च विधानतः ॥ ६ ॥ श्रश्वं च दिल्लायुक्तं भितमां वत्ससंयुताम् । श्रिक्ता प्रदापयेत् ॥ ७ ॥ श्राकृतीर्देवतानां च द्रिजेभ्या चस्त्रसंयुताः । श्राकृतीर्देवतानां च द्रिजेभ्या चस्त्रसंयुताः । द्र्याचा दिल्लायुक्ताः श्रद्धापृतः समाश्रितः ॥ ८ ॥ श्राकृतीः = प्रतिमाः। देवानाम् = इन्द्रादीनाम् । श्राकृतीः = प्रतिमाः। देवानाम् = इन्द्रादीनाम् । श्राकृतीः = प्रतिमाः। देवानाम् = इन्द्रादीनाम् । श्राकृते विधिना कृत्वा ह्यानां शान्तिकं महत् । श्रश्वानां नौरुज्ञत्वं च वलं पुष्टिबलं तथा ॥ ६ ॥ लक्ष्मी स्थिता मनूनां च सङ्ग्रामे विजया भवेत् । श्राह्मणान्तः भोजयेत् पश्चाचतः शान्तिभिवष्यति ॥ १०॥ इत्यश्वशान्तः ।

# अथ गजशान्तिः।

सनत्कुमार हवाच

ग्रथ राजा प्रकुर्वीत चतुध्यों गज-वाजिनाम् ।
शान्तिमामयतप्तानां तदुत्पाते।द्ये सित ॥ १॥
कवलाति च नाऽऽदत्ते यदा लश्रूषा मुश्रति ।
स्तब्धः प्रशान्तो निर्वेदो स्थान्मदेन विवर्जितः ॥ १॥
विद्यानमितरत्यर्थे परिचीयातनुद्धिपः ।
विमानात् स्रस्तसर्वाङ्ग-गुप्तो नष्टपराक्रमः ॥ ३॥
नष्टशोभः सदाद्दीनो नष्टसंज्ञो रूपान्वितः ।
नानाव्याधिसमुत्थाभिः पीडाभिः पीड्यते यदा ॥ ४॥
ग्रिष्टोपनिषातेषु तथोत्पातभयेषु च ।
तदा श्रान्ति मकुर्वात गजस्चापरे। नृषः ॥ ५॥
ग्रिष्टाद्यसुरं त्वेवं वाजिनां लक्ष्यते यदा ॥ ५॥

युद्धारम्भेषु च तथा तेषां शान्ति च कारयेत् ॥ ६॥ शान्त्यर्थे गज-वाजीनां मण्डपं चतुरस्रकम् । द्वादशाऽरिवमानेन सम्मितं कार्येत् सुधीः ॥ ७॥ बाहुममाणं मध्ये तु योनि नाभिसमुज्ज्वलम् । कुएडं त्रिमेखलं कुर्यात् दृतं वा चतुरस्रकम् ॥ ८॥ तत्पुरस्ताद्वित्यतः पश्चिमे चोत्तरे तथा । चतुरस्रं ततः कुर्यात् कुएडं इस्तममाणकम् ॥ ६॥ कोर्णेषु च तथा कुर्याइट्टर्न चाऽष्ट्रत्रिकोणकम् श्चर्ष-स्वादिर-पालाश-विन्वा-ऽश्वत्थ-वटैरपि श्रौदुम्बर-श्रवामार्ग-समिद्धिस्तत्र ं तत्र मध्ये सर्वसिमिद्धिर्वा पालाशैर्वाऽऽज्य विन्वकै: ॥११॥ तिल-तपडुल-लाजाभिः सक्तसिद्धार्थशालिभिः यवैरेभिस्त्रिमध्वक्तमध्ये सर्वेमिति स्थितिः दत्वा च पयसा चैव घृतेन मधुनाऽभि वा को छोषु च तथाऽऽज्येन मध्ये तु कलशैरपि ॥१३॥ स्थापयेत ततः कुम्भानष्टावष्टासु दिन्नु च वस्त्रयुग्मेन सञ्बन्नान् सर्वौषधि-समन्वितान् ॥१४॥ सर्वेरत्नयुतान् युग्मान् गन्ध-पुष्पोदकैरपि । हस्तावरप्रमाणां तु बृहत्कुर्मभं तु मध्यमे ॥१५॥। सम्पूर्ण सर्वरत्नौषधैरपि तीर्थोदकेन चतुरः कलशाँस्तत्र चतुर्थस्य समं ततः ॥१६॥ की गोषु च यथान्यायं जल-वस्नादिके युतान् । स्मरेत् प्रधानं कुम्भे तु नरसिंहाकृति हरिम् ॥१७॥ शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-चर्मा-ऽसि-शर-शक्तयः पूर्वीदिक्रमयोगेन ध्यातव्यं कलशेष्वि पहिः शकादि-दिक्पालाँस्तत्र तत्र च संस्मरेत्।

प्रधानकुम्भात्पुरतः कुर्याचकं तु मएडलम् ॥१६॥ तत्र सम्पूच्य देवेशं पश्चाद्धामादि साधयेत् । मएडलाम्रे तदा कुम्भं कुम्भाग्रे कुएडमेव च ॥२०॥ सर्वत्राऽनलसंस्कारान् स्वयृक्षोक्तेन कर्मणा जुहुयादग्निसध्यर्थमाज्याऽऽहुतिसहस्रकम् ॥२१॥ श्रानुष्टुभेन मन्त्रेण गुरुवीऽस्य पुरोहितः । श्रानुष्टुभा नृसिंहमन्त्रा दशसाहस्रमिष्यते ।।२२॥ समिद्द्रव्यचरूएयेवं हुत्वा मन्त्री समाहितः । सम्पत्न्याऽऽज्याऽऽहुतीनां च सहस्रं वाऽयुतं चरेत् ॥२३॥ ततः स्त्रिष्टकृदित्यादि-समापनविधिः क्रमात् । एवं समाप्य विधिवद्धोमं तत्र पुरोहितः ॥२४॥ संस्पृशोदुदकुम्भं च जपेदशसदस्त्रमम् । पर्यन्तकलशान स्पृष्टा जपेत्तत्र सहस्रकम् ॥२४॥ श्चनन्तरेषु कुएडेषु गायत्र्या प्रणवेन वा । ऋ त्विभि श्रेगपत्कार्य होमतन्त्रं तु पूर्ववत् ॥२६॥ प्रतिक्रुम्भं सहस्रं च जपेशानप्युपस्पृशन् । पूजयेन्लोकपालादीन् गन्धादिभिरलङ्कृतः ॥२७॥ श्रथ राजानमाकाये-स्वास्तीर्धे सिंहविस्तरे । समाप्य च शुचिस्नानं सर्वोऽलङ्कारमंयुतम् ॥२८॥ कुम्भादकेन देवाग्रे तन्मन्त्रेणाऽभिषेचयेत्। पर्यन्तकलशैथाऽपि नृपं पथाइगजादिकम् ॥२६॥ श्रन्यांश्र वाहनान पूज्य दिव्यलत्तणसंयुतान्। गजादिनाऽत्रशिष्टेन तोयेन स्नापयेद् बुधः ॥३०॥ अन्यवाहान द्विपायातान् सर्वानेव समाहितः। बाराह्यस्थादकेनेव स्नापयेरहात्रसाधकः ॥३१॥

राज्ञो नीराजनं कुर्याद्राहनेषु च मन्त्रवित्। श्चन्येष्वेवं विधिः कार्य्यः सहिरत्नकरः परः ॥३२॥ राजानं वाहनादींश्व तथाऽन्यांश्व पुरेाहितः। सर्वाऽलङ्कारसंयुक्तान् सर्वेमङ्गलसंयुतान् ।।३३॥ कृत्वा तु वाचयेत् पश्चाइब्राह्मणैराशिषा बहु। दिचाणामप्यलं दत्वा ऋत्विग्भ्या गुरवे नृषः ॥३४॥ वाहनं वस्त्र-भूषाणामाचार्याय निवेदयेत्। दास दासीषु भृत्येषु ब्रामादिषु च सर्वेशः ॥३४॥ सर्वालङ्कारसंयुक्तं राजवाहापरि स्थितम्। मन्त्रद्वीपेहियश्चीव ब्राह्मणैः स्वस्तिवाचनैः ॥३६॥ साऽऽनन्दश्चैव ऋत्विण्मिष्टद्धैर्मन्त्रवरैस्तथा। श्राचार्यो राजभवने नृपं संवेशयेत्स्वयम् ॥३७॥ पूर्व स्नानाऽविशिष्टेन कुम्भते।येन मन्त्रवित्। गजशालां च सम्प्रोक्ष्य वाजिशालां तथैव च ॥३८॥ सिद्धार्थतगडुल-तिलैः पुष्पैर्वाऽप्यवकीयर्थे च। शालामध्ये नृषः सिंहं सुदर्शनमनामयम् ॥३६॥ पूजयेद् गन्ध-पुष्पाद्यैः सर्वोऽलङ्कारसंयुतैः। सक्तिभः क्रसरान्नेन कुर्याद्भृतवर्ति वहिः॥४०॥ ततः शालास सर्वास ब्राह्मणान् भाजयेद्धलिम् । ततः संवेशनं कुर्यादाचार्यो गज-वाजिनाम् ॥४१॥ एवं शान्ति पकुर्वीत निमित्ते सति तद्गुरुः। सपरिष्ठदस्य वृपतेर्भन्त्रवित् स्रुसमाहितः ॥४२॥ सर्वेक व्याणसम्पूर्णः सर्ववाधाविवर्ज्जितः। सपुत्रो राजमन्त्रस्तु नृपस्तेन महीयते । ४३॥ इति गजशान्तिः।

# श्रथ महाशान्तिः।

श्रीकृष्ण उवाच-

महाशान्ति प्रवक्ष्यामि महादेवेन भाषितम्।
पार्थिवानां हितार्थाय महादुस्तरतारिणीम् ॥ १ ॥
नृपाऽभिषेके सा कार्या यात्राकाले नृपस्य तु ।
दुःस्वप्ने दुनिमित्ते च प्रहवेगुण्यसम्भवे ॥ २ ॥
विद्युदुन्कानिपाते च जन्मर्ते ग्रहभेदने ।
केतृद्ये च निर्धाते चितिकम्पस्य सम्भवे ॥ ३ ॥
प्रस्तौ मृलगण्डान्ते यमलस्य च सम्भवे ॥
प्रस्तौ मृलगण्डान्ते चित्रोषतः ॥ ५ ॥
प्रदा स्युग्रुक-मन्दा-ऽऽराः सूर्यश्चैव विशेषतः ॥ ६ ॥
मन्दः= शनः । श्रारो=भौमः ।

युद्धे प्रहाणां सर्वेषां सूर्य-शीतांशु-कीलके।
बस्ना-ऽऽयुध-गवा-ऽश्वेषु संस्मिते शयनासने॥७॥
यद्यग्नः परिदृश्येत रात्राविन्द्रधनुस्तथा।
बेशमनश्च तुलाभक्षो गर्भेष्वश्वतरीषु च॥६॥
रविषम्बद्धये दृष्टे महाशान्तिः प्रशस्यते।
सर्वाणि दुनिमित्तानि प्रशमं थान्ति सर्वशः॥६॥
तां कुर्युक्रीह्मणाः पश्च कुल-शील-समन्विताः।
चतुर्वेदास्त्रिवेदाश्च द्विवेदाश्चापि पाण्डव ।॥१०॥
ध्वार्थवेणा विशेषेण वह्द्वसस्तु सुन्यताः।
युव्यः अतसम्पन्ना जपद्दोमपरायणाः॥११॥

कुच्छ्रोपवासनकाद्यैः कृतकायविशोधनाः । पूर्वमाराध्य मन्त्रांस्तु प्रार्भेत ततः क्रियाः ॥१२॥ मन्त्रान् विवियोच्यमःणान् ।

दश-द्वादशहरतं वा मण्डपं कारयेच्छुभम्।
तन्मध्ये वेदिकां कुर्याचतुर्दस्तप्रमाणतः ॥१३॥
श्राग्नेय्यां कारयेत् कुण्डं हस्तमात्रं सुशे।भनम्।
मेखलात्रयसंयुक्तं योन्या चाऽिष समन्वितम् ॥१४॥
रवीन्द्रोरुपरागेषु महेल्कापतनेषु च।
उत्पातेषु तथाऽन्येषु निमित्तेषु च सर्वशः ॥१५॥
सर्वारिष्टोपशमना महाशान्तिः मशस्यते।
चारुचन्दन-माळे च तोरणाऽलङ्कृते तथा ॥१६॥
गोमयेनोपलिप्ते च मण्डपे ते द्विजातयः।
शुक्राम्बर्धराः स्नाताः शुक्रमान्याऽनुळेपनाः ॥१७॥
कर्म कुर्युचिति शेषः।

ततश्च पश्चकलशाँस्तस्यां वेद्यां निवेशयेत्। श्चाग्नेयादिषु कोर्गेषु पश्चमं मध्यतस्तथा।।१८।। श्चष्टपत्रकृते पद्मे चूनपन्लत्रधारित्यम्। ब्रह्मकूचिषानेन पश्चगव्यं तु कारयेत्।।१६॥) ब्रह्मकूचिषाने गामूत्रं ताम्रवर्णाया इत्यादिना ब्रह्मकूचप्रकरणे चोक्तम्।

त्रीषधीः पश्चरत्नानि रेश्चनां चन्दनं तथा। सिद्धार्थकान शमीं द्वीं कुशान ब्रोहि-यवाँस्तथा।।२०॥ स्रपामार्गे फलवती न्यग्राधे।दुम्बरी तथा। स्रचा-ऽश्वतथ-कपित्थांश वियङ्गंश्चृतपञ्चवान् ॥२१॥

हस्तिदन्तमृदं चैव के। एकुम्भेषु विन्यसेत्। फलवती = गन्धिपङ्गुः। प्रियङ्गुः = कदुः। पुष्यतीर्थोदकोषेतं पञ्चगव्यं च मध्यमे ॥२२॥

श्चामं वाचिमितीदं च विद्वकुम्भाऽभिमन्त्रणम् ।

श्चाग्रुः शिशानं नैऋत्ये यद्देवा वायुगे।चरे ॥२३॥

ईशावास्यं चतुर्थस्य कुम्भस्य त्वभिमन्त्रणम् ।

मध्यमे त्वथ जप्तव्या रुद्राः कुम्भे यजुर्भवाः ॥२४॥

गन्ध-पुष्पा-ऽचतिर्वस्त्रैनैवेद्येष्ट्रितपाचितैः ।

फलीश्च नालिकेराद्यदिष्किः कुम्भपूजनम् ॥२५॥

स्वस्तिवाचनकं चैव कारयेत्तदनन्तरम् ।

क्रमेणाऽनेन शनकैरिग्नकार्यं च योजयेत् ॥२६॥

श्रनेन वद्यमाणेनाऽग्निं दूर्विमहाग्निं च पूर्वमेव निधापयेत्। पूर्वं

कलग्रस्थापनात् ।

हिरएयगर्भः समिति ब्रह्मासनिनयोजने ॥२०॥ कयानसा प्रणीताश्च मन्त्रेण विनिवेशयेत् । कृत्वा चास्तरणं वहराज्यसंस्कारमेव च ॥२०॥ श्रथवाऽऽसाद्येद्त्रं द्रव्यं यस्य प्रयोजनम् । ततः पुरुषसक्तेन पायसश्रवणं भवेत् ॥२६॥ श्रभिघार्याऽथ संसिद्धं पायसं स्थापयेद्ध्वि । श्रष्टादश प्रमाणेध्मान् दद्यादथ श्मीमयान् ॥३०॥ पालाशीः समिधः सप्त सप्त ते इति दापयेत् । श्राघारावाष्यभागौ तु हुत्वा पूर्वक्रमेण तु ॥३१॥ जुहुयादाहुतीः सप्त जातवेदस इत्यूचा । स्थालीपाकस्य जुहुयात्पुनर्वे जातवेदसे ॥३२॥ तरत्समन्दीसक्तेन चतस्रो जुहुयात्ततः । यमायेति सप्ताऽन्याः स्वाहान्ता जुहुयात्ततः ॥३३॥ स्वाहान्ता इति सर्वत्र योज्यम् ।

इदं विष्णुस्ततः सप्त जुहुयादाहुतिर्देष<sup>ा</sup> । चन्नत्रेभ्यस्ततः स्वाहा सप्तविशतिराहुतीः ॥३४॥

नत्त्राहुतयस्य कृतिकाभ्यः स्वाहेत्यादिभिर्मन्त्रैः कार्याः । तत्र रोहिणीद्वयःपुष्यहस्तादित्रया ऽनुराधादित्रयाऽभिजिदुद्वयशतभिषक्-रेवतीष्वेकवचनम् । पुनर्वसु-फाल्गुनीद्वय-विशाखा-ऽश्विनीषु द्विव-चनं शेषेषु बहुवचनम् ।

यत्कर्मणेति जुहुयानातः स्विष्टकृतं पुनः ।
ग्रहहोपस्ततः कार्यस्तिलौराज्यपरिप्लुतैः ॥३५॥
ग्रहहोपस्ततः कार्यस्तिलौराज्यपरिप्लुतैः ॥३५॥
ग्राविद्यानं वैकलिपका यवादिनिवृत्त्यर्थम् ।
गायिद्यां ततो हुत्वा होमकर्म समापयेत् ।
ततस्तु तूर्यनिघोषैः काहला-शङ्खनिस्वनैः ॥३६॥
यजमानस्य कर्नाव्यों हाभिषेको द्विजोत्तमैः ।
काश्मर्यद्वत्तसम्भूते समे भद्रासने स्थितम् ॥३७॥
काश्मर्यद्वत्तः=श्रीपर्णी । भद्रासनम् ।

वेदोमध्यगतं कृत्वा दुर्निमित्तपशान्तये ।
पश्चिमिः कलशैः पूर्णैमेन्त्रैरेतैर्यथाक्रमम् ॥३८॥
सहस्राचेण प्रथमं ततश्चैव शतायुषा ।
सजोषसा इन्द्र इति च विश्वानि वरुणेति च ॥३६॥
द्रुपदा दिवेति च ततः स्नापयेयुः समाहिताः ।
ततो दिशां विल दद्याद विचित्राऽत्रसमाश्रितान् ॥४०॥
नमोऽस्तु सर्वत्रयद्वेभ्य इति मन्त्रग्रदाहरेत् ।
स्नातस्य ब्राह्मणाः सर्वे पठेयुः शान्तिग्रत्तमाम् ॥४१॥
शान्तितोयेन धारां च पातियत्वा समन्ततः ।
पुण्याहवाचनं कृत्वा शान्तिकर्म समापयेत् ॥४२॥
तीर्थे देवालये वाऽिष गोदोहं कारयेद् बुधः ।
चितिं हिर्ण्यं वासांसि शयनान्यासनानि च ॥४३॥

New Delbi

विषेभ्यो दिलाणां दद्याद्यथाशत्या विषत्सरः ।
दोनानाथविशिष्टेभ्यो दद्याद्येव युधिष्ठिरः ! ॥४४॥
भोजनं चार्यनशं दत्वा ततः सर्व प्रसिद्ध्यति ।
द्यायुश्च लभते दीर्घ सत्रून् विजयते ज्ञणात् ॥४५॥
दुर्गाणि चार्य्स्य सिद्ध्यन्ति पुत्रांश्च लभते शुभान्।
यथा शस्त्रपहाराणां कवचं वारणं भवेत् ॥४६॥
तथा देवोपघातानां शान्तिभवति वारणम् ।
द्यहिसकस्य दान्तस्य धर्माजितधनस्य च ॥४७॥
दया-दाज्ञिण्ययुक्तस्य सर्वे सानुग्रहा ग्रहाः ।
द्र्यान्तिस्ययुक्तस्य सर्वे सानुग्रहा ग्रहाः ।

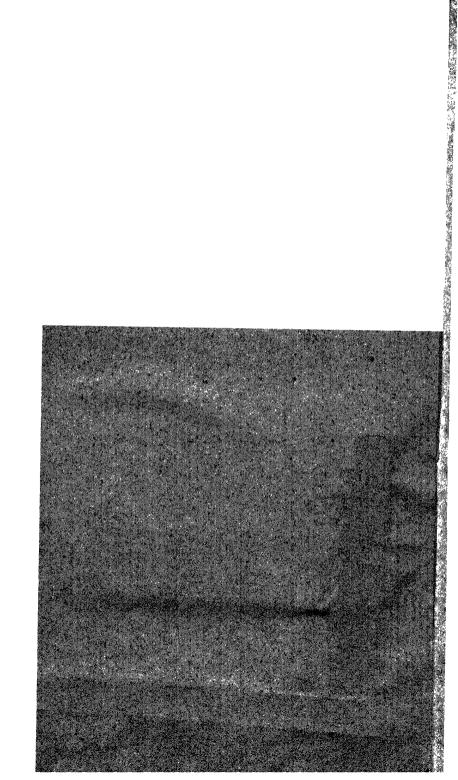
कामं मसाधयति तस्य पिनष्टि पापम् । यः कारयेत् सकलदोषहरीं महार्थी

शान्ति प्रशान्तहृद्यः पुरुषः सदैव ॥४८॥

इति महाशान्तिः

चर्मगवती-तरिणजाशुभसङ्गमस्य
सामिध्यभाजि कृतशालिनि मध्यदेशे ।
स्याता भरेहनगरी किल तत्र राजा
राजीवलोचनरतो भगवन्तदेवः ॥४६॥
इति श्रीसँगरवंशावतंस-महाराजाधिराज-श्रीभगवन्तदेवोद्योजिते
मीमांसकभदृशङ्करात्मज-भद्दनीलकण्डकृते भगवन्तभास्करे
शान्तिमयुखो द्वादशः समाप्तः ।

स्मास्टर खेलाड़ीलाल ऐएड सन्स, संस्कृत बुकडियो, कचौड़ीगली, बनारस सिदी।



## D.G.A. 80.

#### CENTRAL ARCHAEOLOGICAL LIBRARY NEW DELHI

Issue Record.

Call No.— Sa3S/Ni1/M.M.=5356

Author— Nilkanthabhatta.

Title— Santimayukha.

Borrower's Name	Date of Issue	Date of Return
Dry Kirken	23-4-83	26 483
	and the second s	



